नियमसार प्रवचन भाग-२

(श्री नियमसार शास्त्र के शुद्धभाव अधिकार पर
पूज्य गुरुदेवश्री के सन १९७९ आध्यात्मिक अक्षरशः प्रवचन)

श्री महावीरस्वामी

श्री सीमंधरस्वामी

श्री नियमसार

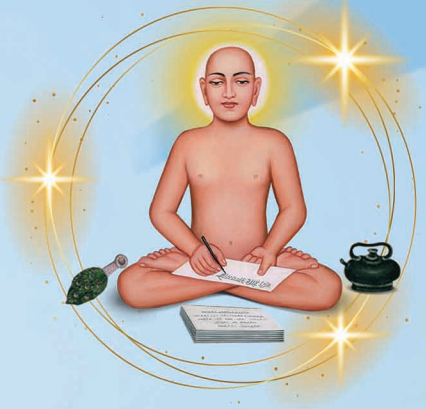

श्री कुंदकुंदाचार्य

श्री पद्मप्रभमलधारिदेव

पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

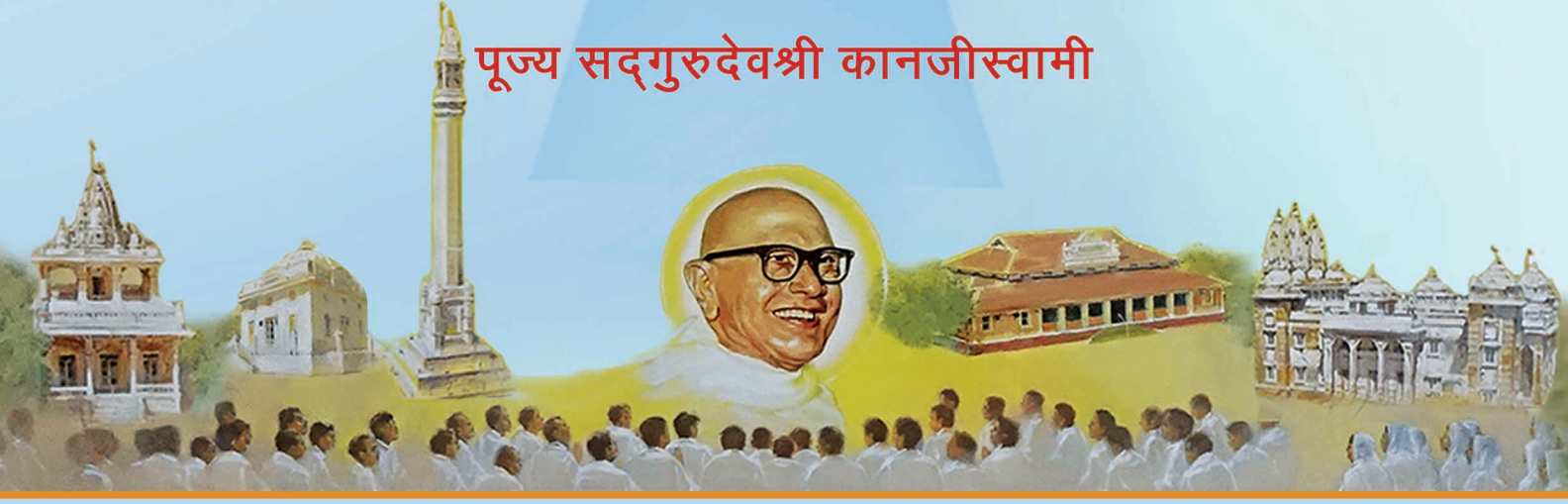

प्रकाशकः- श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुंबई

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियमसार प्रवचन

(भाग - 2)

(श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री नियमसार के
शुद्धभाव अधिकार पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.सन् १९७९ के वर्ष के अक्षरशः प्रवचन)

●

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

●

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत	वीर संवत	ई. सन
2078	2548	2022

—: प्रकाशन :—

ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी

(ज्येष्ठ शुक्ल 5, दिनांक 04 जून 2022)

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी,
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैनधर्मोस्तु मंगलं।

महावीर भगवान और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात् सदेह विदेह जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों का आधार देते हैं। इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को प्रमाणभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धर भगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के बाद पौन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इसके अतिरिक्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

श्री समयसार इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नौ तत्त्वों का शुद्ध दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। श्री प्रवचनसार में नाम-अनुसार जिन प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। श्री नियमसार में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। श्री पंचास्तिकायसंग्रह में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नौ पदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा श्री अष्टपाहुड़ एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की है।

यह नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम का सार

अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—अशुभ, शुभ या शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्यसामान्य वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्तः तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गहन आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलान कर इस टीका में स्पष्ट रीति से खुल्ले किये हैं। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्य रूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिक भाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदयों को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण रखकर टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परिषहजय इत्यादिरूप कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक या नरकादि के भयमूलक नहीं होती, परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होती परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने १८७ गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक सस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरशः गुजराती अनुवाद तथा उसका हिन्दी रूपान्तरण भी प्रसिद्ध किया गया है। इस शास्त्र में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार

चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परम आवश्यक अधिकार, और (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निजभावना के निमित्त रचना की गयी होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना याद कराता था। उन्होंने उस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार उस पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन सम्पूर्णत: उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन वीर संवत् २५०५५ के (ईस्वी सन्. १९७९) अषाढ़-श्रावण महीने के नियमसार के शुद्धभाव अधिकार के 17 प्रवचन हैं। गर्मी के महीने में नियमित सोनगढ़ में ग्रीष्मकालीन शिक्षण शिविर का आयोजन होता था। उस शिक्षण शिविर में, बहुत दूर-दूर से मुमुक्षु आते थे और पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि वे नीतरते सतधर्म का श्रवण करके और निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसा गहन विषय इस शिविर में लिया गया था। यह गहन 17 प्रवचन यहाँ अक्षरश: शब्दरूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से व्यक्त करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की सुरक्षा सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट (www.vitragvani.com) तथा ऐप (vitragvani app) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की यह भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन ले, कि जिससे यह वाणी शाश्वत् सुरक्षित रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र के शुद्धभाव अधिकार पर सन् 1979 में हुए 17 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किया जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ऑडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण

करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। इन प्रवचनों को सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा इम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री अतुलभाई जैन और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण और सी.डी. से मिलान का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारी पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं। सर्व मुमुक्षुजनों से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में अवश्य संशोधन किया जा सके।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, इसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शिवम्।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर शास्त्र भण्डार में पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दशः प्रवचन ग्रन्थ विभाग में उपलब्ध है।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

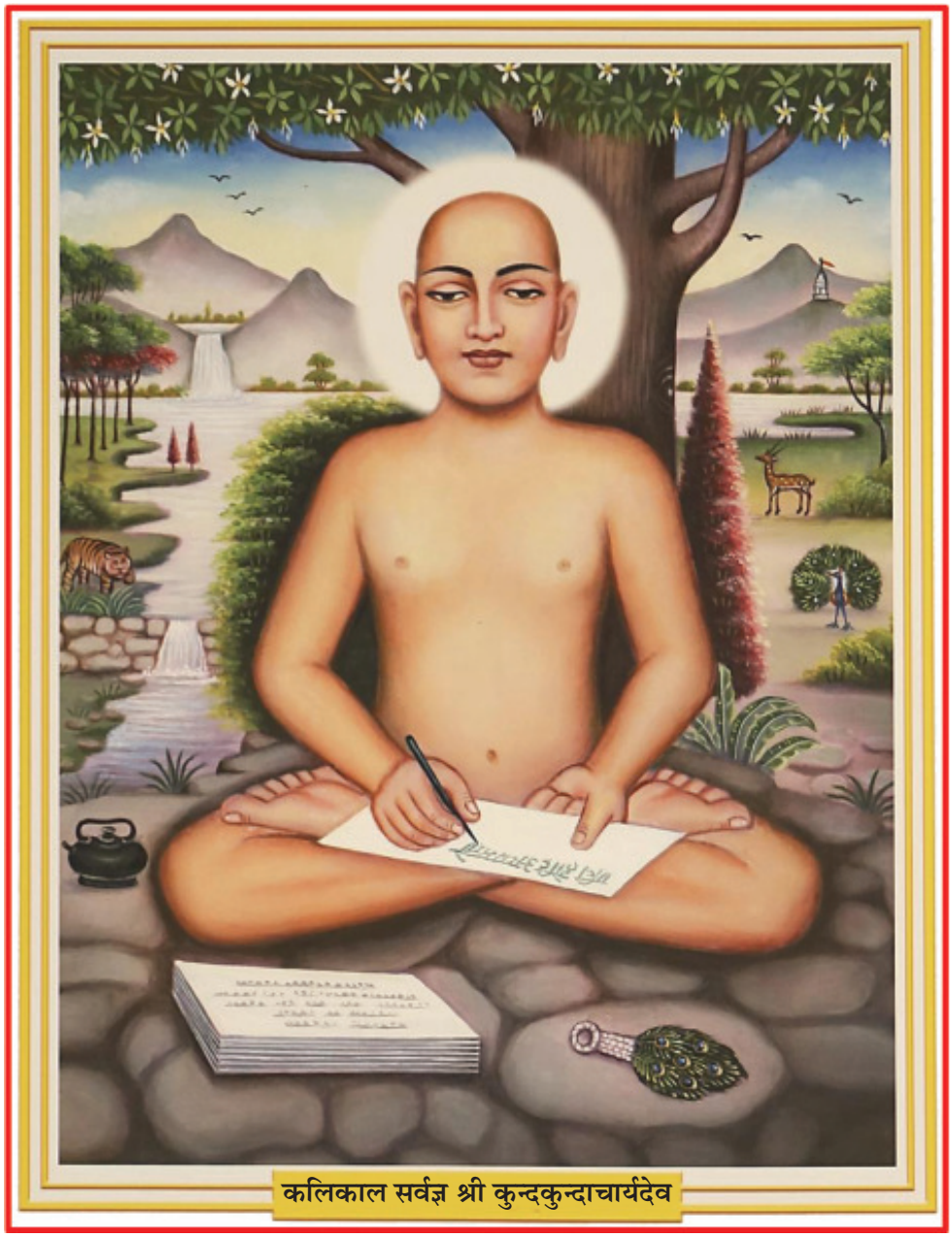

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन	तारीख	गाथा	श्लोक	पृष्ठ
1	21.07.1979	38	–	1
2	22.07.1979	38	–	17
3	23.07.1979	38	–	33
4	24.07.1979	–	54	48
5	25.07.1979	39	55	61
6	26.07.1979	–	56	76
7	27.07.1979	41	56, 57	93
8	28.07.1979	41	–	108
9	29.07.1979	41	–	123
10	30.07.1979	41	58, 59	137
11	30.07.1979	42	–	154
12	01.08.1979	42	–	171
13	02.08.1979	–	60, 61	185
14	03.08.1979	49	–	200
15	04.08.1979	49, 50	73	217
16	05.08.1979	50	–	234
17	06.08.1979	51 से 55	74	249

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियमसार प्रवचन

(भाग-2)

(श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री नियमसार के शुद्धभाव अधिकार पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.सन् १९७९ के वर्ष के अक्षरशः प्रवचन)

आषाढ़ कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक - २१-०७-१९७९
गाथा-३८, प्रवचन-१

यह नियमसार। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। दूसरे ग्रन्थ में ऐसा कथन... कुन्दकुन्दाचार्य योगी... 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।' तीसरे नम्बर पर 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो' आता है। वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैंने मेरी भावना के लिये यह नियमसार बनाया है। यह शुद्धभाव अधिकार है। यहाँ, शुद्धभाव पर्याय की बात नहीं, यह शुद्धभाव है न? तो शुद्धभाव में शुद्ध उपयोग की यहाँ बात नहीं। अशुभराग और शुभराग दोनों अशुद्ध हैं और रागरहित चिदानन्द भगवान आत्मा, जिसका उपयोग शुद्ध है। उसकी यहाँ बात नहीं। वह शुद्ध पर्याय की बात है। यह शुद्धभाव द्रव्य की बात है। आहाहा! वस्तु है वस्तु, भाववान, वह शुद्धभावस्वरूप है, ध्रुव त्रिकाल। भाववान आत्मा, उसका भाव शुद्धभाव, वह त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! भाववान ध्रुवपना अथवा वह आत्मापना जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रैकालिक परमपारिणामिक, जिसको कोई कर्म का अभाव और निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा परम त्रैकालिकस्वभाव, उसको यहाँ शुद्धभाव कहते हैं।

शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है। शुद्धभाव का अर्थ यह है कि द्रव्य त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरा पड़ा है और जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं। कि शुद्धभाव और आत्मा शुद्धभाव धरनेवाला, ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। शुद्धभाव, पवित्र त्रिकाल भाव...आहाहा! पुण्य और पाप आदि भाव वह... शास्त्र में चपलभाव कहा है। चपल... चपलता है, आकुलता है। उससे रहित भाव शुद्ध उपयोग है, वह तो पर्याय है। परन्तु वह शुद्ध उपयोग की पर्याय किसके आश्रय से उत्पन्न होती है? वह अधिकार है। समझ में आया?

इस शुद्धभाव का अर्थ पहले किया। कभी सुना ही नहीं कि क्या शुद्धभाव है। जय भगवान। भक्ति करना, पूजा करना। सेठ! यह सेठ है, वहाँ के प्रमुख नरम इंसान है। सुनने का प्रेम है। यह चीज़ को दूसरी है। प्रभु! क्या करें? वर्तमान चलती है, उससे कोई दूसरी बात है। आहाहा! शुद्धभाव गाथा।

जीवादिबहिस्तत्त्वं हेयमुपादेयमात्मनः आत्मा।
कर्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्यायैर्व्यतिरिक्तः ॥३८॥

नीचे (हरिगीत)।

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

टीका—यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। छोड़नेयोग्य क्या है और आदरनेयोग्य धर्मी को—सम्यग्दृष्टि को क्या है? उसका कथन है। धर्म की पहली सीढ़ी—धर्म का पहला सोपान सम्यग्दर्शन है। तो सम्यग्दर्शन में उपादेय क्या है और हेय क्या है... सम्यग्दर्शन है पर्याय। आहाहा! परन्तु उसमें पर्याय की सन्मुखता किस चीज़ पर जाती है और वह उपादेय कैसा है? और उसके सिवा बहिर्तत्त्व हेय कैसा है? ऐसा हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। ऐसा तो साधारण शब्द लिया। अब उसका अर्थ भी थोड़ा करते हैं, दूसरी तरह से।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में.... हेय है, ऐसा नहीं कहा। पाठ में हेय है। परन्तु हेय न कहते हुए 'उपादेय नहीं है', (ऐसा कहा)।

समझ में आया? क्या उपादेय नहीं है? '**जीवादिबहितच्चं**'... जीव की वर्तमान पर्याय—संवर, निर्जरा और मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव और बन्ध, वह सब बहिर्तत्त्व है। पर्याय जो है धर्म की पर्याय—संवर-निर्जरा की, वह बहिर्तत्त्व है। क्योंकि अन्तःतत्त्व में वह चीज़—पर्याय नहीं है। सूक्ष्म बात है।

जिन्दगी मिली है तो सुनना और समझना तो पड़ेगा न, भाई! जिन्दगी चली जायेगी। कहाँ अवतार होगा? यह वस्तु जो अन्तर में समझ में नहीं आयी तो उसके जन्म का कुछ पता नहीं लगेगा। यहाँ परमात्मा कहते थे, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना के लिये बनाया। '**जीवादिबहितच्चं**'... जीवादि सात तत्त्व। यहाँ पुण्य-पाप नहीं लिया है। शुभ-अशुभभाव आस्रव में मिलाकर... जीव की पर्याय वर्तमान और पुण्य और पापरूपी आस्रव—दो। तथा संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—यह सात तत्त्व हुए। वह सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। आहाहा!

केवलज्ञान की पर्याय स्वद्रव्य जो भगवान शुद्धभाव त्रिकाल परमात्मस्वरूप, भगवतस्वरूप अपना पूर्ण....

घट घट अन्तर जिन बसे और घट घट अन्तर जैन,
मत मदिरा के पान सौं मतवाला समझे न।

अपने अभिप्राय की मदिरा पीनेवाले, स्वतत्त्व क्या है, वह समझते नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि सात तत्त्व में संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आया। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने संवर को उपादेय कहा है, निर्जरा को हित का कारण कहा है। मोक्ष परमहित है, ऐसा कहा—वह ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है। यहाँ दृष्टिप्रधान कथन में सम्यग्दर्शन... यह अनन्त काल में एक समयमात्र भी चीज़ क्या है, इसने एकाग्र चित्त से सुनी नहीं। 'तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येनऽवार्तापि हि श्रुता...' आहाहा! पहली गाथा आती है न? पद्मनन्दि पंचविंशति में। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी पर्याय है तो पर्याय व्यवहार का विषय है। तो व्यवहार के विषय को यहाँ परद्रव्य कह दिया, परद्रव्य। परद्रव्य क्यों कहा?—कि जैसे अपने अतिरिक्त परद्रव्य में से धर्म की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती; वैसे ही संवर, निर्जरा की पर्याय में से नयी धर्म की—शुद्धि की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। सूक्ष्म है, भाई!

धर्म की पर्याय की शुद्धि की वृद्धि, वह पर्याय में से नहीं आती। पर्याय के आश्रय से नहीं आती। पर्याय के लक्ष्य से नहीं आती। उस पर्याय के अतिरिक्त त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अनन्त गुण का सागर... आहाहा! यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम हेय है, वह स्वीकार करने में पानी उतर जाता है। पण्डितजी! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, भगवान का विनय आदि, वह सब भाव हेय है, राग है। यह राग हेय है, उसको समझना कठिन पड़ता है। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा इन्द्रों के बीच में... सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र एकावतारी है, एकभवतारी। इन्द्र है शकेन्द्र, सौधर्म देवलोक में बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में बहुत में असंख्य अरब देव हैं। बत्तीस लाख विमान। एक-एक विमान में असंख्य-असंख्य देव... थोड़े (विमान) हैं संख्यात देववाले। संख्यात (देववाले) विमान थोड़े हैं, असंख्य देववाले बहुत हैं। ऐसे बत्तीस लाख विमान, उनका स्वामी। करोड़ों अप्सरायें। आहाहा! शकेन्द्र है अभी। सिद्धान्त में लेख है कि एकभवतारी है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष होनेवाला है और उसकी एक पटरानी है, रानी—देवी। वह देवी उपजी, तब तो मिथ्यात्व में (उपजी)। स्त्री में उत्पन्न होना मिथ्यात्व से ही उत्पन्न होता है। जहाँ-जहाँ स्त्रीपर्याय उत्पन्न हुई, वह मिथ्यात्व है तो स्त्रीपर्याय उत्पन्न होती है। तो देवी उत्पन्न हुई तब तो मिथ्यात्व था, परन्तु बाद में उसके स्वामी इन्द्र, उसके साथ भगवान का जन्मकल्याणक, गर्भकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, केवलकल्याणक में साथ में जाते थे। उसमें सुनने में आया, सुनकर अन्तर में उतर गयी। देवी, करोड़ों देवियों में उसकी अधिपति मुख्य। आहाहा!

यह जो पर्याय कहते हैं, उसकी दृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि में उतर गयी। अन्तर... अन्तर... आहाहा! लोग कहते हैं न कि पाताल में पानी बहुत है। पाताल। तो पाताल का पानी बहुत नहीं है, क्योंकि पाताल के पानी के नीचे नरक के पासडा आते हैं। कितना भी गहरा समुद्र हो, परन्तु नीचे एक हजार योजन का पहले नरक का पासडा है। तो पाताल में ज्यादा नहीं अथवा चौदह ब्रह्माण्ड में पानी का क्षेत्र थोड़ा है और जमीन का क्षेत्र बहुत है। समझ में आया? यह तो एक बार ऐसा अन्दर विचार बहुत आते थे, सम्पूर्ण चौदह ब्रह्माण्ड का तोल क्या होगा? (ऐसा) दिमाग में (आया)। सम्पूर्ण चौदह

ब्रह्माण्ड ३४३ राजु... तोल क्या होगा? तोल की तो भगवान जाने। बाकी उसका तोल अर्थात् ज्ञान के प्रमाण में उसका माप आ जाता है। समझ में आया?

मुझे तो दूसरा कहना है कि पाताल की तो हद है। यह भगवान है, उसकी पर्याय के पीछे पाताल भरा है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता के सार में प्रभु! ऐसी बात है। परन्तु वह बाह्य की चीज़ों के प्रपंच में, बाह्य के प्रपंच में सुखबुद्धि से तेरी (यथार्थ) सुखबुद्धि उत्पन्न होती नहीं। बाह्य प्रपंच शरीर, वाणी, दिखावा, पैसा, इज्जत, मकान—इन सब बाह्य प्रपंचों में सुखबुद्धि के कारण से भगवान अन्दर सुखसम्पन्न अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसी सुखबुद्धि होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो दूसरा कहना है कि पाताल के पानी की तो हद है। तो उस पाताल की यह पर्याय है, उसको यहाँ परद्रव्य कहा। इस परद्रव्य के पीछे पाताल है पूरा, यह शुद्धभाव। यह सात तत्त्व हैं, वह शुद्धभाव नहीं। संवर-निर्जरा-मोक्ष, वह शुद्धभाव नहीं। वह शुद्धभाव पर्याय का शुद्धभाव है और उस शुद्धभाव की पर्याय को तो यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! कठिन बात है, भगवान! अरे! कहाँ रहना और कहाँ जाना? अनादि-अनन्त भगवान आत्मा....

कहते हैं कि प्रभु! तेरी चीज़ ऐसी है कि जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं, क्योंकि उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! नयी संवर की पर्याय शुद्धि है और निर्जरा की पर्याय शुद्धि की वृद्धि है और मोक्ष की पर्याय शुद्धि की पूर्णता है। परन्तु वह तीनों पर्यायें, पर्याय से उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! सेठ! यह सुना भी नहीं कहीं! बहुत कठिन बात है, भगवान! आहाहा! बाहर में प्रवृत्ति ऐसा किया ... ऐसा किया... गजरथ निकाला, रथयात्रा निकाली, भगवान की प्रतिमायें हजारों स्थापित की, उसमें मानों हो गया धर्म, (ऐसा माने)। शुभभाव होता है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक समकिती को भी अशुभ से बचने को शुभ होता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है।

यहाँ तो उससे भी आगे लेकर... आहाहा! प्रभु! द्रव्य और पर्याय—दो चीज़। द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली यह शुद्धभाव और पर्याय। दो चीज़ में पर्याय को व्यवहारनय

कहा और त्रिकाल को निश्चय कहा, तो पर्याय को व्यवहारनय कहकर परद्रव्य कहा, तो उसमें टीकाकार ने परद्रव्य कहाँ से निकाला? पाठ में तो ऐसा है '**जीवादिबहित्तच्चं**' इतना है। परद्रव्य। ५०वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने परद्रव्य कहा है। ५०वीं गाथा। वह टीकाकार भी अपने... ५० में है। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' ऐसे तीन बोल हैं। ५०गाथा देखो। पर्याय है, वह परद्रव्य है, परभाव है और हेय है। तीन बोल हैं। समझ में आया? आहाहा!

अब यह संसार के बीच में निवृत्ति मिलती नहीं। उसमें पैसे कुछ करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हुए। आहाहा! घुस गया उसमें। उसकी संख्या से अनन्तगुने तुझमें धर्म-गुण हैं। जिसको यहाँ शुद्धभाव कहते हैं द्रव्यस्वभाव, उसकी जो गुण की संख्या का पार नहीं—अन्त नहीं कि यह अन्तिम है। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... तो यह अनन्त-अनन्त में यह अन्तिम अनन्त है गुण का, ऐसी बात आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

कि आत्मा में गुण की इतनी संख्या है... पर्याय से भिन्न द्रव्य है अन्दर। पर्याय अन्तर्मुख देखती है तो पाताल हाथ में आता है, परन्तु उस पाताल का पूरा पाताल (हाथ में आता) नहीं, फिर भी पता लग जाता है। क्या कहा? अपनी पर्याय जो है संवर, निर्जरा की, मोक्षमार्ग की... मोक्षमार्ग की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय है। वह पर्याय है, उसकी अवधि भी एक समय की है और भगवान अन्दर त्रिकाली आनन्द का कन्द है। सिद्धांत में तो ऐसा शब्द आया है, निरन्तर वर्तमान। आहाहा! त्रिकाली वस्तु निरन्तर वर्तमान है। भविष्य में रहेगा इसलिए... यहाँ तो निरन्तर वर्तमान। पीछे कथन विशेष करे तो त्रिकाली भी कहने में आता है। आहाहा!

इस देह में भगवान आत्मा निरन्तर... वर्तमान निरन्तर, ध्रुव निरन्तर वर्तमान ध्रुव है। आहाहा! यह शुद्धभाव। वह वर्तमान में शुद्धभाव है। त्रिकाल रहता है, इसलिए शुद्धभाव नहीं (-ऐसा नहीं)। यहाँ तो वर्तमान ही शुद्धभाव है। वर्तमान में ही ध्रुव है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यहाँ कहते हैं कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** उन्होंने घर का कहा नहीं है। ५०वीं गाथा में। यह समयसार में भी आता है, भाई! '**सिद्धांतो अयं उदात्त चित्त परद्रव्यं**' कलश (१८४, १८५) में आता है। समयसार में। 'परद्रव्यं समग्रं

हेयं।' वह सब पर्याय आदि (भेद) परद्रव्य है। आहाहा! एक तरफ राम और एक तरफ गाँव। एक समय की पर्याय को राम कहें तो प्रभु त्रिकाली को पूरा गाँव कहते हैं। पूर्णानन्द का नाथ, जिसके गुणों की संख्या का पार नहीं। आहाहा! यहाँ तो अरब और अरब... यह तो अभी अरब तक कहते हैं। हमारे समय में तो अरब के बाद भी लेते थे। खर्ब, निखर्ब, महा... ऐसी संख्या थी।

जैसे सौ करोड़ का अरब, ऐसा सौ अरब का खर्ब। और सौ खर्ब का निखर्ब। खर्ब, निखर्ब।... आदि अन्तिम... ऐसे १८ बोल थे हमारे समय में। अभी तो अरब तक है। आहाहा! यह तो ७० वर्ष, ८० वर्ष पहले की बात है। ९-१० वर्ष की उम्र में पढ़ा था न? अभी तो ९० हुए। आहाहा! तो यह संख्या की भी हद है। समझ में आया? ...१८ अंक में। अरब के पीछे खर्ब, निखर्ब (आदि) १८... आता है। तो भी उसकी मर्यादा—हद है। आत्मा के जो गुण की संख्या उसकी मर्यादा—हद नहीं। आहाहा! इतना संख्या का पूर, चैतन्य के नूर का तेज का पूर, यह अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के जल से भरा पड़ा प्रभु। आहाहा! इस शुद्धभाव की अपेक्षा से संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी परद्रव्य कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! सत्य बात कान में पड़े नहीं, वह सत्य बात कब समझे? अरे! मनुष्यपना चला जाता है, भाई! समय... समय... दिन बीत जाते हैं। जो मृत्यु का समय है, वह तो निश्चित है तो जितने दिन जाते हैं, वह (मृत्यु के) समीप में जाता है। समझ में आया? देह के छूटने का समय है पक्का। उसमें आगे-पीछे कुछ (नहीं होता)। तो उस समय में जितना (काल) जाता है, उतना समीप जाता है, देह छूटने के। आहाहा! उसमें जो आत्मा पर से भिन्न, ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं किया, आहाहा! प्रभु! तेरे भव का अन्त कहाँ से आयेगा?

और पहली श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते कल्याण होगा। यह तो मिथ्यात्व है। यहाँ तो, पर्याय के आश्रय से कल्याण होगा, वह भी नहीं। संवर-निर्जरा पर्याय है कल्याणरूप... कल्याणरूप। सम्यग्दर्शन-(ज्ञान)-चारित्र-मोक्षमार्ग है तो तीनों कल्याणरूप और श्रावक को भी वह तीनों कहे हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक है, उसको भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। यह नियमसार भक्ति अधिकार में है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। परन्तु किसको पहले? दर्शनशुद्धि।

११ बोल हैं न प्रतिमा में ? दर्शनविशुद्धि पहला बोल। तो दर्शनशुद्धि वह चौथे गुणस्थान की बात नहीं, पंचम की बात है। दर्शनविशुद्धि, व्रत, ऐसी ११ प्रतिमायें हैं न ? दर्शनविशुद्धि वह चौथे गुणस्थान की बात नहीं है। ११ प्रतिमाओं में पहली प्रतिमा है। है तो (पंचम) गुणस्थान की बात, परन्तु व्रत निरतिचार नहीं, इस कारण से उसको व्रतप्रतिमा नहीं कहा।

हमें तो दूसरा कहना है कि यह दर्शनप्रतिमा में भी... को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। आहाहा! पीछे अधिकार है न! है न भक्ति का अधिकार ? भक्ति... भक्ति... यह देखो भक्ति अधिकार आया। भक्ति हिन्दी है न। हमारे तो गुजराती में, गुजराती में लिखा है न सब ? देखो। पहली गाथा १३४ में है। तुम्हारे उसमें अलग पृष्ठ होगा। यहाँ २६९ पन्ना है। ... देखो! **रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति...** चारित्र लिया है उसमें। समझ में आया ? **शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** है उसमें ? शुद्ध रत्नत्रय। पंचम गुणस्थानवाले को रत्नत्रय कहा। पहली गाथा—१३४। टीका है टीका। बाद में चारित्र कहा है। वह यहाँ नहीं लिया। चारित्र है। ...लिया है। आहाहा!

वह चारित्र पंचम गुणस्थान में भी कहा है, मुझे ऐसा कहना है। क्या कहा ? कोई ऐसा कहता है श्रावक को चारित्र नहीं होता। श्रावक (को) तो मात्र दर्शन और ज्ञान होता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि श्रावक है और पंचम गुणस्थान में है, उसे यहाँ... पाठ देखो पाठ। '**सम्मत्तणाणचरणे**' मूल पाठ। '**कुणइ सावगो समणो।**' है ? गाथा है ?

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं॥१३४॥

श्रावक भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की भक्ति अर्थात् परिणमन करते हैं। भक्ति अर्थात् विकल्प, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? गाथा है १३४। '**कुणइ सावगो समणो। सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।**' श्रावक को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति है, वह भक्ति। सिद्ध की भक्ति करना, वह तो व्यवहारनय में चला है। दूसरी गाथा में। क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! यहाँ तो पंचम गुणस्थानवाले को भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहने में आये हैं। यहाँ तो (लोग) कहते हैं कि ऐसा भी नहीं, पंचम गुणस्थान में तो शुद्ध उपयोग नहीं होता। शुद्ध उपयोग

तो मुनि को ही होता है। पाठ में ऐसा है। परन्तु यह तो मुनि का शुद्ध उपयोग है, उस दशा का शुद्ध उपयोग श्रावक को नहीं होता। समझ में आया? शुद्ध उपयोग नहीं होता है, ऐसा नहीं है। क्योंकि सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्ध उपयोग की भूमिका में ही होता है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह की ४७वीं गाथा है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ऐसा पाठ है। निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार के मोक्ष का हेतु '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ध्यान में प्राप्त होता है। ऐसे कोई विकल्प की दशा में ऐसा-ऐसा उसमें... मोक्षमार्ग नहीं होता। आहाहा! यह अन्तर में स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका ध्यान लगा दिया, ध्येय बनाकर ध्यान लगा दिया, उस ध्यान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होता है, निश्चय। और उसके साथ में जरा राग रहता है, उसको व्यवहार मोक्षमार्ग का आरोप कहकर व्यवहार कहा। है तो राग। '**दुविहं पि**' है न? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ४७ गाथा है। ४७ क्या? ४७। ४ और ७। भाषा अच्छी आपकी (जैसी) हिन्दी नहीं आती है। आहाहा!

तो यहाँ कहते हैं कि श्रावक को भी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह बहिर्तत्त्व है। आहाहा! उसने तो सुना भी नहीं कि यह क्या चीज़ है। वह यहाँ कहते हैं... सुन तो सही प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर इतनी बड़ी है कि उसकी महिमा के आगे दूसरी महिमा सारी दुनिया में है ही नहीं। सिद्ध की पर्याय की भी उसके समझ महिमा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा वर्तमान... वर्तमान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, अनन्त गुण का समुदाय का एक पिण्ड प्रभु, उसको यहाँ द्रव्य अथवा शुद्धभाव कहते हैं। उस द्रव्य की अपेक्षा से संवर-निर्जरा और मोक्ष का मार्ग भी परद्रव्य कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

विशिष्टता क्या है कि पाठ में तो संक्षिप्त शब्द है तो हेय-उपादेय कहा। कि सात तत्त्व हैं, वह हेय हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी हेय है। समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** आया न? **परद्रव्य होने के कारण...** पाठ में हेय कहा। टीकाकार ऐसा कहते हैं कि वास्तव में उपादेय नहीं है, ऐसा लिया। पाठ में हेय है, ऐसा न लेकर, सात तत्त्व उपादेय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बापू! परमात्मा जिनेश्वरदेव

का मार्ग कोई अलौकिक है। लोगों ने तो (मान लिया कि) बाहर में व्रत लिया, तप लिया, जंगल में रहना, नग्न रहना, ऐसी क्रिया, ऐसा परीषह सहन करना—वह सब धर्म है। धर्म-फर्म है नहीं। आहाहा! लोकरंजन का धर्म बताकर लोग रंजन हो जाते हैं। यह तो कठिन बात है।

यहाँ तो **जीवादि सात तत्त्वों....** अर्थात् जीव की एक समय की पर्याय, अजीव का ज्ञान... अजीव का ज्ञान, अजीव तो पर है। आस्रव, पुण्य-पाप, बन्ध—राग में रुक जाना, संवर—शुद्धि की उत्पत्ति, निर्जरा—शुद्धि की वृद्धि, मोक्ष—शुद्धि की पूर्णता, वह सात तत्त्व, वह सातों तत्त्वों का समूह **परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! आत्मा के अलावा अनन्त परद्रव्य हैं, वह तो हेय है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं अष्टपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़ में १६वीं गाथा में। **'परदव्वादो दुग्गइ'** प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारे सन्मुख तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। वह तेरी दुर्गति है, वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! समझ में आया? मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। अष्टपाहुड़ में। **'परदव्वादो दुग्गइ'** तो तीर्थंकर कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य हैं। तो परद्रव्य दुर्गति है। हमारी ओर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही उत्पन्न होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। अरर! आहाहा!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं (स्मरण करना), वह तो राग है। यहाँ तो संवर और निर्जरा जो रागरहित दशा है, (जो) उत्पन्न हुई है आत्मद्रव्य के आश्रय से संवर, निर्जरा और मोक्ष, उन तीनों को चार के साथ मिलाकर, जीव, अजीव, आस्रव और बन्ध उन चारों को मिलाकर, तीन और चार=सात;—सातों को परद्रव्य कहा है। समझ में आया? है न अन्दर? आहाहा! यहाँ तो लोग दया और व्रत करे, अपवास करे। महीने के, पन्द्रह दिन के पानी बिना के अपवास करे। ओहोहो! बहुत तपस्या हुई। धूल में भी नहीं है, लंघन है। तप तो उसको कहते हैं कि अपने स्वद्रव्य का—शुद्ध चैतन्य की दृष्टि का अनुभव हुआ स्वद्रव्य का, परद्रव्य को हेय जानकर, तो वह स्वद्रव्य में लीनता होना, वह चारित्र है और चारित्र में उग्र पुरुषार्थ से विशेष उग्रता होना, वह तप है। आहाहा! व्याख्या भी भिन्न।

उसको भी यहाँ तो कहते हैं कि भावतप है। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि होती है,

वह भी परद्रव्य है। आहाहा! **परद्रव्य होने के कारण...** बाद में कारण दिया। वह उपादेय क्यों नहीं? आदरणीय क्यों नहीं? कि वह परद्रव्य है, इस कारण से उपादेय—**वास्तव में उपादेय नहीं है**। वास्तव में अर्थात् खरेखर। समझ में आया? आहाहा! '**जीवादिसप्त-तत्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।**' आहाहा! वास्तव में उपादेय नहीं है। इसमें है न? '**परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्।**' आहाहा! अभी तो पुण्य का परिणाम करने को निवृत्ति मिले नहीं। आहाहा! संसार के पाप पूरे दिन धन्धे, स्त्री, बच्चे सारे दिन पाप। आहाहा! परद्रव्य की प्रवृत्ति में केवल पाप ही है। उस पाप में से निवृत्ति लेकर पुण्य भी नहीं होता जिसको, उसको तो यह बात जँचती नहीं।

यहाँ तो पुण्य से भी निकलकर आत्मा के आश्रय से शुद्धि की, आनन्द की वेदना हुई, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आया। मोक्ष के मार्ग का अर्थ? अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! क्योंकि भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द(स्वरूप) का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसको भी यहाँ तो परद्रव्य कह दिया है। आहाहा! पूर्ण नहीं है न? एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान सादि-अनन्त पर्याय नहीं। रहती है सादि-अनन्त। परन्तु एक समय की पर्याय है। दूसरे समय में दूसरा केवलज्ञान, तीसरे समय में तीसरा केवलज्ञान। आहाहा!

केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। उसमें गये थे न? क्या कहते हैं उसको? यात्रा का स्थल। मथुरा। मथुरा बैठे थे सब पण्डित। यह व्याख्या हुई कि केवलज्ञान भी पर्याय है, गुण नहीं। खलबली मच गयी। यह क्या कहते हैं? केवलज्ञान (जिसमें) भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक देखते हैं, वह पर्याय है? पर्याय है, प्रगट हुई वह पर्याय है। ध्रुव.. ध्रुव, वह प्रगट होता नहीं और ध्रुव में आवरण आता नहीं। आहाहा! त्रिकाली भगवान ध्रुव प्रगट होता नहीं और उसमें आवरण है नहीं। सकल निरावरण परमात्मा त्रिकाली आत्मा। आहाहा! डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं।

उसमें आता है न, भाई? ३२० गाथा। बाद में लेंगे। आया है पीछे। जो सकलनिरावरण... द्रव्यस्वभाव जो है, वह तो सकलनिरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष

प्रतिभासमय, प्रत्यक्ष होनेवाला, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमस्वभाव लक्षण निज परमात्मतत्त्व द्रव्य.. निज परमात्मद्रव्य, वही उपादेय है। आहाहा! धर्मी निज परमात्मद्रव्य का ध्यान करता है। खण्ड-खण्ड का ध्यान नहीं करता। भाई! उसमें आता है। इसमें है। 'जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभास...' पर्याय उसका ध्यान करती है, पर्याय उसको मानती है, पर्याय ऐसा मानती नहीं कि मैं पर्याय हूँ। पर्याय ऐसा मानती है कि 'जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ।' निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

पर्याय ऐसा जानती है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय हूँ, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। वह यह शुद्धभाव। आहाहा! इसमें एक घण्टे में सब कहाँ से आवे? भगवान! बापू! अलौकिक मार्ग है, यह तो तीर्थंकर का। ऐसी चीज़ कहीं अन्यत्र नहीं है। दूसरे सम्प्रदाय में नहीं। श्वेताम्बर में नहीं तो बाकी तो कहाँ है? आहाहा! सुनने में मुश्किल पड़े। केवलज्ञान परद्रव्य? हाँ। क्योंकि एक समय रहता है। प्रभु तो त्रिकाल है। वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान... त्रिकाल ध्रुव है, उस त्रिकाली को यहाँ शुद्धभाव कहा है। उस शुद्धभाव की अपेक्षा से वर्तमान पर्याय जो साथ में है, वह उपादेय नहीं है। संवर, निर्जरा और मोक्ष उपादेय नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसके आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। मोक्षमार्ग उत्पन्न हुआ अन्तर के आश्रय से, परन्तु मोक्षमार्गपर्याय का आश्रय करे तो राग ही उत्पन्न होता है। पर्याय के आश्रय से तो राग होता है।

त्रिकाली भगवान एक समय में पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! समझ में आया? क्रमबद्ध में तो आया था न सुबह में? जिस समय में मोक्ष होता है, उसी समय होता है। एक बार हमारे प्रश्न हुआ था। यह तो रूपचन्दजी को देखकर लक्ष्य में आया। रूपचन्दजी! वहाँ ध्यानविजय है न? कौन सा गाँव?

मुमुक्षु : गजपंथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गजपंथा। गजपंथा में हम गये थे न! तो ध्यानविजय थे न श्वेताम्बर के? हमारी बात सुनकर श्वेताम्बरपना छोड़ दिया था। ध्यानविजय था स्वामी

था। कैसे? परजिया। यहाँ का पढ़कर बहुत बात करते थे। बाद में मैं वहाँ गया तो पैर छुए, उठ-बैठ किया। मैंने कहा, क्या हुआ? क्या है? उसको जाना था। हम वहाँ गये। कमरा बन्द था। ... खुला, दर्शन किये, बैठ। (मैंने) प्रश्न पूछा, प्रवचनसार में ऐसा आया है कि काल में मोक्ष हो, अकाल में मोक्ष हो, ऐसा पाठ आया है। इसमें तुम्हारा क्रमबद्ध कहाँ रहा? क्रमबद्ध ऐसा तो नहीं पूछा था। काल में मोक्ष है और अकाल में मोक्ष है... (मात्र) काल में मोक्ष है, ४७ नय ना कहते हैं। ... है। चार-पाँच व्यक्ति थे। गजपंथा, नासिक-नासिक।

वहाँ ऐसा पाठ लिया कि जिस समय में मोक्ष होगा, वह होगा, वह कालनय से और दूसरा अकालनय भी लिया है। तो काल में मोक्ष होता है, ऐसा नहीं, अकाल में भी मोक्ष होता है। काल लिया है पाठ में। उसका अर्थ क्या? ४७ नय प्रवचनसार। वह समझ गया कि मैं कहूँगा तो बात सच्ची नहीं होगी। मैंने विचार किया नहीं, ऐसा कहकर छोड़ दिया। मैंने विचार किया नहीं। काल में मोक्ष और अकाल में मोक्ष—दोनों एक समय में है। अकाल का अर्थ स्वभाव, पुरुषार्थ वह लेना है। काल तो एक समय है। परन्तु उसी समय में पुरुषार्थ और स्वभाव आदि है, वह अकाल कहने में आता है। आहाहा! काल में मोक्ष और अकाल में मोक्ष, परन्तु समय तो एक ही है। और अकाल में कहने का आशय कि काल के अतिरिक्त स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता, निमित्त का अभाव—यह पाँचों समवाय एक साथ में हैं, उसका अकाल कहने में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अकाल तो... पहले यात्रा निकली थी न! (संवत्) २०१३ के वर्ष की बात है। २२ वर्ष पहले। लोग विचार किये बिना ऐसे-ऐसे बोलते जाये। कुछ खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! काल में मोक्ष होता है, उस पर्याय को भी परद्रव्य कहने में आता है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में... पर्याय है, वह पर्याय एक समय की स्थिति है और यह एक समय में त्रिकाल है, ध्रुव है, एक समय में वर्तमान ध्रुव है। आहाहा! वही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को तो यही आदरणीय है।

मुमुक्षु : आश्रय करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय करना, वही आदरणीय है, उपादेय है। यहाँ उपादेय शब्द लिया है न? आश्रय करना या उपादेय करना। समझ में आया?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण.... परद्रव्य होने के कारण। दलीलसहित, न्यायसहित। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** वास्तव में वह सात तत्त्व है, वह आदरणीय नहीं। आहाहा! आश्रय करनेयोग्य नहीं, वहाँ लक्ष्य करने के योग्य नहीं। ज्ञान हो, परन्तु आश्रय करने से लाभ हो, ऐसा नहीं है। है, उसका ज्ञान करना। ज्ञान में जानने में आता है, परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य उपादेय नहीं। आहाहा! जो सात तत्त्वों को उपादेय मान ले, तो भगवान त्रिकाल है, उसको हेय माना। और अपने आत्मा को... यह शब्द है परमात्मप्रकाश में।

देखो! रागादि को उपादेय माना, उसको आत्मा हेय हो गया। यहाँ कहे, सात तत्त्वों को जो उपादेय माने तो त्रिकाली तो लक्ष्य में रहा नहीं। द्रव्य का अभाव हो गया दृष्टि में से। आहाहा! ऐसी बात सुननी मुश्किल लगे। ऐसा मार्ग है प्रभु का। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव जिनेश्वर परमात्मा का यह हुक्म है। उनका यह मार्ग है। प्रभु! यह कोई पक्ष नहीं है। कोई वाडा नहीं है यह। आहाहा! वह उपादेय नहीं है। आहाहा!

तब उपादेय कौन है? अब वह बताते हैं। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,....** स्वयं मुनि कहते हैं। मुनिपना कैसा है? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,....** वैराग्य किसको कहते हैं? दुकान-धन्धा, व्यापार छोड़ दिया, बन्द कर दिया तो वैराग्य है, ऐसा नहीं है। वैराग्य इसको कहते हैं कि अपनी पूर्ण वस्तु की प्रतीति, अस्तित्व की श्रद्धा और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त, उसका नाम वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया? वह पुण्य-पाप के अधिकार में है, समयसार में। पुण्य-पाप का शुभाशुभभाव है, वह राग है। उससे विरक्त होना, वही वैराग्य है। परन्तु केवल वैराग्य नहीं, अपने शुद्ध पूर्ण तत्त्व की प्रतीति और पुण्य-पाप से हटकर वैराग्य—वह ज्ञान और वैराग्य दोनों शक्ति—धर्म साथ में है। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी की शक्ति एक समय में दोनों साथ में है। ज्ञान और वैराग्य। ज्ञान त्रिकाली उपादेय है, उसका ज्ञान। आहाहा! समझ में आया? और पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्त है... अनादि से जो रक्त है, (उससे) विरक्त, वह वैराग्य। वह मुनि कहते हैं। आहाहा! भाषा तो सरल है, परन्तु बापू! तत्त्व तो कुछ अलौकिक है। ऐसा नहीं समझना कि हमें न समझ में आवे। प्रभु! आत्मा तो एक क्षण में केवलज्ञान ले सके, इतनी सामर्थ्यवाला है। आहाहा! एक समय में केवलज्ञान लेने की सामर्थ्यवाला है, वह ऐसा कहे कि हमें न समझ में आवे, प्रभु! कलंक लगता है। समझ में न आवे, ऐसा न कहना प्रभु! आहाहा! ... मार्ग है। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी... ऐसे भाषा ली है न? सहज वैराग्य का अर्थ सम्यग्दर्शनसहित, पुण्य-पाप से रहित, वह वैराग्य है। आहाहा! यह तो आचार्यों के ऐसे शब्द, उसमें दिगम्बर सन्त के शब्द कहीं है नहीं। अलौकिक बात है, बापू! समझने को थोड़ा समय देना पड़े। विद्यालय की पढ़ाई में कितना सात, आठ, दस साल निकालते हैं पढ़ते... पढ़ते... एक हमारा मित्र था। हम साथ में पढ़ते थे। बाद में हम तो दुकान पर चले गये। हमारी दुकान थी। पश्चात आया भावनगर। वहाँ मिले रास्ते में। क्या वेणीभाई! क्या करते हो? पढ़ता हूँ। अरे! कब तक? २१ साल हुआ पढ़ाई करते-करते। आहाहा! मित्र था। सूरत में एक... उसका लड़का था, वह मित्र था। तो हम तो दुकान में पालेज चले गये थे। बाद में वह भावनगर में पढ़ता था। मिला तो कहा, अब तक क्या किया? तो कहा कि अभी तो पढ़ाई कर रहा हूँ। उसके घर गये थे। कितने वर्षों से पढ़ते हो। कितनो को अभ्यास होगा ... अपने को एल.एल.बी... सुना है। हिम्मतभाई का क्या कहते हैं? बी.ए. उसकी कुछ पदवी कहते थे। २१ साल तक... हमारे बाद में पढ़ते-पढ़ते दस-बारह वर्ष चले गये।

तो इसके लिये थोड़ा समय देना पड़े न, प्रभु! अनन्त काल से समझा नहीं सब। कल्पना से मान लिया है कि हम समझते हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा को कौन-सी रीति और कौन-सी पद्धति कहनी है, यह समझना अलौकिक बात है। अलौकिक पुरुषार्थ है।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है... है? **शिखर के**

ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न। परद्रव्य से जो पराङ्मुख है। कौन है ? मुनि अपने को कहते हैं। परद्रव्य से पराङ्मुख है। सात द्रव्य (तत्त्व) से पराङ्मुख है। आहाहा! सात तत्त्व जो परद्रव्य हैं, उससे पराङ्मुख है। आहाहा! और **पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित...** पाँच इनिद्रयों के विस्तार रहित है। देहमात्र रहा। नग्नमुनि हैं न ? नग्नमुनि हैं न ? मुनिपना तो नग्न ही होता है। केवल नग्न नहीं, अन्तर में नग्नपना— विकल्प से रहित त्रिकाली द्रव्य के आनन्द का वेदन और पीछे स्वरूप में रमणता तो उसको नग्नपना हो जाता है। वस्त्र रहे और मुनिपना रहता है, ऐसा (होता) नहीं। और वस्त्र छूट गया और नग्नपना हो गया तो मुनिपना होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझने को आये हैं न ? बहुत दूर से गाँव से आये हैं न ? अपनी सुख-सुविधा छोड़कर यहाँ आये हैं न। आहाहा! यहाँ तो इतनी सुगमता रसोई में नहीं होती, आपके घर में होती हो उतनी। आहाहा!

कहते हैं कि **पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिसे (मुनि को) परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर है,...** आहाहा! मुनि की बात कही है। परम जिनयोगीश्वर... योगीश्वर तो अन्य में भी कहते हैं योगी, वह योगी नहीं। अन्तर पूर्णानन्द के नाथ में जुड़ान कर दिया हो, उसको योगी कहते हैं। अन्यमति ऐसा ध्यान करे, ऐसी कल्पना करे, वह सब अज्ञान है, वह तो मूढ़ता है। वह योग नहीं। आहाहा! योग की आगे व्याख्या है इसमें। योग किसको कहते हैं ? मुनिपना।

अन्तर में स्वरूप की पूर्ण रमणता, पूर्णानन्द के नाथ में अन्तर आनन्द का भोजन, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र भोजन करना, उसको योग कहने में आता है। आहाहा! अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया... अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया, उसको योग कहते हैं। आहाहा! **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** अब उसकी व्याख्या करेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १४, रविवार, दिनांक - २२-०७-१९७९
गाथा-३८, प्रवचन-२

नियमसार। शुद्धभाव अधिकार। ३८ गाथा चलती है न? पहले तो यह कहा कि यह शुद्धभाव मैं कहता हूँ। यह शुद्धभाव का अर्थ? शुद्ध उपयोग या शुद्ध परिणति नहीं। शुद्धभाव जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, सर्वज्ञस्वभावी पूर्ण... यहाँ द्रव्यस्वभाव को शुद्धभाव कहने में आया है। वरना पुण्य और शुभ-अशुभराग, वह अशुद्ध राग है, अशुद्धयोग है। और शुभराग, अशुभराग से रहित, वह शुद्धयोग है, शुद्धयोग। शुद्धयोग, वह पर्याय है। शुद्धयोग कहो या शुद्ध उपयोग कहो, वह तो पर्याय है। तो यह पर्याय को मोक्ष का कारण कहना, वह भी एक व्यवहार है। मोक्ष का कारण स्वद्रव्य है।

हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य... आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी बहिर्तत्त्व है। पर्याय है न? पर्याय द्रव्य में प्रविष्ट होती नहीं—प्रवेश करती नहीं। द्रव्य पर पर्याय तैरती है। आहाहा! तो उस अपेक्षा से पुण्य-पाप को, आस्रव-बन्ध को तो बहिर्तत्त्व कहा। परन्तु अपना त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से जो मोक्ष का मार्ग हुआ, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग जो है, वह भी बहिर्तत्त्व है। क्योंकि संवर, निर्जरा में आ गया है वह। आहाहा!

यहाँ पाठ में तो हेय उपादेय कहा। तो टीकाकार ने जरा ऐसा शब्द लिया कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण, परद्रव्य होने के कारण...** बहुत सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! पाठ में हेय है, परन्तु टीका में उपादेय नहीं—ऐसा कहा। समझ में आया? पाठ में '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' है, परन्तु अर्थकार-टीकाकार कहते हैं आहाहा! कि पर्याय जो बहिर्तत्त्व है, वह उपादेय नहीं। आहाहा! निमित्त उपादेय नहीं, दया, दान का व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उपादेय नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा!

उन्होंने परद्रव्य कहा, वह घर का (शब्द) नहीं कहा। ५०वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने भी कहा है कि जितनी पर्याय हैं निर्मलादि, वह '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' ऐसे तीन

शब्द हैं। ५०वीं गाथा उसमें। ५०। परद्रव्य परभाव हेयं। आहाहा! ५०वीं गाथा। और उसमें समयसार का आधार लिया है। सिद्धान्त... इस तरफ में। '**सिद्धांतो अयं उदात्त चित्त...**' है न? श्लोक। उसमें परद्रव्य है नीचे। चौथे पद में परद्रव्य है। वह परद्रव्य है। समयसार का कलश है तो उसमें भी... आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत प्रभु की।

जिसको सर्वज्ञपना आत्मा का स्वभाव वह निरन्तर वर्तमान है... आहाहा! त्रिकाली वर्तमान सर्वज्ञस्वभाव उस अपेक्षा से पर्याय जितनी हैं मोक्ष के मार्ग की भी, उसका आश्रय करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से पर्याय नहीं आती। उस कारण से उस पर्याय को परद्रव्य कहा है। सेठ! यह तो कभी सुना नहीं, ऐसी बात है। पैसे के बीच में कहाँ धूल में? प्रेम है तो इतना आया छोड़कर। मार्ग ऐसा है, प्रभु! आहाहा!

देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तेरे (लिये) आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि हम तेरे (लिये) आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! यह तो मोक्षपाहुड़ में १६वीं गाथा में '**परदव्वादो दुग्गइ**' सन्त, आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता के समक्ष, तेरे स्वद्रव्य के समक्ष हम परद्रव्य हैं और हमारे ऊपर लक्ष्य करेगा तो तुझे दुर्गति होगी। अरे रे! आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ**' ऐसा पाठ है। १६वीं गाथा, मोक्षपाहुड़।

भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! अभी तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है। इतनी मुश्किल से बात भाग्यशाली लोगों को सुनने मिलती है। आहाहा! यह तो अन्तर चैतन्य सर्वज्ञ परमात्मा के घर की बात है। आहाहा! कहते हैं कि सर्वज्ञदेव और हमारे सन्त— मोक्षमार्ग के साधक और हमारे शास्त्र—वह तीनों परद्रव्य हैं। वह तो परद्रव्य हैं, परन्तु हमको मानना। परद्रव्य को मानना, वह राग है, वह परद्रव्य है। यह तो परद्रव्य है, परन्तु राग से भिन्न होकर अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान अनुभव किया, यह अनुभव की पर्याय भी परद्रव्य है।... आहाहा! हुकमचन्दजी, ज्ञानचन्दजी का प्रभावना में बड़ा हाथ है और यह बाबूभाई तीसरे। हमारे गुजरात में से बाबूभाई, हिन्दी में से यह दो। आहा! मार्ग प्रभु!....

यहाँ तो देव, गुरु और शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य तो हैं ही और हमारे ऊपर लक्ष्य करेगा तो हम परद्रव्य हैं तो तुझे विकल्प होगा प्रभु! वह तो होगा, परन्तु तेरे स्वद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुआ, प्रभु! उसको भी हम तो परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! बात ऐसी है भगवान! भाग्य हो, उसको सुनने को मिले, ऐसी बात है। लोगों को एकान्त लगता है। एकान्त है... एकान्त है... अरे! प्रभु! सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि संवर, निर्जरा जो चारित्र है, सम्यग्दर्शन, अनुभवसहित आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर अर्थात् प्रवाह। जैसे पानी का प्रवाह चलता है, ऐसा चलता है। यह पूर है, वह ध्रुव चलता है ध्रुव। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर, वह पूर—प्रवाह ध्रुवरूप है। जिसको शास्त्र में वर्तमान... निरन्तर वर्तमान कहा है। त्रिकाली रहनेवाला (ऐसी) अपेक्षा छोड़ दी। त्रिकाल में भी त्रिकाल का भेद हो गया। आहाहा! शास्त्र में पाठ है कि निरन्तर वर्तमान है। जैसी वर्तमान पर्याय संवर-निर्जरा है तो उसको हम परद्रव्य कहते हैं। ऐसे उससे भिन्न द्रव्य भी वर्तमान है। पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! वीतराग मूर्ति अचल अकम्प ऐसी ... चीज़, उस चीज़ की अपेक्षा से, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, अनुभव हुआ। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। ओहोहो! उस स्वाद के भाग में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते हैं। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। जहाँ तीनों को मोक्षमार्ग तत्त्वार्थसूत्र में कहा। तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' कहा। पर्याय से ऐसा कहा है। समझ में आया?

ज्ञानप्रधान कथन से (भरा) सारा तत्त्वार्थसूत्र है। आहाहा! भगवान! क्यों? कि उसमें मति-श्रुत की बात कही, तो मति-श्रुत परोक्ष है, ऐसा कहा है और मति है, यह इन्द्रिय, मन से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा। वह सब व्यवहार है। आहाहा! मतिज्ञान जो है, वह त्रिकाली चैतन्य भगवान के अवलम्बन से होता है, वह मतिज्ञान है। वहाँ परोक्ष कहकर... पर की अपेक्षा से कहा है। वह प्रथम प्रश्न बहुत वर्ष पहले मोरबी में थे न वह? क्या नाम?

मुमुक्षु : दफ्तरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दफ्तरी। मगनलाल दफ्तरी। वह तो होशियार कहलाते थे न? गर्वनर आये थे घर पर मोरबी। गवर्नर। तब उसने भाषण किया।

मुमुक्षु : .... उसको होशियार कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही कहता हूँ। गवर्नर आया था। वही मुझे कहना है। तो व्याख्यान भाषण दिया। मगनभाई दफ्तरी थे। तो उसने—गवर्नर ने ऐसी तारीफ की कि यह तो 'चींथरे वींटयुं रत्न' तुम्हारे गाँव में है। उसके साथ चर्चा हुई। शायद ८२ के वर्ष थी। तो वह कहे कि यह तो शास्त्र में तो लिखा है परोक्ष मतिश्रुत को। कहा भाई! परोक्ष (कहा) है, वह पर की अपेक्षा से लिखा है। बाकी मति और श्रुतज्ञान अपने से होता है वह तो प्रत्यक्ष होता है। लालचन्दभाई! वह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में,... अनुभव... अनुभव तो प्रत्यक्ष है, ऐसा श्लोक आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उदाहरण है। खबर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि... सेठ! कभी सुना नहीं वहाँ आपके घर में कुछ। भगवान!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना आग्रह छोड़कर यहाँ आये। वरना वह तो बड़ा सेठ है। राजकुमार... लड़के की लड़की उसके घर है। लड़के के साथ। बापू! वह सब बाहर की चीज़ है। आहाहा! बाहर के प्रपंच की चीज़ में जिसको अधिकता लगती है और विशेषता कुछ लगती है, वह चैतन्यस्वरूप भगवान का अनादर करता है। आहाहा! वह बाहर की चीज़ तो दूर रही, अब अन्दर की चीज़ जो है संवर और निर्जरा... आहाहा! जो त्रिकाली आनन्द का नाथ '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदी जीवो**' जो त्रिकाली आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जो ११वीं गाथा में कहा... देवीलालजी कहाँ गये? वहाँ नय भी कहा है और सम्यग्दर्शन भी कहा है। आपका प्रश्न था न?

११वीं गाथा में भूतार्थ को नय भी कहा। दूसरे पद में। व्यवहार अभूतार्थ है, पर्यायमात्र अभूतार्थ है, संवर, निर्जरा, मोक्ष पर्याय भी अभूतार्थ है। आहाहा! तो बाद में कहा दूसरे पद में कि व्यवहार अभूतार्थ है, वह गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय का

अभाव करके अभूतार्थ नहीं कहा। तब तो वेदान्त हो जाता है। समझ में आया? पर्याय को गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। अथवा पर्याय को असत्य कहा, वह तो गौण करके असत्य कहा है। है! यह कहा न? सात तत्त्व है। पर्याय के लक्ष्य से सात तत्त्व है, अस्ति है। तब कहा न?

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने का कारण... अस्तित्व तो सिद्ध किया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **वास्तव में...** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ऐसा कहा '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम**' पाठ में ऐसा लिया है। परन्तु अर्थकार ने—टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने **उपादेय नहीं है...** ऐसा कहा। आहाहा! प्रभु! पुण्य और पाप का भाव तो बन्ध, कलुषित और दुःख है, वह तो हेय है ही। परन्तु अन्दर संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय प्रगट हुई... आहाहा! एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसी पर्याय प्रगट हुई... यहाँ साधकजीव को तो प्रगट है नहीं। परन्तु साधक को यह पर्याय जो केवलज्ञान है, वह सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, निश्चयनय का विषय नहीं। क्योंकि केवलज्ञान है, वह त्रिकाली द्रव्य का भेद—एक अंश है। एक अंश है, वह उसमें है तो सद्भूत व्यवहारनय से कहने में आता है। आहाहा!

केवलज्ञान व्यवहार है, सद्भूत व्यवहारनय से है और पुण्य और पापभाव। असद्भूत व्यवहारनय से है। यहाँ तो दोनों—सद्भूत व्यवहार और असद्भूत व्यवहार दोनों को परद्रव्य हेय कहकर उपादेय नहीं, (ऐसा कहा)। आहाहा! पाठ में हेय है, परन्तु '**जीवादिबहितच्चं हेयम**'... परन्तु मीठी भाषा की। प्रभु! यह तत्त्व उपादेय नहीं। उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। भगवान अन्दर विराजता है, प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ, वही उपादेय है। यह उपादेय है नहीं। आहाहा! जयचन्दजी! यह जय होने की बात है यहाँ। पराजय होने की बात संसार में है। आहाहा! बापू! भगवान! आहाहा! एक समय का केवलज्ञान, अरे..! एक समय का अनन्त चतुष्टय—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता ऐसा... अनन्त चतुष्टय कहने में आता है, परन्तु साथ में अनन्त गुण की पूर्ण सब पर्याय है। जितने गुण हैं, उतनी सब पर्याय पूर्ण है। और आत्मा में भी जब श्रद्धा आत्मा तरफ झुकती है तो केवल श्रद्धा ही झुकती है, ऐसा नहीं।

वह तो श्रद्धा से कथन किया है। बाकी जितनी पर्याय वह सब अन्दर झुकती है। आहाहा!

भाषा तो ऐसी आयी ११वीं गाथा में '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'... परन्तु केवल समकित (की पर्याय) होती है, ऐसा नहीं। सब पर्याय जितनी है, वह सब द्रव्याश्रित, भूतार्थ के आश्रित है। उस कारण से वहाँ पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का अंश भी साथ में आया। अरे! अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त एक साथ में आया। समझ में आया? अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं, वह सब गुण का शक्ति—स्वभाव का सामर्थ्यरूप जो था, वह पर्याय में व्यक्तरूप से एक अंश बाहर आया। आहाहा! वह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है, भाई! डालचन्दजी! चिट्ठी में (आया है) ज्ञान आदि एकदेश चौथे गुणस्थान में और केवली को ज्ञानादि सर्वदेश...

श्रीमद् ने उसका अर्थ ऐसा किया कि 'सर्वगुणांश, वह समकित।' समकित अर्थात् क्या? आहाहा! कि जितने गुण हैं आत्मा में, वह सबकी संख्या में—सब अनन्त गुण का अंश व्यक्त—प्रगट होता है। केवल समकित ही उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ तो मुझे दूसरा कहना है कि अनन्त गुण का अंश जो अन्दर प्रगट हुआ, उसको परद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? तो यह होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं। आहाहा! अरे! अनन्त... अनन्त... अनन्त की कोई संख्या नहीं। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ऐसे अनन्त-अनन्त चले जाये तो भी गुण की संख्या में अन्तिम का है—अन्त है, ऐसा है नहीं। अन्तिम का—अन्त तो नहीं, परन्तु आखिर का एक अंश—एक भाग वह तो है ही नहीं उसमें। आहाहा!

इतना भगवान आनन्द आदि स्वभाव से भरा पड़ा है। उसका एक अंश व्यक्त हुआ, मोक्षमार्ग में। आहाहा! सब गुण का (एक अंश)। 'सर्वगुणांश, वह समकित।' उसको यहाँ परद्रव्य कहा। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! कहाँ गये हमारे जतीश? जतीश... जतीश। बाहर बैठे हैं। जतीश यहाँ रहता था न बहुत। आहाहा! क्या कहा? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** समूह लिया है न? एक पर्याय नहीं है, सात है; इसलिए समूह हुआ। फिर भी वह समूह **परद्रव्य होने के कारण...** उपादेय क्यों नहीं? हेतु क्या?

उपादेय क्यों नहीं? कि **परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! गजब बात कही न!

अब आत्मा उपादेय है, वह लेना है। वह लम्बी बात है। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि है...** अब मुनि अपनी बात करते हैं। अपनी बात करके श्रोताओं को तत्त्व कैसा है, वह बताते हैं। उनकी स्थिति ऐसी है। हम ऐसे हैं। कैसे? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि...** तो क्या किया? सहज वैराग्य का अर्थ क्यों किया? कि स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, वह वैराग्य है—यह वैराग्य की व्याख्या ही नहीं। वैराग्य की व्याख्या तो यह है कि अस्ति अपना पूर्ण स्वभाव भगवान, उसकी श्रद्धा और ज्ञान के साथ, पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तपना, वह वैराग्य है। आहाहा!

दया, दान... भगवान ऐसा कहे कि हमारी भक्ति का परिणाम, उससे विरक्त वह वैराग्य है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में आया न? ज्ञान-वैराग्य—दो शक्ति है। तो ज्ञान अस्तित्व का सारा पूर्ण की प्रतीति, वह ज्ञान और वैराग्य—पुण्य-पाप के विकल्प से रहित विरक्त, अनादि से रक्त है, उससे विरक्त अस्ति का ज्ञान, राग से विरक्त, वह वैराग्य। आहाहा! ऐसी बात है। हजारों रानी छोड़ दे, करोड़ों की उपज छोड़ दे, इसलिए वैरागी है—ऐसा नहीं। आहाहा!

वैराग्य तो उसको कहते हैं, सहज वैराग्य... सहज अपनी चीज जो है पूर्णानन्द का नाथ, उसकी उपादेय बुद्धि होकर जब निर्मल प्रतीति सम्यग्दर्शन, पूर्ण के अनुभव में प्रतीति हुई, उसके साथ में शुभ-अशुभराग से हटकर वैराग्य (अर्थात्) रक्तपना था वह छोड़कर विरक्त होना वह अस्ति का ज्ञान, नास्ति से वैराग्य। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! धर्म वीतराग का बहुत सूक्ष्म है। भगवान का विरह हुआ। वहाँ प्रभु रह गये। भगवान की यह वाणी है, प्रभु! वहाँ रह गयी। आहाहा! मार्ग रह गया दूसरा। आहाहा!

मुमुक्षु : आपने विरह भुलाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! नहीं तो वहाँ थे न? हमें तो विरह पड़ गया न? यह वाणी है न प्रभु की। आहाहा!

भगवन्त! तेरे में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आकाश के प्रदेश से अनन्त गुणा गुण है। वह सब गुण का एक अंश व्यक्त प्रगट हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान कहने में आता है। उसको यहाँ परद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! परद्रव्य क्यों कहा? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी शुद्धि की पर्याय आती नहीं, वैसे पर्याय के आश्रय से शुद्धि की पर्याय आती नहीं। समझ में आया? गाथा तो सादी है, प्रभु! मार्ग तो है, ऐसा है। आहाहा! अरे रे! उस मार्ग को समझे बिना चौरासी लाख योनि, एक-एक में अनन्त अवतार। आहाहा!

मुनि कोढ़वाले। कौन? वादीराज मुनि। भगवन्त की स्तुति करते-करते। स्तुति किया विषापहार (स्तोत्र)। उस स्तुति में कहा। विषापहार स्तुति है न? ऐसा एक शब्द लिया, प्रभु! मैं गये काल का दुःख याद करता हूँ कि आयुध चोट लगती हो ऐसा लगता है मुझको। मुनि कहते हैं। आहाहा! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ नरक के, निगोद के। आहाहा! तो जैसे आयुध का—शस्त्र की चोट लगती है, ऐसे मार लगता है। अरे! दुःख तो... था। आहाहा! जिसके—नारकी के अन्तर्मुहूर्त के दुःख करोड़ भव और करोड़ जिह्वा से न कह सके। आहाहा! तब प्रभु का गुण अनन्त मुख और एक-एक मुख में अनन्त जिह्वा से भी कह सके नहीं। आहाहा! इतनी गुण की संख्या है।

मुझे तो यहाँ दूसरा कहना है। इसका एक अंश प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन में... सब गुण का अंश प्रगट हुआ है। फिर भी—ऐसा होने पर भी उसको परद्रव्य कहा। क्योंकि पर्याय हुई, उसमें से शुद्धि की नयी पर्याय नहीं होती। संवर है, वह शुद्धि है; निर्जरा, वह शुद्धि की वृद्धि है; मोक्ष, शुद्धि की पूर्णता है। तो कहते हैं कि शुद्ध की पर्याय प्रगट हुई उसके आश्रय से शुद्धि नहीं उत्पन्न होती। वह तो शुद्धि की वृद्धि उत्पन्न हो तो त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। जैसे परद्रव्य में से पर्याय अपनी नहीं आती, ऐसे अपनी निर्मल पर्याय में से भी नयी निर्मल—शुद्ध पर्याय नहीं आती। उस कारण से उसको हम परद्रव्य कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अलौकिक बातें हैं।

यह मुनि कहते हैं कि मुझे आत्मा उपादेय है। ऐसा कहकर जगत को सुनाते हैं। समझ में आया? आत्मा ही मुझे उपादेय है। ऐसा मैं हूँ कि सहज वैराग्य का महल...

बड़ा महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि। 'शिखर के ऊपर का रत्न; चूडामणि; कलगी का रत्न।' वह शिखामणि। मैं ऐसा हूँ वैराग्य(स्वरूप), ऐसा कहते हैं। **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है।** आहाहा! पर्यायादि परद्रव्य है, उससे मैं पराङ्मुख हूँ। आहाहा! ऐसे अपना दृष्टान्त देकर श्रोता को सत्य वस्तु की प्रसिद्धि करते हैं। समझ में आया? अकेली बात नहीं है कि बात में इतना जाना है—वस्तु तत्त्व जानना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि **परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र...** मुनि हैं न मुनि? पाँचों इन्द्रिय का लक्ष्य ही छूट गया सब। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा का आश्रय हो गया है। समझ में आया? **पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिसे परिग्रह है।** मुनि को तो एक देहमात्र रहता है। वस्त्र-पात्र तो है ही नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में तो बहुत लिया है वस्त्र, पात्र, इतना। दस-दस रजोणा, दस-दस भिक्षा। भिक्षा के लिये... मिले तो ले लेना और एक अपने रखना और नौ आचार्य को देना। और उस पात्र को इतना रँगना। रंग-रंग। यह ७३ की बात है।

(संवत्) १९७३ में हमारे गुरु पात्र रँगते थे। तो दो-दो, तीन-तीन घण्टे रँगने में जाते थे प्रतिदिन। वे पात्र रँगते थे, हम स्वाध्याय करते थे। वह ७३ बात है। संवत् ७३। तो मेरा ध्यान उस तरफ बहुत नहीं था। तो मैंने कहा, महाराज! यह क्या है? पात्र को दो-दो घण्टे हमेशा रँगना। यह क्या है? तो गुरु ऐसे बोले... भद्रिक थे। तो पात्र बिना के साधु ढूँढ लाओ। समझ में आया? पात्र है न? साधु रखते हैं। तो उसमें...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पात्र है न... पात्र है उसको रंग करते हैं। तो उसको भोजन... रंग करते थे तो मैंने ऐसा कहा कि महाराज! यह क्या करते हो? तब मेरी दीक्षा चार साल की थी। ७३ की बात है। यह उपाधि क्या है? तो हमारे गुरु ने ऐसा कहा कि पात्र बिना का साधु शोध लाओ। पात्र बिना का साधु होता है? वह पात्र को रंग... शोध लिया अन्दर। आहाहा! यह ७३ की बात है। कितने वर्ष हुए? ६२। ६० और २। हमारे पण्डित का तो जन्म भी नहीं था। आहाहा! यहाँ तो पात्र बिना साधु होता है।

ढूँढ के लाना। यह तो शोध लिया। कुन्दकुन्दाचार्य पात्र बिना के ही मुनि हैं। पात्र, वस्त्र रखे वह मुनि नहीं। परन्तु केवल पात्र और वस्त्र छोड़ दे तो भी मुनि नहीं। अन्दर में दया, दान, महाव्रत को अपना मानते हे आदरणीय! वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो संवर, निर्जरा को भी आदरणीय मानना नहीं। उत्पन्न हुआ है। मैं तो उससे विरुद्ध स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि से मैं पड़ा हूँ।

यह परद्रव्य से पराङमुख लिखा न? **परद्रव्य से जो पराङमुख है। पाँच इन्द्रियों के रहित देहमात्र जिसे परिग्रह है...** मुनि को तो देहमात्र परिग्रह है। एक शरीर, वह बिना छूटे जाये नहीं। **जो परम जिन योगीश्वर है,...** कहे, मैं तो परम जिन योगीश्वर हूँ। है? परम जिन योगीश्वर। उसका अर्थ? कि सम्यग्दर्शन में योग अर्थात् अपनी पर्याय को आत्मा में जोड़ देना आत्मा में तो है, परन्तु जघन्यपना है। अपनी निर्मल पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ना, लीन होना, वह योग है... वह योग है। यह तो कहे कि हम तो परम जिन योगीश्वर हैं। परम जिन और योगीश्वर। हमारे आनन्द में हमने हमारी पर्याय को बहुत जोड़ दिया है। आहाहा! त्रिकाली में। जो परद्रव्य कहने में आता है संवर, निर्जरा... आहाहा!

मुमुक्षु : ....महिमा नहीं है अपनी पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो सही। ऐसी है। ज्ञान में—जानने में तो बराबर आना चाहिए। आदरणीय नहीं है। आहाहा! ज्ञान में तो है ऐसा न जाने, तब तो उसकी ही दृष्टि...

यहाँ कहते हैं कि **परम जिन योगीश्वर है, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** आहाहा! देखो! समकिती और मुनि कैसे होते हैं? आहाहा! कि स्वद्रव्य में... यहाँ मुनि की बात है न? इसलिए जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है। सम्यग्दृष्टि की स्वद्रव्य में बुद्धि है, परन्तु जितनी मुनि की तीक्ष्ण बुद्धि है, ऐसी नहीं। अन्दर आनन्द के नाथ में तीक्ष्ण बुद्धि है, अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसमें रमणता करते हैं, वह अतीन्द्रिय आनन्द में रमण करता है, वह चारित्र है। चारित्र कोई नग्नपना, पंच महाव्रत परिणाम वह चारित्र-फारित्र है नहीं। सेठ! दिगम्बर के सेठ हैं वह तो । यह दिगम्बर.. आहाहा! अन्दर में आत्मा, कहते हैं कि हमारी **स्वद्रव्य में...** देखो! परद्रव्य से पराङ्मुख... परद्रव्य

कहा और सात कहा सात तत्त्व, उससे पराङमुख। आहाहा! गजब बात है। टीका करनेवाले ने तो गजब किया है न? पद्मप्रभमलधारीदेव मुनि। नग्न मुनि दिगम्बर की टीका है। यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य... पद्मप्रभमलजी। आहाहा! बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं, इस तरह अमृतचन्द्राचार्य, इस तरफ पद्मप्रभमलधारीदेव हैं, उनकी यह टीका है। आहाहा!

तो कहते हैं कि हम मुनि परद्रव्य से पराङमुख, सहज वैराग्य के रतन चूड़माणि, राग के विकल्पमात्र से मुझे तो वैराग्य है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है और राग से भी मैं तो विरक्त हूँ। आहाहा! समझ में आया? भगवन्त! बात थोड़ी सूक्ष्म है, परन्तु बात यह सत्य है। आहाहा! समझ में आना कठिन पड़े। इसका अभ्यास नहीं और इस जाति की उपदेश पद्धति नहीं। आहाहा! उपदेश पद्धति सब बदल गयी। व्रत करो, प्रतिमा ले लो, यह ले लो... यह ले लो... यह ले लो... यह राग की क्रिया करना, वह तो मरना है।

भाई ने लिया है, निहालभाई ने। द्रव्यदृष्टि प्रकाश में। पण्डितजी! वह द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न निहालभाई का। उसमें लिखा है कि रागादि करना, वह तो मरना है। दया, दान, महाव्रतादि को मैं करता हूँ, करूँ, वह तो स्वभाव का मरण है। भगवान ज्ञाता-दृष्टा करे, वह राग को कैसे करे? त्रिकाल में कोई ऐसा गुण नहीं कि विकार करे। तो पर्याय में विकार होता है। आहाहा! यह मेरा कार्य नहीं। आहाहा! और मेरा कार्य माने, वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को... आहाहा! **ऐसे आत्मा को....** ऐसा कहा न? कौन? परद्रव्य से पराङमुख, स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि है, सहज वैराग्य का शिखामणि है। **ऐसे आत्मा को...** ऐसे आत्मा को **'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** ऐसे आत्मा को वास्तव में 'आत्मा' उपादेय है। आहाहा! प्रियंकरजी! यह शास्त्र। बापू! भगवान त्रिलोक के नाथ का सम्यग्दर्शन क्या है और वह सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उसका विषय नहीं। आहाहा! वह कहा न?

परद्रव्य से पराङमुख... वह परद्रव्य हुआ न? सम्यग्दर्शन वह परद्रव्य है, त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से। एक समय की पर्याय है और एक तरफ त्रिकाली ध्रुव, महाप्रभु, अनन्त गुण का सागर, अनन्त गुण से भरपूर भरा आनन्द का नाथ है। आहाहा! स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है अन्दर और परद्रव्य से पराङमुख है, ऐसे आत्मा को... अज्ञानी को तो खबर नहीं, इसलिए ऐसा कहते हैं कि **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** वास्तव में (शब्द है), देखो, उसमें भी लिया था पहले। कि परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं। ऐसा कहा था। आहाहा! है? वास्तव में उपादेय नहीं संवर, निर्जरा आदि। यहाँ वास्तव में आत्मा को आत्मा उपादेय है। आहाहा!

त्रिलोकनाथ का प्रवचन—ध्वनि—दिव्यध्वनि यह है। बापू! प्रभु उसको समझना अपना आग्रह छोड़कर... जो मान रखा है पक्ष में, उसको छोड़कर यह समझना, यह अलौकिक बात है। आहाहा! वह अनन्त-अनन्त काल में 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' पंच महाव्रत, वह दुःख है ऐसा कहा। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो दुःख है। आहाहा! और संवर, निर्जरा सुख है, फिर भी उसको परद्रव्य कहकर पराङमुख ऐसा कहते हैं। आहाहा! इससे तो पराङमुख हूँ। आहाहा! परन्तु अपनी पर्याय में आनन्द की संवर, निर्जरा की दशा उत्पन्न हुई है, वह भी परद्रव्य है। मेरे लक्ष्य से पराङमुख है और स्वद्रव्य त्रिकाली मेरा नाथ प्रभु विराजता है, वहाँ मेरी दृष्टि है। आहाहा! कहो, पटेल!

ऐसा आपके वहाँ कहीं जमीन में है? रतलाम में करोड़पति हैं। राजकोट है। कणबी? कणबी समझे? बड़ा गृहस्थ है। करोड़पति है। ३५ लाख का तो एक खेत है उसका। वहाँ चरण करने गये थे। वह तो जमीन-बमीन बाहर की बातें हैं। पैसा की बात तो परद्रव्य रही, वह तो अपनी पर्याय है ही नहीं। आहाहा! और दया, दान, व्रत के परिणाम, वह अपनी पर्याय है नहीं। संवर, निर्जरा आदि की मोक्ष की पर्याय वह अपनी है। है, उससे भी पराङमुख। आहाहा! गुलाँट खा जाते हैं, गुलाँट। गुलाँट खाते हैं। ऐसे दृष्टि पर्याय पर है, (वह) द्रव्य के ऊपर (जाती है)। आहाहा! ऐसी बात। यह लोग प्रेम से आये हैं बाहर से। अपना घरबार छोड़कर सुनने को आये हैं न! आहाहा! बात तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को। यह तो मुनि है तो मुनि से बात की है। परन्तु सम्यग्दृष्टि को, ऐसा आत्मा को परद्रव्य से पराङमुख और स्वद्रव्य त्रिकाल यह उपादेय है। ऐसा आत्मा तो उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...ऐसा है, नरक में भी ऐसा है। सातवीं नरक में समकिती हैं। आहाहा! सातवीं नरक में जाते हैं, तब मिथ्यात्व (होता) है। क्या कहा? सातवीं नरक में जाते हैं तो मिथ्यात्व (होता) है। परन्तु बीच (के काल में) समकित होता है, फिर निकलते हैं, तब मिथ्यात्व (हो जाता) है। आहाहा! सातवीं नरक में बहुत पाप करके गये थे। पश्चात् समकित होता है। वहाँ से निकलते समय मिथ्यात्व हो जाता है। आहाहा! इतनी पीड़ा और इतना प्रतिकूल संयोग, फिर भी अन्दर में भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को तो ऐसा पूर्णानन्द प्रभु है, वह उपादेय है। आहाहा! यहाँ तो दया पालो, व्रत करो, तपस्या करो—वह उपादेय है, आदरणीय है। ऐसा करते-करते निश्चय हो जायेगा। लहसुन खाते कस्तूरी की डकार आ जायेगी। अरे! भगवान! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, नाथ! तेरी चीज़ को वास्तव में वीतराग की वाणी एक-एक गुण एक समय में कहे तो अनन्त काल में भी कह सके नहीं। आहाहा! क्या कहा? केवली एक गुण को एक समय में (कहे) और सादि-अनन्त काल कहे तो भी उसके—(आत्मा के) गुण अनन्त समय में कह सके नहीं। इतना गुण है। सादि-अनन्त काल। केवलज्ञान हुआ और पीछे अनन्त काल रहेगा। तो एक समय में एक गुण कहे, दूसरे समय में दूसरा कहे। सादि-अनन्त कहे तो भी अनन्त गुण कह सके नहीं। आहाहा! इतना गुण का भण्डार प्रभु! तू है, महारत्न है, चैतन्यरत्नाकर है। चैतन्य रत्न का सागर-समुद्र भरा है। पण्डितजी को कहा था न? वह सागर। कि आपका सागर नहीं, यह सागर। आहाहा!

प्रभु! ऐसा कहते हैं यहाँ। ऐसा आत्मा उपादेय है। अब जरा सूक्ष्म बात है। **औदयिक आदि चार भावांतरों को अगोचर होने से...** क्या कहते हैं? कि जो दया, दान

के विकल्प जो उठते हैं, वह उदयभाव हैं, उससे आत्मा जानने में नहीं आता। उससे अगोचर है। एक बात। उपशमभाव... उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। उपशमभाव से जानने में आता है, परन्तु उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। समझ में आया? यहाँ तो चार भावों से अगोचर है, ऐसा कहते हैं। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव... क्षायिकभाव से भी अगोचर है। अगोचर का अर्थ?

आदि चार भावांतरों... भावान्तरों अर्थात् अपना स्वरूप जो भाव है, परमपारिणामिक ज्ञायकभाव है, उससे भावान्तर (अर्थात्) इस (ज्ञायक) भाव से अन्य चार भाव। आहाहा! समझ में आया? भावान्तर का अर्थ क्या किया? कि अपना जो स्वभावभाव है त्रिकाल, उससे अन्य भाव। वह अन्य दूसरा है, तो उसको यहाँ चार भावान्तर—अपने भाव से अन्य भाव कहा। वह चार... क्षायिकभाव, क्षायिकसमकित वह चौथे गुणस्थान में। तो भी यहाँ तो कहते हैं कि क्षायिक समकित के आश्रय से अगम्य है। क्षायिक समकित—क्षायिकभाव से अगम्य है कहने का अर्थ यह है। क्षायिकभाव से अगम्य है, वह कहने का अर्थ यह कि क्षायिकभाव के आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। कहो, अभयकुमारजी! यह अभय की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि चार भावों से अगोचर है। एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि को गोचर है—गम्य है। देखो, आगे कहेंगे। सम्यग्दृष्टि को गम्य है कि आत्मा कैसा है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि की पर्याय जो है, वह तो क्षयोपशम-क्षायिक आदि है। उससे अगोचर है। अर्थात्? कि उसके आश्रय से गम्य नहीं। आश्रय तो, परम स्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। ऐसी बातें। ऐसा उपदेश। है या नहीं यह? यहाँ के पुस्तक हैं?

मुमुक्षु : पर्याय का सामर्थ्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय के आश्रय में सामर्थ्य नहीं है। पर्याय का लक्ष्य करने से तो विकल्प उठते हैं। उस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य है। वरना गम्य तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव से गम्य है। सम्यग्दर्शन से गम्य है, सम्यग्दर्शन तो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक है, उससे तो गम्य है। परन्तु यहाँ कहने का आशय है कि उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक के आश्रय से गम्य नहीं। इसलिए चार भाव से अगोचर है, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

औदयिक आदि चार भावान्तरो... नीचे लिखा है। **भावान्तर=अन्य भाव।** भावान्तर है न? अन्य भाव। अर्थात् अपना पारिणामिक त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, उससे यह चार अन्य भाव है। चार भाव अन्य है। जैसे यह सात तत्त्व को परद्रव्य कहा, वैसे यह चार भाव भी परद्रव्य है निश्चय से। आहाहा! सात तत्त्वों में आ गया। आहाहा! भावान्तर— अन्य भाव। अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव प्रभु से यह चार अन्य भाव हैं। वह भावान्तर की परिभाषा है।

औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक—यह चार भाव परमपारिणामिकभाव भाव से अन्य होने के कारण... परमपारिणामिक ज्ञायकभाव जो है, उससे यह चार भाव अन्य हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, उस भाव से क्षायिकभाव भी अन्य है। आहाहा! ऐसी बात! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी है। लोगों को एकान्त लगे। लोग कहे, ऐई... सोनगढ़ का एकान्त है। प्रभु! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! एकान्त है। व्यवहार की मना करते हैं (कि उससे निश्चय) होता नहीं। सिद्धान्त में लेख है कि व्यवहार साधक है, निश्चय साध्य है। वह तो व्यवहार का ज्ञान कराया है प्रभु!

साधक तो राग से भिन्न होकर अपना अनुभव हुआ, वह साधक। उसमें राग बाकी है, उसका उपचार से साधक कहकर कथन किया है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में बहुत है। जयसेनाचार्य की टीका है न समयसार की? व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। टीका में बहुत आता है। वह तो निमित्त... मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है निश्चयाभास। निश्चय और व्यवहार—दो भाग। वहाँ व्यवहार क्यों कहा? कि ज्ञान कराने को। ज्ञान कराने को व्यवहार है। है तो हेय। उसका ज्ञान कराने को कहा है। जानना तो है या नहीं? भले राग हो, परन्तु जानना तो है या नहीं? कि यह ज्ञान से भिन्न चीज़ है। ऐसा ज्ञान तो करना है या नहीं? श्रद्धा को आश्रय नहीं। आहाहा!

ऐसे **चार भावान्तरों को अगोचर...** अर्थात् चार भाव से... नीचे लिखा है न? **उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है, ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।** कारणप्रभु सम्यग्दर्शन का कारणभगवान, वह चार

भाव के आश्रय से अगम्य है। चार भाव से अगम्य है, ऐसा नहीं। यह शब्द लेने का अर्थ यह है। चार भाव के आश्रय से अगम्य है। वह तो त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

कारणपरमात्मा। आहाहा! यहाँ त्रिकाली आत्मा को कारणपरमात्मा कहा। कारणपरमात्मा (कहा) क्योंकि उसके आश्रय से कार्य होता है। समझ में आया? वह भी प्रश्न हुआ था। वीरजीभाई का लड़का है न? त्रिभुवनभाई राजकोट। कि महाराज! कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा कहते हो तो कारण का तो कार्य आना ही चाहिए? ऐसा प्रश्न हुआ था। कारणपरमात्मा कहो आत्मा को, तो कार्य तो आता नहीं। वहाँ कारणपरमात्मा कैसे (हुआ)? परन्तु प्रभु! कारणपरमात्मा है, वह जिसकी प्रतीति में आया, उसको कारणपरमात्मा है। प्रतीति में न आया उसे कारणपरमात्मा है कहाँ? वह तो पर्याय है और राग है। प्रतीति में आया कि भगवान ऐसा है, उसको कारणपरमात्मा है। तो कारणपरमात्मा प्रतीति में आये उसको सम्यग्दर्शन का कार्य हुए बिना रहे ही नहीं। समझ में आया? वह चार भाव से अगम्य है। वह कैसा है, वह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १५, सोमवार, दिनांक - २३-०७-१९७९
गाथा-३८, प्रवचन-३

नियमसार, ३८ गाथा। मुख्य बात है। एक तरफ भगवान आत्मा और एक तरफ पर्याय और परद्रव्य का ज्ञान। पर्याय भी वास्तव में आत्मा नहीं। आहाहा! जो आत्मा यहाँ उपादेय कहने में आया है, वह आत्मा तो पर्याय बिना का है। वह आया न? **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** आहाहा! ज्ञायकभाव... एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय की स्वर्ग तक कोई भी पर्याय अन्दर हो, परन्तु द्रव्य तो निरावरण त्रिकाली शुद्ध है, उस द्रव्य को यहाँ स्वद्रव्य कहा है। और स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है, ऐसे आत्मा को आत्मा वास्तव में उपादेय है।

उपादेय करती है पर्याय, परन्तु उपादेय है द्रव्य। समझ में आया? आहाहा! फिर से। त्रिकाली स्वभाव जो भगवान पूर्णानन्द प्रभु वह उपादेय, आदरणीय और स्वीकार करनेयोग्य है। परन्तु स्वीकार करता है कौन? पर्याय। क्योंकि ध्रुव में, आदर करना, स्वीकार करना या परिणमन करना उसका स्वभाव नहीं। ध्रुव है त्रिकाली भगवान... आहाहा! जिसको पर सन्मुख का लक्ष्य छूट गया है और केवल आत्मा जिसको दृष्टि में आया है, ऐसे आत्मा को ही 'आत्मा' उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र भी उपादेय नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान जो ८०वीं गाथा में ऐसा कहे। प्रवचनसार। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' जो अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय को जाने '**सो जाणदि अप्पाणं**' यह तो एक निमित्त से कथन है। समझ में आया?

परद्रव्य का द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान, वह तो परलक्ष्यी राग है। अरे! अपने में भी... नियमसार में आया है आवश्यक अधिकार में कि अपने द्रव्य, गुण और पर्याय तीन का विचार करते हैं, वह भी पराधीन (बुद्धि) है। आहाहा! भगवान का द्रव्य-गुण-पर्याय जानना, वह तो निमित्त से बात है, उस ओर का लक्ष्य छोड़कर... पाठ तो ऐसा है कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं। सो जाणदि अप्पाणं**' ऐसा आत्मा लिया है कि अरिहन्त के सर्वज्ञपना का जिसको यथार्थ अन्तर में परलक्ष्यी ज्ञान में निर्णय हुआ। परलक्ष्यी ज्ञान में। आहाहा! वह अपना स्वलक्ष्य करने को लिया है। कि सर्वज्ञ

जो है ऐसा ही मैं हूँ। मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञ (स्वभावी है), सर्वज्ञ। अपने और पर को— सबको जानने का स्वभाव मेरा त्रिकाल है। वह त्रिकाल स्वभाव भी नियमसार में कहा है... में कि त्रिकाल स्वभाव भी स्व-पर को पूर्ण जानता है। जानता है (का अर्थ यह कि) उसकी शक्ति ऐसी है। समझ में आया?

जानता है, वह तो पर्याय है। वह पर्याय में जाननेयोग्य, आदरनेयोग्य चीज़ क्या है? कि आत्मा जो त्रिकाली शुद्ध प्रभु... आहाहा! पर्याय का अपने पूर्ण में झुकना, पूर्ण स्वरूप में पर्याय का झुकना, उसको आत्मा उपादेय कहने में आया है। आहाहा! अब ऐसी बातें लोगों को (सुनने न मिले)। बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

ऐसे आत्मा को आत्मा वास्तव में उपादेय है। आहाहा! जिसका सब पर का लक्ष्य छूट गया, निमित्त का तो छूट गया, राग का भी छूट गया, परन्तु पर्याय का लक्ष्य भी छूट गया। ऐसी पर्याय में त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का निधान-खान, ऐसा आत्मा उपादेय है। आहाहा! आत्मा उसे भी जाना सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, वह भी पर्याय है, उसको भी यहाँ तो परद्रव्य कहने में आया है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती, वैसे संवर, निर्जरा, मोक्ष का मार्ग उत्पन्न हुआ त्रिकाल के आश्रय से, परन्तु उसमें से नयी शुद्ध पर्याय नहीं आती। पर्याय में से शुद्धि की पर्याय नहीं आती। द्रव्य में से आती है, तो पर्याय को परद्रव्य कहकर त्रिकाली को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

वह आत्मा **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** आहाहा! प्रभु! उदयभाव जो है... दया, दान, व्रत, भक्ति, विनय आदि विकल्प, वह उदयभाव है। वह उदयभाव से तो अगम्य है। उसके तो आश्रय से तो नहीं, परन्तु उससे भी आत्मा का ख्याल नहीं आता। अब रहे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। वह है निर्मल पर्याय। उसके आश्रय से ख्याल में नहीं आता। उस कारण से चार भावों से आत्मा अगम्य और अगोचर कहने में आया है। फिर भी सम्यग्दृष्टि को उपशमभाव और क्षयोपशमभाव में गोचर होता है। चार भाव से अगोचर कहा, अगम्य कहा।

मुमुक्षु : आश्रय की अपेक्षा से...

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय से अपेक्षा से... आहाहा! वह तो '**भूदत्थमस्सिदो**' जो ११वीं गाथा है, उसका विशेष स्पष्टीकरण है। मूल गाथा (समयसार) ११वीं सारा जैनदर्शन का प्राण है। आहाहा! वह एक समय में भूतार्थ चीज़ है अनादि-अनन्त ऐसा कहना भी... वर्तमान में पूर्ण जो है। आहाहा! वही आत्मा चार भाव से अगम्य है। अर्थात्? चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव के आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! फिर भी सम्यग्दृष्टि को गम्य है। उसका अर्थ कि आश्रय त्रिकाली का लिया है, सम्यग्दर्शन की पर्याय का आश्रय नहीं लिया। जिस दृष्टि ने उपादेय स्वीकारा, उस दृष्टि का आश्रय नहीं लिया। समझ में आया? आहाहा!

जो भगवान पूर्ण परमात्मा... लो, आपके (बेटे) परमात्मा से याद आया। यह लेकर गया है इन्टरव्यू। पढ़ लिया है, दस पन्ने हैं न? वाँचे हैं, यह परमात्मस्वरूप... एक समय की पर्याय उसका आदर करती है, परन्तु वह पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात कठिन लगे। सोनगढ़ ने नया निकाला है ऐसा कहते हैं। नया नहीं, प्रभु! अनादि का मार्ग है। अनादि का अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त सर्वज्ञों का यह मार्ग है। प्रभु का, तीर्थंकर का, सर्वज्ञ का विरह हो गया भरतक्षेत्र में। (प्रभु का) तो विरह पड़ा, परन्तु केवलज्ञान का विरह पड़ा। विरह का अर्थ अपने में केवलज्ञान उत्पन्न होता है, उसका भी विरह पड़ गया। आहाहा! अपने में। भगवान तो भले भगवान के पास रहे, उनका तो यहाँ विरह है। परन्तु केवलज्ञान उत्पन्न होना, उसका विरह हो गया। परन्तु केवलज्ञान की पर्याय से नजदीक की सम्यग्दर्शन की पर्याय, उसमें आत्मा गम्य हो जाता है। आहाहा! अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ का विरह नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी बात ली है... दिगम्बर सन्त तो बात करते हैं... होता है। नया कर्म बाँधते हैं। ऐसी बात करें। फिर भी मूल बात तो ऐसी कहे, यह भगवान आत्मा में वर्तमान पर्याय ने झुकाव (करके) अन्दर करके अनुभव हुआ, वह अनुभव सम्यग्दर्शन में ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनों साथ में है। 'अनुभव लक्ष प्रतीत' ऐसा तीन बोल हैं श्रीमद् में, आत्मसिद्धि में। समझ में आया? 'अनुभव लक्ष प्रतीत'। लक्ष्य वह ज्ञान है, प्रतीत वह श्रद्धा है, अनुभव है, वह आनन्द का आचरण है। है न? आत्मसिद्धि में है। यह बात तो श्रीमद् ने बहुत ऊँची कही है। मात्र एक श्वेताम्बर और दिगम्बर की भिन्नता

बाहर आयी नहीं। उसने तो बाहर कर डाली अन्त में तो। सत्शास्त्र के नाम पर श्वेताम्बर का एक भी शास्त्र नहीं। परन्तु उसके भक्तों को छोड़ना मुश्किल पड़ा। श्वेताम्बर का आश्रय... श्वेताम्बर भी एक है। दिगम्बर भी है और श्वेताम्बर—दोनों ही (सच्चे) धर्म हैं।—यह बात झूठ है। समझ में आया?

यहाँ तो दिगम्बर में तो यह बात है कि एक त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा न मानकर, दया-दान, व्यवहार करते-करते होगा, (ऐसा मानता है), वह भी जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वस्तु का स्वरूप है। भगवान आत्मा देहदेवल में अमृत का पूर भरा है। अतीन्द्रिय अमृत मधुर स्वाद से भरा पड़ा है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप है। जैसे कलश होता है न? क्या कहते हैं कलश को? लोटा... लोटा... भूल गये। बाहर की भाषा भूल गये। लोटा... लोटा... लोटे में पानी भरा है न? पूरा-पूरा भरा है। वैसे यह लोटे जैसा देह है। देह में भिन्न भगवान अमृत के पूर से पूरा भरा है। आहाहा! यह देह भी कलश है न? ऐसा सिर है। ऊपर लोटे के भाग जैसा यह है। आहाहा!

शास्त्र में कहा है एक जगह। तीन प्रकार विग्रह शरीर कहा। तीन प्रकार का शरीर। एक त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, वह ज्ञानशरीर है। समझ में आया? एक पुण्य-पाप के विकल्प का समूह, वह विकार शरीर है, विग्रहम्। उसको विग्रह कहा है। विकार को विग्रह कहा है, ज्ञानस्वरूप को विग्रह कहा है और यह शरीर तो विग्रह है ही। समझ में आया? शरीर विग्रह है, उससे भी रहित है और पुण्य-पाप का विकल्प असंख्य प्रकार का है, वह भी एक विग्रह है। शरीर है, विकार एक शरीर है, स्वरूप है। उससे भी भगवान ज्ञान विग्रहं भिन्न है। वह पूर्ण भरा है, उसको भी चार भाव से अगम्य कहा। अर्थात् चार भाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! यह त्रिकाली नाथ का आश्रय लेने से... परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है, ऐसा विश्वास बैठना बहुत कठिन है। आहाहा! दो बीड़ी ठीक से पीये, तब तो पायखाना-जंगल (दस्त) उतरे, इतने तो अपलक्षण। उसको यह कहना... आहाहा!

और जिसको भगवान तो ऐसा कहते हैं कि जो छह आवश्यक करते हैं न? वह शुभभाव का अवश्य करनेवाला भी धर्म नहीं, वह परवश है, स्वतन्त्र नहीं। आहाहा!

छह आवश्यक व्यवहार है न? वह आवश्यक का परिणाम आता है। भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बात है। मुखारविन्द से छह आवश्यक की परिभाषा की आगम में रचना है, परन्तु वह छह आवश्यक का भाव जो है व्यवहार, वह भी परवश है। वह प्राणी परवश है—पराधीन है, स्वतन्त्र-स्ववश नहीं। आहाहा!

यहाँ तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप ज्ञान का पुंज है, यह पूर्ण का आश्रय लेने से आवश्यक अर्थात् जो क्रिया अवश्य करनेयोग्य है, वह क्रिया यह है। अवश्य करनेयोग्य तो यह है। आहाहा! परद्रव्य, गुण, पर्याय का वहाँ लिया है (प्रवचनसार गाथा) ८० में और जिसको अरिहन्त का द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान हो, उसको आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा कहा है। वह निमित्त से परिभाषा कही।

यहाँ तो स्व आत्मा, उसका तीन भाव का विचार करे कि यह द्रव्य है, यह गुण और यह पर्याय है, वह भी विकल्प और राग और परवश, पराधीन दुःखी है। आहाहा! कठिन बात है। ८० में तो परद्रव्य की बात कही। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने। परद्रव्य का ज्ञान तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया, सीधी वाणी-सीधी दिव्यध्वनि सुनी है। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा। महाविदेह में तीर्थंकर का विरह कभी होता नहीं। त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी होता नहीं। क्या कहा? त्रिकाल ज्ञेय है तो त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी होता ही नहीं। आहाहा! जैसे त्रिकाल वस्तु है, वैसे त्रिकाली जाननेवाला भी अनादि से है। सर्वज्ञ का अभाव मनुष्य क्षेत्र में कभी होता नहीं। आहाहा! परन्तु वह सर्वज्ञ का विरह... उसका द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय किया, वह आत्मा को जानता है—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार से कथन है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह बात... द्रव्य-गुण-पर्याय जैसा भगवान का देखा, ऐसे मेरी चीज़ भी द्रव्य परिपूर्ण है, गुण परिपूर्ण है, पर्याय में अल्पता है। वह पर्याय द्रव्य का आश्रय करे, तब पर्याय और गुण अभेद होकर सम्यग्दर्शन होता है, तब अरिहन्त का द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान लक्ष्य में रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। क्योंकि कारणपरमात्मा, भगवान आत्मा कारणपरमात्मा है। आहाहा! कहा था न? वह प्रश्न आया था। ... वीरजीभाई का लड़का आया था।

वारिया। गुजर गये। काठियावाड में दिगम्बर का अभ्यास सबसे पहले वीरजीभाई को था। बहुत बड़े वीरजी वकील थे। जामनगर। तो वह तो ९० वर्ष में गुजर गये। बाद में उसका लड़का आया त्रिभोवन। रात को उसने प्रश्न किया। महाराज! कारणपरमात्मा कहते हो तुम... कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारण हो तो कार्य होना चाहिए। कारण है तो कार्य तो आया नहीं। कारणपरमात्मा त्रिकाली भगवान आत्मा एक समय की पर्याय से भिन्न है। आहाहा! कारणपरमात्मास्वरूप भगवान उसे कारण कहो तो कार्य तो होना चाहिए। प्रभु! परन्तु कारण पूर्णानन्द है, वह प्रतीति किसको आयी? वह प्रतीति आयी, उसको कारणपरमात्मा है। आयी नहीं तो उसको विकल्प और पर्याय की प्रतीति है। वहाँ कारण वस्तु इतनी है पूर्णानन्द का नाथ, उसकी तो प्रतीति है नहीं। समझ में आया? मार्ग बहुत दुष्कर है, बापू! आहाहा! परन्तु ... उसकी है।

'सततं सुलभ' में ऐसा कहा है। निरन्तर सुलभ प्रभु है अन्दर। आहाहा! भगवान विराजते हैं तेरी नजर... अन्य मत में कहते हैं 'मेरी नजर के आलस से रे मैं निरख्या न नयणे हरि।' हरि अर्थात् आत्मा। पंचाध्याय में कहा है, हरति इति हरि। जो मिथ्यात्व और दोष का नाश करे, वह हरि, वह भगवान आत्मा। उसको यहाँ हरि कहते हैं। वह हरि 'नयण के आळसे रे, नयण ने आळसे...' ज्ञाननैत्र तो है, परन्तु वह ज्ञाननैत्र ने पर ऊपर लक्ष्य करके परप्रकाशक ज्ञान किया... तो वह परप्रकाश ज्ञानपर्याय का स्वभाव नहीं। स्वभाव तो स्वपरप्रकाशक है। फिर भी पर का केवल ज्ञान किया, उसमें स्व भगवान आया नहीं, इसलिए परप्रकाशक ज्ञान मिथ्या है। समझ में आया? आहाहा!

१७वीं गाथा में कहा है न १७वीं समयसार? प्रथम में प्रथम प्रभु! क्या करना? तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, प्रथम में प्रथम आत्मा जानना। वहाँ ऐसा विकल्प से पहले निर्णय करना, नय-निक्षेप से (निर्णय करना)... १३वीं गाथा में आया है, ७५वीं गाथा में आया है। पहले निर्णय करना पीछे विकल्प को छोड़कर... विकल्प छोड़कर अनुभव करना। वहाँ तो सीधी बात कही १७वीं गाथा में। प्रथम जानना... तावत्—पहले आत्मा जानना। आहाहा! आत्मा जानना, ऐसा कहा... वहाँ ऐसा कहा है कि अपनी ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में तो आता है अनादि से। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। तो स्वप्रकाशक उसकी ज्ञान पर्याय में

आता तो है, परन्तु उसकी नजर वहाँ नहीं। आहाहा! क्या कहा? १७वीं गाथा में।

ज्ञान की पर्याय जो है, तो ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में अज्ञानी को भी आता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से स्वप्रकाश उसमें आता है। अनादि अज्ञानी के ज्ञान में भी स्वप्रकाशक आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! फिर भी उसकी नजर पर्याय और राग पर होने से; पर्याय में जानने में आता है, फिर भी जानने में आया नहीं। क्या कहा, समझ में आया? पर्याय का धर्म है—ज्ञान की पर्याय का स्वभाव, 'स्वपरप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं भेद भ्रम भारी, ज्ञेयशक्ति दिविधा प्रकाशी, निजरूपा पररूपा भासी।' तो निज में पर का जानना, वह ज्ञान की पर्याय का स्वरूप ही ऐसा है। अज्ञानी के ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य भी इतना है। आहाहा!

परन्तु ऐसे ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है, तथापि नजर उस तरफ नहीं। नजर में—राग और पर्याय की नजर में, पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, वह द्रव्य सारा उड़ गया। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? पर्याय में... राग से नहीं, राग में नहीं। ज्ञान की पर्याय में... भगवान त्रिलोकनाथ यहाँ आत्मा जो कहते हैं, वह ज्ञान में तो आता है, उसका स्वभाव है इसलिए। आता है, तथापि उसकी दृष्टि द्रव्य पर नहीं। उसकी दृष्टि पर्याय ऊपर होने से पर्याय को ही जानता है, पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, वह बात भूल जाता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक है। यह कोई साधारण लोगों का काम नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **(कारणपरमात्मा) द्रव्यकर्म,...** जड़... ज्ञानावरणादि जड़कर्म से रहित है प्रभु। **भावकर्म,...** दया, दान के विकल्प तो प्रभु भिन्न है। आहाहा! अन्दर में त्रिकाली प्रभु भिन्न है। दया, दान, व्रत, भक्ति (और) जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भावकर्म है, उससे भी प्रभु तो रहित है। आहाहा! ऐसा आत्मा पूर्णानन्द की प्रतीति अन्दर आना और प्रतीति आकर अन्दर में अनुभव में आना। आहाहा! प्रतीति को व्यवहार कहा। समझ में आया? वह द्रव्यकर्म से रहित है, भावकर्म से रहित है। और **नोकर्मरूप उपाधि से जनित...** आहाहा! **विभावगुणपर्याय से रहित है,...** आहाहा!

वास्तव में राग से गुण विभाव से तो रहित है। परन्तु मति अज्ञान आदि को भी विभावगुण पर्याय कहा। अरे! मतिज्ञान सम्यक् को भी विभावगुण पर्याय कहा है।

नियमसार। पहली शुरुआत में उपयोग के अधिकार में। उससे भी रहित है। जो मतिज्ञान में, आहाहा! स्व जानने में आया, उस मतिज्ञान से भी वस्तु रहित है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। मतिज्ञान जो सम्यग्ज्ञान का अंश है, केवलज्ञान का अंश है... वह भी प्रश्न हुआ था बहुत कि केवलज्ञान का अंश कहाँ है? झूठ है। केवली को चार घाति का नाश करके पूर्ण केवलज्ञान होता है। उसका अंश नीचे होता नहीं। चर्चा आयी थी, बड़ी हिन्दुस्तान से।

केवलज्ञान का अंश कैसे कहते हो? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्यग्ज्ञान है, वह केवलज्ञान का अंश है। केवलज्ञान तो घातिकर्म के नाश से पूर्ण होता है। यह उस पूर्ण का अंश है? समझ में आया? जयधवल में पाठ आया है कि एक स्तम्भ है, स्तम्भ। स्तम्भ में हांसिया (भाग) होता है न? वह एक हांसी देखने से... सारा अवयवी है, उसका अवयव है। सारा स्तम्भ का एक हांसी देखने से... सारा स्तम्भ अवयवी है उसका... यह हांस होती है न? क्या शब्द है तुम्हारे? भाग। एक भाग। एक भाग देखा, वह तो अवयव है। उसको देखते हैं, वह अवयवी को भी देखते हैं। आहाहा! इसी प्रकार ऐसे मतिज्ञान को भी यथार्थ देखते हैं, वह मतिज्ञान भी केवलज्ञान का अंश है— अवयवी का अवयव है। तो वह मतिज्ञान में भी केवलज्ञान की प्रतीति आती है यथार्थ। आहाहा! और केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह सर्वज्ञस्वभाव में से उत्पन्न होती है। तो जिसको मतिज्ञान में यथार्थ आया, उसको सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की भी प्रतीति आ गयी। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक है। लोगों ने लौकिक जैसा बना दिया। यह तो अलौकिक बात है।

वह ऐसा कहते हैं कि देखो! कारणपरमात्मा विभावगुणपर्याय... मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। समझ में आया? राग से तो भिन्न है, परन्तु मतिज्ञान विभावगुणपर्याय से भी प्रभु तो भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **उपाधि से जनित...** आहाहा! **विभावगुणपर्यायों से रहित है,...** क्योंकि मतिज्ञान में भी अभी ज्ञानावरणीय का निमित्तपना है और अपने में हीनपना अपने से है। ऐसी हीनरूप दशा है तो उसको वहाँ विभावगुणपर्याय कहा है, उससे भगवान रहित है। आहाहा!

ज्ञान में जो चीज जानने में आती है... मतिज्ञान में वस्तु जानने में आये, (परन्तु)

वह विभावगुणपर्याय से वस्तु रहित है। आगे है आसपास में। मतिज्ञान आदि चार को विभावगुणपर्याय कहा है। उपयोग (अधिकार) में आ गया है। १०-११ गाथा है न उसमें। मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। अब जानने में मतिज्ञान से आता है। सम्यक् मतिज्ञान जहाँ अन्तर में झुकता है... आहाहा! प्रभु जहाँ विराजता है पूर्णानन्द का नाथ, उसके तल में जाता है, उसके पाताल में जाता है... उस (बाहर के) पाताल का तो अन्त है। कहा था न? यहाँ तो पानी के पाताल का तो अन्त है। क्योंकि पानी कितना भी गहरा हो... समुद्र हो न। वहाँ कहा था न? समुद्र बहुत गहरा है। बहुत गहरा समुद्र है। परन्तु उस समुद्र के तल (के नीचे) तो नारकी का एक हजार योजन का पासडा है। समझ में आया? वह हजार योजन के नीचे नारकी हैं।

पानी का समुद्र... कोई कहता था बहुत गहरा है, उस जगह में। अपने में से ही कहता था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... महासागर। कहाँ? हाँ, वह। कहते थे। अमेरिका महासागर बहुत गहरा... बहुत गहरा है। फिर भी उसके नीचे नारकी का स्थल है। (उस) पाताल का तो अन्त आ गया। यहाँ तो पाताल का (नाप) लेनेवाली चीज़ जो है, वह चीज़ (पर्याय) अन्दर में नहीं। आहाहा! पाताल तो अनन्त... अनन्त गुण हैं न? तो पाताल के आखिर का अन्त तो है ही नहीं कोई। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त को अनन्त बार गुणों, अनन्त को अनन्त बार, अनन्त बार, अनन्त बार गुणो। एक अनन्त में एक अनन्त गुणा (करने से) जो आये, उसे फिर से दूसरे अनन्त से गुणो, ऐसा अनन्त बार गुणो तो भी आखिर का अन्त आत्मा की गुण की संख्या में आता नहीं। आहाहा! ऐसा गहरा पाताल है तल... अपनी एक समय की पर्याय अन्तर तल है अन्तरात्मा, उसका पता ले लेती है, परन्तु वह पर्याय विभावगुणपर्याय होने से अन्तर में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। व्रत करो, अपवास करो, यह आसान है। देवदर्शन करना, मन्दिर जाना हमेशा, भगवान की स्तुति करना। चिल्लाकर भक्ति करे, वह भाषा तो जड़ है। स्तुति करे वह तो राग है। आहाहा! वह राग का तो अभाव है आत्मा में, परन्तु मतिज्ञान में आत्मा ख्याल में आया, वह मतिज्ञान विभावगुण पर्याय है। आहाहा! है?

उपाधि से जनित... कहा है। जनित का अर्थ निमित्त। इतना अभी निमित्त है न कर्म? आहाहा! चार भाव को भी आवरणसहित कहा है उसमें। चार भाव को आवरण... आवरणसहित का अर्थ? कि आवरण उदय में है निमित्त (रूप से) और तीन में आवरण का अभाव है, इतनी अपेक्षा आयी न? तो उसे आवरणवाला कहा है। और त्रिकाली परमात्मस्वरूप सकल त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ से आयी? यह तो सारा दिन भगवान के दर्शन करना,... करना। क्या कहते हैं वह? झांझर। भगवान की स्तुति की, भगवान का मन्दिर बनवाया, पाँच लाख का खर्च किया, पच्चीस लाख का खर्च किया। लो, अफ्रीका में बीस लाख का मन्दिर होता है। दो हजार वर्ष में कभी नहीं हुआ दिगम्बर मन्दिर। तो उसको कहा कि देखो भाई! मन्दिर तो मन्दिर से बनता है। आपका भाव है, वह तो शुभभाव है। धर्म-बर्म नहीं। वह आये थे व्याख्यान में।

एक रायचन्दभाई हैं। कहाँ गये रामजीभाई? रामजी... उसका भानेज है। लड़का-लड़की है नहीं। माता है। दो लाख दो हजार तो मन्दिर में... क्या कहते हैं? शिलान्यास। शिलान्यास करते समय दो लाख दो हजार रकम तो दी। अफ्रीका, नैरोबी... नैरोबी। रामजीभाई नहीं आये? उस ओर हैं। सेठ बैठे हैं। उसकी बहन का लड़का है। पति-पत्नी दो ही हैं। लड़का-लड़की नहीं। दोनों के पास बहुत पैसे हैं। मन्दिर का मुहूर्त किया नैरोबी में दिगम्बर मन्दिर। वह लोग है श्वेताम्बर। आठ घर तो करोड़पति है और दूसरे घर तो दस, पन्द्रह, बीस, पच्चीस लाख। यह हमारे किशोरभाई के भाई आये हैं न? उसके पास तो पैसे बहुत हैं। बहुत लाख... बहुत लाख। परन्तु वह कोई पैसे से धर्म होता है और मन्दिर बनवाने से धर्म होता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि विभाव मतिज्ञान है, उसका भी तेरे में अभाव है। तेरे में अभाव है तो उसके आश्रय से तुझे अनुभव कैसे होगा? आहाहा! जिसका तेरे में अभाव है, उसके आश्रय से भाव कैसे ज्ञान में आता है? आहाहा! कपूरचन्दजी! यह कपूर की सुगन्ध ऐसी है। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ, विभावगुणपर्याय से रहित है। **तथा अनादि-अनन्त...** आहाहा! यह तो आदि और अन्त बिना की चीज़ है...

है... है... है... है... जिसकी आदि नहीं। सत् है, उसकी आदि क्या? है, उसकी शुरुआत क्या? है, उसको 'यह हुआ' ऐसा कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

यह हमारे पालेज में चर्चा हुई थी। ६५-६६ की बात है। पालेज में दुकान थी न? तो एक वेदान्ती आया था बड़ा और एक आया था कबीर का साधु। धर्मशाला है दुकान के पास में। तो बड़ी चर्चा हुई दोनों के बीच में। हम जैन थे (फिर भी) गये थे। हमारी छोटी उम्र १८-१९ साल की उम्र थी। दोनों के बीच में चर्चा हुई तो हम जैन सुनते थे। वह कबीर (पंथी) पूछता था उसको कि जगत ईश्वर ने बनाया तो ईश्वर कहाँ खड़ा रहा था? ईश्वर खड़ा कहाँ रहा था जब यह बनाया? खड़ा जहाँ रहा तो एक चीज़ हो गई पहले। कबीर (पंथी) ने प्रश्न किया था। वह कहे, मुझे जवाब दो। वह कहे, मेरे शिष्य बनो तो जवाब दूँगा। परन्तु पहले मुझे जवाब तो दे। हम जैन लोग देखने गये थे, तो पहले एक साधु ने हमारे सामने नजर करके कहा, क्यों भाई! बात बराबर है न?

ईश्वरकर्ता हो तो ईश्वर... ईश्वर को किसने किया, वह तो बाद की बात। परन्तु ईश्वर जहाँ खड़ा है और सामग्री कहाँ से लाया बनाने की? सामग्री तो नहीं थी। समझ में आया? हमारे तो पहले से वह चर्चा होती थी न छोटी उम्र में से। दुकान घर की थी। तेरी बात सत्य है, भाई! ऐसा कहा था तब। ईश्वरकर्ता हो तो... श्रीमद् में तो ऐसा कहा कि ईश्वर कर्ता हो, तो जो ईश्वर (को) नहीं (मानता), उसको जन्म क्यों दिया उसने? समझ में आया? क्या कहा? श्रीमद् ने ऐसा कहा कि ईश्वर नहीं है, ऐसा कहनेवाला जो यहाँ है जैन, ईश्वर कर्ता हो तो जन्म क्यों दिया उसको?

श्रीमद् ने लिखा है मोक्षमाला में। कि परमात्मा जो कर्ता है, तो परमात्मा—ईश्वर जगत का कर्ता नहीं, ऐसे माननेवाले को जन्म क्यों दिया? आपकी बात सब झूठी है। यहाँ कहा कि अनादि-अनन्त के ऊपर से यह बात चलती है। अनादि से अनन्त है, तो आदि भी नहीं। आहाहा! है, उसकी आदि क्या? और है, उसका अन्त क्या? और है, उसके स्वभाव से रहित कहाँ? समझ में आया? तीन बोल कहे। ७६ गाथा में आता है। ७६ गाथा, समयसार। है, उसकी आदि कहाँ? और है, उसका नाश कहाँ? और है, चीज़ जो है, वह स्वभाव से खाली कहाँ? आहाहा! वह अनादि-अनन्त है।

अब स्वभाव कहते हैं। वह काल कहा पहले। **अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला...** देखो! क्योंकि जो है, वह स्वभाव बिना रहता नहीं। स्वभाववान है, तो स्वभाववान स्वभाव बिना रहे नहीं। स्वभाववान आत्मा वह स्वभाव बिना रहे नहीं। क्या स्वभाव? अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला... आहाहा! भाई! थोड़े शब्द में यह तो सन्तों की वाणी है। बहुत गूढ़ है, बहुत गूढ़। आहाहा! एक तो आदि-अन्त नहीं प्रभु का और यह अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। अतीन्द्रिय स्वभाव जिसका है। इन्द्रिय से तो पता नहीं खाता। आहाहा! परन्तु पर्याय से भी, पर्याय के आश्रय से पता नहीं मिलता। ऐसा अतीन्द्रिय स्वभाव है उसका। आहाहा! वह अतीन्द्रिय स्वभाव का अतीन्द्रिय स्वभाव से पता चलता है। उसकी पर्याय में अतीन्द्रिय स्वभाव प्रगट हो, उससे अतीन्द्रिय स्वभाव का ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द से तो परिपूर्ण भरा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द तो उसका स्वभाव है। स्वभाव क्या? स्व-भाव—अपना भाव-भाववान का स्वभाव-स्वभाववान का स्वभाव। ऐसे अतीन्द्रिय स्वभाववाला **शुद्ध...** आहाहा! प्रभु तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा! पर्याय में अशुद्धता दिखती है। वस्तु में अशुद्धता है नहीं। आहाहा! **सहज...** स्वाभाविक **परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है...** आहाहा! जिसका स्वभाव परमपारिणामिकभाव है। मात्र पारिणामिक नहीं कहा। क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिक कहते हैं। क्या कहा? जयधवल में पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा है। अरे! राग को पारिणामिक कहा है, उदय, उपशम, क्षयोपशम को पारिणामिक कहा है। पर्याय है उसको पारिणामिक कहा, परन्तु परमपारिणामिक नहीं। समझ में आया? आहाहा!

परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है... आहाहा! सहज स्वरूप है त्रिकाल। परमपारिणामिक अर्थात् सहजस्वभाव। जिसको ६वीं गाथा में ज्ञायक कहा, ११वीं में भूतार्थ कहा, उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहा है। ६वीं गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय से रहित है, ऐसा कहा। और वह प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित न हो और शुभ-अशुभभाव सहित हो तो शुभ-अशुभभाव तो अचेतन जड़ है। भगवान तो ज्ञान से भरा है, परिपूर्ण चैतन्य रसकन्द है। वह चैतन्यरस जड़रूप होता नहीं कभी। शुभ-अशुभभाव, वह जड़ है। आहाहा! है उसमें? समयसार में है ६वीं गाथा। समझ में आया?

यह तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! परमपारिणामिकभाव। जयधवल में राग को भी पारिणामिकभाव कहा है, शुभ-अशुभभाव को भी पारिणामिक कहा। क्योंकि पारिणामिकभाव की पर्याय है न। यहाँ तो कहते हैं कि यह (रागादि) वस्तु से रहित, यह तो परम पारिणामिकभाव है। केवलज्ञान की पर्याय को भी पारिणामिक कहा है। है व्यवहारनय सद्भूतव्यवहारनय। आहाहा! अंश है न? यह तो परमपारिणामिक प्रभु त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा!

परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है-ऐसा कारणपरमात्मा... आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा... आहाहा! त्रिकाली वस्तु को यहाँ कारणपरमात्मा कहा है। कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, भूतार्थ कहो, ज्ञायक कहो—सब एक ही है। आहाहा! ऐसी बात! अलौकिक है, बापू! अनन्त काल से है। दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु अन्तर स्पर्श नहीं किया, वह क्रियाकाण्ड में घुसकर यह धर्म है और उससे लाभ होगा... पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण जो राग है उदयभाव, उदयभाव से पारिणामिकभाव प्रगट होगा। आहाहा!

यहाँ तो परमपारिणामिक स्वभाव प्रगट है ही। ११वीं गाथा में कहा है। जहाँ '**भूदत्थमस्सिदो**' कहा है न? वहाँ ऐसा कहा है कि ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है। ऐसा पाठ है टीका में। ज्ञाायकभाव आविर्भाव होता है? पाठ तो ऐसा है। ११वीं गाथा। '**भूदत्थमस्सिदो**' और ज्ञायकभाव तिरोभाव होता है, ऐसा कहा है। संस्कृत टीका है ११वीं गाथा में। उसका अर्थ कि जिसको पर्याय में ख्याल में नहीं आया, उसको ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। आहाहा! और ज्ञायकभाव प्रगट हुआ—आविर्भाव हुआ, ऐसा लेना। ज्ञायकभाव तो प्रगट है ही है। परन्तु जिसकी पर्याय में ख्याल में आया, उसको 'ज्ञायकभाव है' ऐसा प्रगट हुआ। प्रतीति में आया तो प्रगट हुआ, है वह प्रगट हुआ। आहाहा!

और वहाँ तो ऐसा कहा है कि ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया। द्रव्य कभी तिरोभूत होता है? द्रव्य कभी आवरण में आता है? द्रव्य तो त्रिकाली निरावरण है। द्रव्य को त्रिकाल निरावरण कहना और तिरोभूत कहना... आहाहा! वह तो अपनी पर्याय में परलक्ष्य है, तो ज्ञायक जो वस्तु है, वह उसके ख्याल में आया नहीं, तो उसको

पर्यायवाले को—पर्यायदृष्टिवाले को वह (प्रगट) है नहीं तो तिरोभूत हो गया। वह तो है ही है। वहाँ (द्रव्य) कोई तिरोभूत और आविर्भूत होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं।

ऐसा कारण परमात्मा वह... आहाहा! **वास्तव में आता है।** देखो! पर्याय को छोड़कर केवल त्रिकाली स्वभाव, वही वास्तव में आत्मा है। आहाहा! जिस पर्याय से ख्याल में आया, वह पर्याय भी आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विषय किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय किया उसको। विषय जो हुआ है, वह आत्मा। आहाहा! जो त्रिकाली आत्मा है, वह निश्चय आत्मा है। पर्याय बिना का जो त्रिकाली है, वही निश्चय है। आहाहा! सुबह में तो ऐसा आया था कि जो अपने परिणाम से परिणमे, वह जीव ही है। बापू! कब कौन-सा अधिकार चलता है और किस अपेक्षा से चलता है, वह बात समझ में आती नहीं। 'जहाँ जहाँ जो जो योग्य है वहाँ समझना वही।' जहाँ-जहाँ जो योग्य है, उस प्रकार समझना। सुबह में ऐसा कहा। जीव तावत्... क्रमबद्ध अपने परिणाम से उत्पन्न हुआ जीव ही है। परिणाम से उत्पन्न हुआ जीव ही है। यहाँ कहते हैं कि यह परिणाम आत्मा में है ही नहीं।

मुमुक्षु : सुबह ऐसा कहते हैं, शाम को ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हमारे फावाभाई कहते थे। हमारे फावाभाई थे न? बुद्धि कम, और यहाँ सुने। महाराज! आप सुबह में कुछ कहते हो और दोपहर में कुछ कहते हैं। निर्णय करने की ताकत नहीं। फावाभाई है न? इसके बेटे हैं न सूरत में? मनहर। करोड़पति है। एक करोड़ रुपया है। सूरत में है। यहाँ रहते थे। वहाँ हमारे पालेज में रहते थे। हम पालेज रहते थे न? ... पालेज में। वह तो ७० साल पहले की बात है। बुद्धि साधारण है। सुबह में कुछ आये और दोपहर में कुछ आये, इसमें हमें निर्णय क्या करना?

भाई! सुबह में कौन सी अपेक्षा से कहा? सुबह में तो ऐसा कहा कि अपने निर्मल परिणाम से आत्मा उत्पन्न होता है, उसको जीव कहा। निर्मल स्वभाव है न?

निर्मल गुण, उसके आश्रय से निर्मल पर्याय हुई तो उसको आत्मा कहा, उस अपेक्षा से। यहाँ तो कहते हैं कि निर्मल परिणाम जो है, उससे रहित जो त्रिकाली है, उसको आत्मा कहते हैं हम तो। आहाहा! समझ में आया? है?

सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा वह वास्तव में 'आत्मा' है। वह वास्तव में 'आत्मा' है। पर्याय भी आत्मा तो है, परन्तु अभूतार्थ व्यवहारनय से है। आहाहा! साधारण लोगों को अभ्यास न हो, उसको ऐसा लगे। बापू! परन्तु यह अभ्यास करना पड़ेगा। मनुष्यपना मिला है। चला जायेगा मनुष्यपना। कहाँ जायेगा? अवतार कहाँ होगा? मिट्टी उड़ती है न? क्या कहते हैं वंटोळिया को? उसमें तिनका कहाँ जाकर पड़ेगा? पवन बहुत आता है न? तिनका कहाँ जायेगा? ऐसे मिथ्यात्व में पड़े प्राणी का अवतार कहाँ होगा? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं... दूसरी जगह कहे कि पर्याय बिना का आत्मा होता नहीं। पर्याय विजुतं दव्वं... पंचास्तिकाय। पंचास्तिकाय का पाठ है। पर्याय विजुतं दव्वं होता नहीं। यह बात बराबर है। यहाँ कहते हैं कि जो आत्मा है त्रिकाली, उसको ही हम आत्मा कहते हैं। पर्याय को हम निश्चय आत्मा कहते नहीं। निर्मल पर्याय है, उसको भी हम निश्चय आत्मा नहीं कहते, वह व्यवहार आत्मा है। आहाहा! अरे! मोक्षमार्ग की पर्याय को भी व्यवहार आत्मा कहा है। यहाँ तो परद्रव्य कहा है न? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वह वास्तव में आत्मा है। आहाहा! स्वभावभाव से भरा परिपूर्ण प्रभु एकरूप कभी हीन नहीं होता, कभी आवरित नहीं होता, कभी विपरीत नहीं होता। अविपरीत, आवरण बिना का पूर्ण स्वरूप जो है, पर्याय बिना का, उसको यहाँ वास्तव में आत्मा कहने में आया है। वह आत्मा उपादेय है। है न? आहाहा! **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! अति निकट... जिसका संसार अल्प है, ऐसे भव्य जीवों को **ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है।** विशेष बात आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक - २४-०७-१९७९
श्लोक-५४, प्रवचन-४

यह शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव का अधिकार पर्याय की अपेक्षा से नहीं। शुभ और अशुभ और शुद्ध, ऐसी जो पर्याय है, वह बात नहीं। यह तो त्रिकाली ध्रुव अनादि-अनन्त एकरूप स्वरूप, उसको यहाँ शुद्धभाव अधिकार कहते हैं। नाम शुद्धभाव है, परन्तु वह शुद्धभाव त्रिकाली की बात है।

श्लोकार्थः—सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,... शब्द तो सरल है, परन्तु उसका भाव... पुण्य-पाप और संवर, निर्जरा और मोक्ष वह पर्याय से भी पार भिन्न है, ऐसी दृष्टि हो, उसको सम्यग्दर्शन कहने में आता है। आहाहा! सर्व तत्त्व में एक सार ही अपना आत्मा ध्रुव है। **समस्त नष्ट होने योग्य...** आहाहा! संवर, निर्जरा और केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, वह पर्याय भी नष्ट होने योग्य है। दूसरे समय में दूसरी होती है। केवलज्ञान की पर्याय जो उत्पन्न हुई, वह सदा रहती नहीं। आहाहा! केवलज्ञान की, केवलदर्शन की, अनन्त आनन्द (आदि) चतुष्टय आदि जो अनन्त प्रगट हुई अथवा अनन्त गुणों की अनन्त पर्याय व्यक्त-प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन होने से अनन्त गुण की अनन्त पर्याय व्यक्त हुई, वह भी सब नष्ट (होने)योग्य है। क्योंकि उसकी समय की अवधि है, तो वह सब नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है। आहाहा!

वह नष्ट होनेयोग्य भाव से प्रभु दूर है। ध्रुव है। ध्रुव में संवर और निर्जरा और मोक्ष की पर्याय प्रवेश नहीं करती। पुण्य और पाप और आस्रव, बन्ध तो प्रवेश नहीं करते, परन्तु जो आनन्द की पर्याय-मोक्षमार्ग की पर्याय—धार्मिक पर्याय अन्दर वीतरागी उत्पन्न होती है स्वद्रव्य के आश्रय से, वह पर्याय भी अन्तर में जाती नहीं। आहाहा! इतनी बात सूक्ष्म।

और वह **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** कितना दूर है ? एक समय की पर्याय है संवर, निर्जरा, मोक्ष, उसमें ध्रुव की नास्ति है और ध्रुव में उस पर्याय की नास्ति है—इतना दूर है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! है तो एक साथ में, परन्तु पर्याय

जितने में है, उसका वह क्षेत्र, उसका काल, उसका भाव और उसका द्रव्य... उसको द्रव्य कहते हैं। उस पर्याय को द्रव्य भी कहते हैं। ऐसा आता है शास्त्र में। पर्याय के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव वह चारों ध्रुव में नहीं है। आहाहा! यहाँ तक पहुँचना, बापू! सूक्ष्म-सूक्ष्म धीरे से... धीरे से... बाहर की चिन्ता को छोड़कर... बाहर की चिन्ताओं की संकल्प-विकल्प की जाल छोड़कर अन्तर चैतन्यस्वरूप भगवान, जो यह दूसरे तत्त्व कहे, उससे वह दूर है। एक पर्याय ऊपर तेरी नजर रहे तो वस्तु नहीं मिलेगी। आहाहा! संवर और निर्जरा पर्याय पर नजर रहे तो शुद्धि बढ़े नहीं। संवर-निर्जरा में ध्रुव ध्येय तो आ गया है, ध्रुव ध्येय। ध्रुव का ध्येय तो आ गया है। आहाहा! परन्तु शुद्धि की वृद्धि संवर और निर्जरा की पर्याय के आश्रय से होती नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। सूक्ष्म मार्ग, भाई! कोई क्रियाकाण्ड से तो मिले, ऐसा नहीं है। क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, वह सब तो उदयभाव है। उदयभाव को जड़भाव कहा। आहाहा!

और समयसार में मोक्ष अधिकार में तो इस शुभभाव को भी जहर कहा, विषकुम्भ कहा। विषकुम्भ—जहर का घड़ा है यह। आहाहा! अन्तर वस्तु जिसमें कोई बाह्य भाव (नहीं)—दूर है। संवर, निर्जरा भी अन्तरभाव से दूर है। मोक्ष की पर्याय भी अन्तरभाव से दूर है। दूर का अर्थ? उसका क्षेत्र और यह क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। जितने में पर्याय उत्पन्न होती है, इतना क्षेत्र और ध्रुव का क्षेत्र—दोनों भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात अब। मनुष्यपना मिला, उसमें यह तो समझना पड़ेगा, बापू! भगवान है न, भाई! यहाँ तो भगवान कहकर... आचार्य महाराज तो भगवान आत्मा ऐसा कहकर बुलाते हैं। ७२ गाथा, समयसार। भगवान आत्मा... आहाहा! पुण्य, पाप मलिनभाव से भिन्न भगवान आत्मा निर्मलानन्द है। उसको राग छुआ ही नहीं, राग, दया, दान विकल्प को छुआ ही नहीं। यह तो छुआ नहीं, परन्तु संवर, निर्जरा, मोक्ष भी द्रव्य को छुआ नहीं। आहाहा!

संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव को छुआ नहीं। कठिन बात है, प्रभु! समकित वह कोई साधारण बात नहीं। भगवान की श्रद्धा करी, देव-गुरु की श्रद्धा करी, नव तत्त्व की श्रद्धा करना—ऐसा नहीं। नव तत्त्व की श्रद्धा को समकित कहा, परन्तु एकवचन (-अभेद) है वहाँ। तत्त्वार्थसूत्र में 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'

कहा। परन्तु वहाँ एकवचन है। एक तत्त्व ऊपर दृष्टि करने से नौ की श्रद्धा हो जाती है। समझ में आया? नौ का भेद करे तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं कि **समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** आहाहा! पर्याय से नयी पर्याय नहीं प्राप्त होगी। आहाहा! **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** जिसने सम्यग्दर्शन पाया इसने पर की इच्छामात्र को नाश कर दिया अर्थात् अपने में है नहीं ऐसे नाश कर दिया। अस्थिरता में भले हो। **जिसने दुर्वार...** वार सके नहीं ऐसा **काम को नष्ट किया है,...** आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन में भी सम्यग्दृष्टि... इन्द्र और इन्द्राणी है उसमें, दोनों एकावतारी हैं। एक अवतारी है। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वह भी अपने भोग के काल में अपने आनन्द (स्वरूप) ध्रुव को भूलते नहीं। आहाहा!

अपना अतीन्द्रिय आनन्द का धाम... आहाहा! 'स्वयं ज्योति सुखधाम।' स्वयं ज्योति और सुखधाम। वह अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र है। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द पके, ऐसा एक क्षेत्र है। उसमें दुःख पाके, ऐसा वह क्षेत्र नहीं। आहाहा! शुभ और अशुभभाव असंख्य प्रकार के हैं। किसी प्रकार का शुभ-अशुभ भाव उत्पन्न हो, ऐसा वह क्षेत्र द्रव्य नहीं। ध्रुव ऐसा है ही नहीं। आहाहा! वह उत्पत्ति तो, (द्रव्य के) लक्ष्य से शुद्धता उत्पन्न होती है। बाकी शुद्धता उत्पन्न होती है, उससे भी चीज़ तो दूर है। आहाहा! आया न? भावों से दूर है। ओहोहो! सूक्ष्म बात लगे। वस्तु तो यह है।

दुर्वार काम को नष्ट किया है, जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... कुठार-कुठार। ये न्याय से बात कही है। बाकी आत्मा है, वह राग का नाश भी करनेवाला नहीं। उत्पन्न करनेवाला तो नहीं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप वह राग कोई दया, दान आदि का उत्पन्न करनेवाला तो नहीं, आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पाप को छेदनेवाला कहा है, परन्तु वह तो कथनशैली है। पाप को भी छेदे, ऐसा है नहीं। आहाहा! अपने में—आनन्दस्वरूप में रहते, अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में वह भाव उत्पन्न होता नहीं विकार। वह उत्पन्न होता नहीं उसको नाश किया, ऐसा कहने में आता है।

केवलज्ञानी ने चार घातिकर्म का नाश किया—वह भी ऐसा है। घातिकर्म जड़ है। आत्मा उसका नाश कर सके नहीं। आत्मा ने अपने में केवलज्ञान प्रगट किया, तो घातिकर्म

की पर्यायरूप से जो परमाणु थे, उस परमाणु की एक समय की क्रमबद्ध में अकर्म (रूप) होने की योग्यता थी। कर्मरूप से थे वह अकर्मरूप होने की योग्यता हुई। वह अकर्मरूप हुई, उसको घाति का नाश करना कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब अर्थ बदल दिया आपने।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भगवान! मार्ग तो ऐसा है अन्दर। उसको कुछ... आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक है कि मैं ध्रुव हूँ, ऐसा विकल्प आये वहाँ तक... मैं ध्रुव हूँ, ऐसा विकल्प आये तब तक (ध्रुव) हाथ नहीं लगेगा। आहाहा! समझ में आया? १४२ गाथा में समयसार में कहा है। मैं ज्ञायक हूँ, पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायक ध्रुव हूँ—ऐसा विकल्प अर्थात् राग हुआ, ऐसा विकल्प से भी पता नहीं पाता है। आहाहा! वह विकल्प का भी लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख में ध्रुव सन्मुख जायेगा, तब सम्यग्दर्शन होगा। आहाहा! वस्तु यह है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' परमार्थ का पन्थ तीन लोक के नाथ का यह एक है। आहाहा! कठिन लगे लोगों को।... जी वया गया? आव्या नहीं?

मुमुक्षु : यहाँ पर ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है।

पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,... कुठार है अर्थात् पाप उत्पन्न होता ही नहीं उसमें। छेदनेवाला कहा, यह तो एक लोगों को समझाने के लिये। बाकी पाप उसमें उत्पन्न होता ही नहीं, ऐसा भगवान है अन्दर। आहाहा! **जो शुद्ध ज्ञान का अवतार है,...** यह तो शुद्ध ज्ञान का अवतार है। देह में विराजमान परमात्मा भगवान... सब आत्मा भगवानतुल्य हैं। परमात्मा तो हीनाधिक कोई है नहीं। सब आत्मा भगवान हैं। आहाहा! वह परमात्मा में शुद्ध ज्ञान का अवतार... अवतार अर्थात् है। शुद्ध ज्ञान जैसे (पर्याय में) जन्मे, वैसे यह शुद्ध ज्ञान (स्वरूप) ही उत्पन्न हुआ अर्थात् है। शुद्ध ज्ञान—मात्र ज्ञान... मात्र ज्ञान... जैसे शक्कर में मात्र मिठास होती है, वैसे भगवान आत्मा में एक ज्ञान, जानन... जानन... जानन... जानन... शुद्ध ज्ञान का वह अवतार है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। दूसरी लाख-करोड़ बातें करे, परन्तु दूसरा रास्ता है नहीं। आहाहा!

शुद्ध ज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है... आहाहा! बाढ़-ज्वार आता है न समुद्र में? बाढ़ आती है न? आहाहा! वैसे भगवान आत्मा आनन्द का सागर परमात्मा, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, तो पर्याय में आनन्द की बाढ़ आयी। जैसे समुद्र में बाढ़ आती है। आहाहा! समुद्र में जैसे बाढ़ बाती है, वैसे यहाँ आत्मा के समुद्र में दृष्टि पड़ने से पर्याय में बाढ़ आती है। आहाहा! उसको आनन्द को शोधने नहीं जाना पड़ता। बाहर आनन्द शोधने को नहीं जाता। आनन्द का उफान। उफान में अन्तर है। पानी का जो उफान है, वह पोला उफान है। पाँच सेर पानी में उफान आये, परन्तु वह तो पोला-पोला है। उस पाँच सेर में कुछ बढ़ता नहीं। यह ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : इसमें पोल नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोल नहीं है। पर्याय में आता है सुख का सागर। आहाहा! आचार्य के शब्द थोड़े में बहुत सारा... सुखसागर की बाढ़ है। आहाहा! प्रभु! तुम कौन हो? तू तेरे को पहिचान, तो तेरी पर्याय में आनन्द की बाढ़ आती है—आनन्द की भरती आती है। भरती हमारे काठियावाड़ में गुजरात में भरती कहते हैं। तुम्हारे में बाढ़ कहते हैं। आहाहा! सुखसागर की बाढ़। सागर। नदी भी नहीं। आहाहा! सुख का सागर भगवान अरूपी है और क्षेत्र छोटा, शरीर प्रमाण क्षेत्र है, तथापि अन्दर अमाप वस्तु तो अपने ज्ञान के क्षेत्र से देखो तो... इतने में ज्ञान है और देखे कितनी चीज़ों को! यह आँख इतने में है। ज्ञानपर्याय इतने में है। सब कुछ देखे, तथापि उसको परपने से देखते हैं। अपनी पर्याय में सामर्थ्य है, उसको देखते (हैं)। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! एक-एक बात विचारने योग्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का। आहाहा!

सुखसागर की बाढ़ है... आहाहा! जिसमें दृष्टि देने से और जिसका स्वीकार करने से आनन्द का झरना झरता है। पर्वत में से जैसे पानी झरता है, ऐसे सुख का सागर भगवान पर्वत.... आहाहा! उसका जहाँ स्वीकार हुआ, उसका सत्कार हुआ, उसकी उपादेयबुद्धि हुई, तो आनन्द का उफान आता है। भरती-बाढ़ आती है। सुख के सागर में बाढ़ आती है। आहाहा! ऐसा प्रभु आत्मा, उसको छोड़कर कोई भी चीज़ कीमती है नहीं।

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की दृष्टि जो करे तो भी राग होगा। आहाहा! अपने को छोड़कर परद्रव्य का लक्ष्य करेगा, पंच परमेष्ठी का लक्ष्य करेगा तो भी प्रभु! स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का आश्रय हुआ तो राग होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। **और जो क्लेशोदधि का...** क्लेश का समुद्र। अनादि काल से राग और द्वेष, पुण्य और पाप और क्लेश... आत्मा आनन्दस्वरूप है, उससे विरुद्ध क्लेश है। क्लेश का उदधि अर्थात् समुद्र। आहाहा! यह (आत्मा) क्लेश के उदधि का किनारा है। क्लेशरूपी उदधि-समुद्र का वहाँ अन्त है। बाद में क्लेश होगा नहीं। अन्दर भगवान जहाँ गया, अन्दर में प्राप्त हुआ, क्लेश का किनारा आ गया—क्लेश का अन्त आ गया। आहाहा! अकेला आनन्द आया, क्लेश का अन्त आ गया। वही बात ... शुभराग का भी क्लेश है। शुभराग है, वह भी क्लेश है। क्योंकि राग है। आहाहा! आकुलता है, दुःख है। उसका तो किनारा हो गया। आहाहा! दुःखादि दशा भी दूर हो जाती है।

क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार... यह आत्मा... यह आत्मा—ऐसा कहा है। **(शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।** ऐसा क्यों कहा? है, परन्तु हमें अनुभव में आया; इसलिए जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। ऐसा ध्रुव अनुभव में आये नहीं, तब तक जयवन्त वर्ते किसको कहना? यह जयवन्त वर्ते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जिसकी अन्तर्दृष्टि में... उसकी सत्ता दृष्टि में और ज्ञान में ज्ञेयरूप से नहीं आयी, आहाहा! तो उसमें रहे कहाँ से? यहाँ तो जयवन्त वर्ते, उसका अर्थ? मेरे अनुभव में आनन्द का झरना झरता है, वह जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुनिराज को तीन कषाय का नाश है। एक संज्वलन है। वह भी कहा है यहाँ एक श्लोक में। वीतराग में और मुनि में कुछ अन्तर मानना... एक श्लोक ऐसा है। थोड़ा एक जरा संज्वलन... एक श्लोक ऐसा है कि सर्वज्ञ और मुनि में कुछ अन्तर माने, वह हम जड़ हैं। जड़ हैं तो उसमें अन्तर मानते हैं, ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो आप ही फरमाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सा है इसमें?

मुमुक्षु : २९६।

पूज्य गुरुदेवश्री : २९६ क्या ? पृष्ठ ?

मुमुक्षु : श्लोक २५३।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो, २९६। श्लोकार्थ। **सर्वज्ञ-वीतराग में और इस स्ववश...** आत्मा जिसने वश कर लिया, वह सर्वज्ञ भगवान और **स्ववश योगी में कभी कुछ भी...** कभी कुछ भी **भेद नहीं है; तथापि अरेरे!** है ? **अरेरे! हम जड़ हैं...** आहाहा! मुनि ऐसा कहते हैं। वह तो निर्मानता बताते हैं। आहाहा! समझ में आया ? निर्मानता बताते हैं। आहाहा! गजब बात है। मुनिराज मोक्ष का मार्ग... मेरे हिसाब से तो पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, वह तीर्थंकर होनेवाले हैं। ऐसी शास्त्र की रचना... वह तीर्थंकर होनेवाले महासन्त मुनि कहते हैं कि सर्वज्ञ में और मुनि में... आहाहा! कुछ भी भेद मानते हैं... **हम जड़ हैं कि उसमें भेद मानते हैं।** आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

सर्वज्ञ सन्त। आहाहा! एक तरफ सर्वज्ञ सन्त, एक तरफ आत्मध्यान में मस्त। वह मस्ती में कहाँ फेर है ? विकल्प है नहीं, राग है नहीं, पर ऊपर लक्ष्य है नहीं। तो जैसे सर्वज्ञ का पर ऊपर लक्ष्य नहीं, सर्वज्ञ को कोई पर को जानने का उपयोग है नहीं, आहाहा! ऐसे (मुनिराज) को ध्यान में जब हो तो पर सन्मुख का लक्ष्य और उपयोग होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! भाग्यवान को सुनने को मिले ऐसी यह भगवान की वाणी है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की यह वाणी है। अरेरे! ऐसा कहा न ? हम जड़ हैं। मुनि कहते हैं। आहाहा! इतना अन्तर मानते हैं, वे जड़ हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : स्ववश योगी में कौन सा गुणस्थान लेना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवाँ... सातवाँ। ध्यान। सातवाँ। सातवें में ध्यान में स्थित हैं, उनको कहाँ अन्तर है ? अन्दर अबुद्धिपूर्वक विकल्प है, उसकी गिनती नहीं। सातवें से, छठवें से नहीं। मुनि को क्षण में छठवाँ और क्षण में सातवाँ आता है। एक अन्तर्मुहूर्त में हजार बार छठवाँ, सातवाँ आता है। अवधि बहुत थोड़ी है, परन्तु एक अन्तर्मुहूर्त में छठवाँ और सातवाँ... छठवें की स्थिति पौन सेकेण्ड लगभग है। है कम-थोड़ी। और सातवें की (स्थिति) पौन सेकेण्ड से आधी। आहाहा! यह स्थिति हजारों बार आती है। सच्चे सन्त और सच्चे मुनि जिनको परमात्मा 'णमो लोए सव्व साहूणं'... यह तो ठीक,

परन्तु वहाँ तक लिया है षट्खण्डागम में। षट्खण्डागम में वहाँ तक लिया है, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। ऐसा लिया है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। आहाहा! यह षट्खण्डागम में पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायणं, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। आहाहा! एक-एक पद को त्रिकालवर्ती और सव्व—वह सबमें लागू किया है। अभी तो णमो लोए सव्व साहूणं में 'लोए' इतना लागू पड़ता है। अन्तदीपक में इतना आता है। षट्खण्डागम में तो त्रिकालवर्ती.. आहाहा! त्रिकालवर्ती में दृष्टि का जोर कितना? आत्मा ध्रुव ऊपर की दृष्टि का जोर कितना? कि तीन काल में वर्तनेवाले अरिहन्तो सबको मेरा नमस्कार। आहाहा!

श्रेणिकराजा अभी नरक में हैं, परन्तु भविष्य के तीर्थंकर गिनकर उसको भी नमस्कार है। आहाहा! गजब बात है, भाई! त्रिकालवर्ती साहूणं ऐसा कहा है। भविष्य में अनन्त काल के बाद साधु होगा, अभी भली कोई निगोद में हो। आहाहा! परन्तु भगवान तो ऐसा कहे, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। भूत और वर्तमान और भविष्य—तीन काल में जो आत्मा ध्रुव का साधन करता है, वह भले सर्वज्ञ हुआ नहीं, फिर भी उन सबको भगवान त्रिलोकवर्ती (कहकर) नमस्कार करते हैं। तीन लोक में वर्तनेवाले अरिहन्त, सिद्ध आचार्यों को नमस्कार है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो साधुओं का इतना वर्णन करते हो और लोग कहते हैं कि मुनिमहाराज को मानते नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिराज तो बापू! मुनि किसको कहे? आहाहा! जिसने अन्तर आनन्द का उछाला आता हो, जिसको क्षण में और पल में छठवाँ, सातवाँ (गुणस्थान) आता है, जिसको सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहे, अरे! मुनिराज ऐसा कहे कि वीतराग में और मुनि में अन्तर माने, वह जड़ है। आहाहा! परन्तु मुनिपना होना चाहिए न? भगवान! मुनिपना कैसा है? वह कोई कपड़े बदले और पंच महाव्रत कोई... वह पंच महाव्रत भी अभी सच्चे नहीं। क्योंकि चौका बनाकर आहार लेता है। जहाँ हो वहाँ उसके लिये बनाया हुआ ले तो पाप है। व्यवहार भी झूठा है। आहाहा!

क्योंकि हम सम्प्रदाय में थे, तब छोटे गाँव में जाते थे, तो वहाँ पाँच-छह घर हो जैन के। तो पहले सुबह में नहीं जाते थे। क्योंकि जो वहाँ जाये तो हमारे का नाम का कुछ बनाये रोटी... रोटी। वह बराबर रोटी करते हैं और चावल हो गये हो, दाल हो गयी हो, तब हम आहार को जाते थे। तब हम थोड़ा लेते थे दो रोटी आदि। वह बनाये उसके पहले हम जाते नहीं थे। गाँव में जाते नहीं। गाँव के बाहर रहते थे। १५ वर्ष तक ऐसा किया है। आहाहा! परन्तु वह सब क्रियाकांड... आहाहा! धर्म-बर्म उसमें कुछ नहीं।

यहाँ तो धर्मी को ऐसा कहते हैं, मुनि को केवली से कम माने। अरेरे! हम... आहाहा! मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! पंच परमेष्ठी में मिले हैं, आहाहा! वह कहते हैं कि हम जड़ हैं कि उसमें भेद मानते हैं। आहाहा! है या नहीं? इतनी कीमत मुनि की है, प्रभु! सर्वज्ञ के साथ जोड़ दिया। आहाहा! तीन लोक का नाथ सर्वज्ञ परमात्मा, उनको एक समय में तीन काल तीन लोक; विकल्प बिना, परसन्मुख के उपयोग बिना अपने स्वरूप में जानने में आता है। लोक-अलोक को उपयोग बिना (जाने)। पर का उपयोग ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! अपने उपयोग में ध्यान में लोकालोक जानने में आ जाता है। अपने को जानते हैं उसमें।

जैसे, दृष्टान्त दिया है शास्त्र में। जल में, ऊपर चन्द्र, तारें (हैं, वह) दिखते हैं जल में। तो जल देखते ही वह देखने में आ जाता है, ऊपर देखने की जरूरत नहीं। क्या कहा समझे? जल-पानी... नदी बहती हो उसमें ऊपर नक्षत्र, तारे, चन्द्र ऊपर है, वह अन्दर दिखे-जल में दिखते। तो देखनेवाले को ऊपर देखने की जरूरत नहीं, जल को देखे तो देखने में आ जाये। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, उसको देखने जाते हैं तो लोकालोक का (ज्ञान) आ जाता है। लोकालोक सन्मुख लक्ष्य नहीं करना पड़ता। आहाहा! ऐसा प्रभु है। उसको एक साधारण दो सिगरेट पीवे तब ... हो जाये। एक चाय की प्याली पीवे सुबह में चाय या उकाला पाव सेर, डेढ़-पाव सेर। मस्तिष्क ठीक रहे, सुनने में मस्तिष्क ठीक रहे। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। सुख सागर की तो बाढ़ है। आहाहा! **क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।** जयवन्त वर्तो, ऐसा भी नहीं कहा।

समझ में आया? जयवन्त वर्तो, ऐसा नहीं कहा। क्यों? कि (स्व) के अनुभव से कहते हैं कि मेरा आत्मा जयवन्त वर्तता है तो यह आत्मा भी जयवन्त वर्तता है। आहाहा! दिगम्बर सन्त कहते हैं कि मेरा आत्मा मेरी दृष्टि में अनुभव में आया है तीन कषाय का अभाव होकर। ओहोहो! जिसको दो घड़ी हुई हो दीक्षा लिये, उसको लाखों वर्ष (पहले) दीक्षा लिये गणधर भी 'णमो लोए सव्व साहूणं' में साधु (को नमस्कार करते) हैं। क्या कहा यह?

कोई दो घड़ी पहले दीक्षा ली हो, मुनि हो अन्दर ध्यान में गया हो, अनुभव छठवें-सातवें में आ गया और गणधरदेव करोड़ वर्षों पहले मुनि हो गये हों, वे भी जब णमो अरिहंताणं... णमो लोए सव्व साहूणं कहे। आहाहा! किसको? दो घड़ी पहले साधु हुआ उसको। आहाहा! णमो लोए सव्व साहूणं... गणधरदेव प्रभु गणधरदेव जिसके चरण में नमस्कार करे, प्रभु! वह किमती चीज़ कैसी होगी? आहाहा! मुनिपने के चरण में गणधर नमस्कार करे, आहाहा! ऐसी चीज़ है। शास्त्र लिखते हैं, तब पहले पाँच नवकार बोलते हैं न? भगवान की वाणी सुनकर....

ॐ ध्वनि सुणी अर्थ गणधर विचारे,
रची आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।

आगम की रचना करे, वहाँ शुरु में पाँच नवकार आये। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... आहाहा! पीछे टीका करे। भगवान के समीप में... ऐसे जो मुनिराज जिनको गणधर नमस्कार करे, प्रभु! उनकी कीमत कितनी होगी? आहाहा! उनका स्वभाव कैसा होगा? आहाहा! जिसको अभी गन्ध भी नहीं कि यह क्या चीज़ है? उसका आत्मा का अनुभव ऐसा... आहाहा! ऐसे को चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले गणधर नमस्कार करते हैं। आहाहा! दो घड़ी की दीक्षा ली हुई है। अन्दर में आनन्द में उतर गये हो। अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो गया।

कभी ऐसा भी होता है कि अन्दर में मिथ्यात्व हो और बाहर में नग्नदशा हो। द्रव्यलिंग, द्रव्यलिंग का तीन प्रकार है। द्रव्यलिंग का तीन प्रकार है। एक तो अन्दर मिथ्यात्व का अंश रहे और बाह्य की क्रिया छठवें गुणस्थान जैसी पूरी करे, वह द्रव्यलिंग।

एक समकित हुआ, दीक्षा लेकर अन्दर समकित हुआ, परन्तु (भावलिंग)—मुनिपना आया नहीं तो वह भी द्रव्यलिंगी है। समकित है, परन्तु चारित्र आया नहीं। ध्यान में आ गये तो चारित्र... समझ में आया कुछ? आहाहा! और पाँचवें गुणस्थान में कोई हो, मुनिपना ले लिया, परन्तु अन्दर में पाँचवें गुणस्थान तक आया, छठवें-सातवें तक आया नहीं। आहाहा! तत्त्वार्थ राजवार्तिक में पाठ है। आहाहा! उसको द्रव्यलिंगी कहते हैं।

और जिसको भाव इतना है भाव सातवें-छठवें का (और) उतनी क्रिया उस प्रकार हो तो उसको भावलिंगी कहते हैं। आहाहा! कहाँ गये हमारे सेठ? ऋषभकुमार! ऐसी बात है। यहाँ आये हैं इतनी दूर से। बहुत अच्छा किया। हमारे ये सेठ तो यहाँ हैं भावनगर के भगवानभाई... यहाँ रहे। भगवान! कोई बात सूक्ष्म लगे, फिर भी समझने में ध्यान रखना। सूक्ष्म बात यहाँ तो अन्तर से बात आती है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े तो थोड़ी समझे। पहले सुनने में आयी न हो, नयी लगे तो जरा सूक्ष्म लगे। परन्तु न समझ में आये, ऐसी बात है नहीं। भगवान तीन लोक के नाथ चैतन्यस्वरूप का समुद्र अन्दर है। चैतन्य का समुद्र अन्दर भरा है सागर है। कहा न यह? ज्ञान का तो अवतार है। आहाहा! उसका जन्म ही ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है। सर्व भगवान आत्मायें पूर्ण ज्ञान से भरे हुए सुख के सागर हैं, परन्तु उसकी दृष्टि और प्रतीति करे, उसकी यह बात है। उसकी प्रतीति और अनुभव न करे उसको तो है ही नहीं... है ही नहीं। है और जो प्रतीति और अनुभव करे, उसको है। आहाहा!

कारणपरमात्मा, त्रिकाली को कारणपरमात्मा कहते हैं। और सब जीव में कारणपरमात्मा है त्रिकाली। परन्तु ऐसा कारणपरमात्मा होने पर भी जिसकी दृष्टि उस पर नहीं और जिसकी दृष्टि राग और पर्याय के ऊपर है, उसको कारणपरमात्मा है नहीं। साक्षात् चीज़ है परन्तु ख्याल में ले नहीं... ज्ञान ने ज्ञेय बनाया तो उसको है। तो है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! ज्ञान ने... आहाहा! ज्ञेय बनाया, तब यह वस्तु है उसको। वरना उसको तो है नहीं। भले हो, ध्रुव चीज़ है भगवान, पूर्णानन्द है, परन्तु जिसकी उस ओर दृष्टि और स्वीकार नहीं, उसको तो है नहीं। उसको तो कारणपरमात्मा का कार्य सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। आहाहा!

कारणपरमात्मा उसकी पूर्ण पर्याय, (वह) कार्यपरमात्मा हो। केवलज्ञानी को कार्यपरमात्मा कहते हैं। और नीचे कारणपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। भगवान! तेरी बात ही अलग है न! सब भगवान हैं। आहाहा! उसकी नजर जाती नहीं। अन्तर्मुख होने को नजर करता नहीं। प्रयत्न यह नहीं करता और दूसरा प्रयत्न करे। स्व का प्रयत्न छोड़कर दूसरा प्रयत्न करे। या दया पालना, व्रत करना, प्रतिमा लेनी, यह करना, कपड़े बदलना। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ करना तो पड़ेगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो तब। सुनो! पर का त्याग-ग्रहण आत्मा में है नहीं। समयसार। शक्ति है। त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। वह समयसार के पीछे है। खबर है सब। पीछे है। है यहाँ समयसार? यह न? समयसार नहीं है? यह है। अपना नहीं है इसमें? घर का हो तुरन्त हाथ आये। यह जल्दी हाथ आये नहीं। आ गया। क्या कहा?

मुमुक्षु : त्याग-उपादानशून्यत्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति है। अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघु... त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। उसका क्या अर्थ है? सूक्ष्म बात लगेगी, प्रभु! यह कपड़े को छोड़ूँ और दूसरा सादा कपड़ा लूँ, वह आत्मा में है नहीं। परवस्तु का त्याग-उपादानशून्यत्व है। आहाहा! १५वीं (शक्ति) है। त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। आहाहा!

आनन्द का ग्रहण और राग का त्याग तो कह सके, वह व्यवहार से कह सके। आत्मा का ग्रहण और राग का त्याग, वह व्यवहार से कहे, परन्तु परमाणु का त्याग और परमाणु का ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? कपड़े को मैं छोड़ता हूँ और यह कपड़ा ग्रहण करता हूँ, वह त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति का घात करता है। ऐसी बात है। त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। पर का त्याग और पर का ग्रहण... उपादान अर्थात् ग्रहण... त्याग-उपादान। त्याग अर्थात् पर को छोड़ना और उपादान अर्थात् ग्रहण करना, उससे शून्यत्व है। आहाहा!

भगवान आत्मा एक रजकण को छोड़े, ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ तो जहाँ थोड़ा

छोड़े, तो अभिमान... मैंने कपड़े छोड़े, मैंने यह छोड़ा, मैंने आहार छोड़ा। प्रभु! तुझे मालूम नहीं। तेरी शक्ति में यह है ही नहीं। पर का त्याग और पर का ग्रहण तो है ही नहीं। आहाहा! केवल राग-द्वेष का त्याग (कहना), वह भी व्यवहार है। बाकी तो आत्मा आत्मा के आनन्द में रहता है और राग उत्पन्न नहीं होता, उसको राग का नाश करता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्यानुयोग चरणानुयोग का घात करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चरणानुयोग तो जानने के लिये है। यह आदरने के लिये है। आहाहा!

वहाँ प्रश्न हुआ था। वह चाँदमलजी आये थे न? उदयपुर। वह चाँदमलजी थे न! ब्रह्मचारी था कोई। उसने कहा कि भगवान कपड़े उतारते हैं न। मैंने कहा कि उतारते हैं, वह कथन में है। वह उतरनेयोग्य पर्याय में (कपड़े) उतरते हैं। आत्मा उसको उतारता है, वह बात है नहीं। यहाँ तो प्रसिद्ध ढ़िंढ़ोरा पीटते हैं। मार्ग यह है। आत्मा अरूपी प्रभु चैतन्य आनन्दघन, वह रजकण से लेकर किसी स्कन्ध को ग्रहण करे और छोड़े (नहीं)। कर्म बाँधे नहीं और कर्म छोड़े नहीं। आहाहा! केवल भावकर्म करे और भावकर्म छोड़े। छोड़े भावकर्म, वह भी व्यवहार से कहने में आया है। अन्तर के ध्यान में जाये, व्यवहार उत्पन्न न हो, उसको भावकर्म का नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! ऐसी बात!

जयवन्त वर्तता है। आहाहा! जयवन्त वर्तता है, उसका अर्थ क्या है? कि हमारे अनुभव में जयवन्त वर्तता है, ऐसा अर्थ है। जयवन्त वर्ते कोई चीज़ ... ऐसा नहीं। हमारा प्रभु शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द जो दृष्टि में आया तो यह वस्तु जयवन्त वर्तती है। आहाहा! मुनिराज अपनी बात भी अन्दर डालते हैं। एक श्लोक में तो कितना डाल दिया है! **जयवन्त वर्तता है।** यह श्लोक पूरा हो गया। दूसरा... ३९वीं गाथा लेंगे। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल २, बुधवार, दिनांक - २५-०७-१९७९
गाथा-३९, श्लोक-५५, प्रवचन-५

नियमसार, गाथा ३९। ३८ गाथा हो गयी।

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा जो जीवस्साहरिस्सठाणा वा॥३९॥

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के,
होते न हर्ष स्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

टीका :— यह, निर्विकल्प तत्त्व के स्वरूप का कथन है। निर्विकल्प तत्त्व कहो या ऊपर लिखा शुद्ध। त्रिकाली को शुद्ध कहने में आता है। त्रिकाली चीज़ भगवान ध्रुव एक समय की पर्याय से भिन्न है, ग्रहण-त्याग उसमें है नहीं। पर्याय में राग का त्याग और (राग) का ग्रहण है। (ऐसा) वस्तुस्वभाव वह पर्याय में है। परवस्तु का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा सिवा कोई चीज़ का—पर का त्याग करना और पर को छोड़ना, यह तो आत्मा के स्वभाव में प्रभु! है ही नहीं। मात्र उसकी पर्याय में मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विकार आदि पापबन्ध के कारण का—पर्याय में द्रव्य के आश्रय से त्रिकाली शुद्धतत्त्व निर्विकल्प तत्त्व के अवलम्बन से उसका—नाश करना, वह अधिकार है। आहाहा! जरा सूक्ष्म है।

त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाली निरुपाधिक स्वरूप जिसका है। आहाहा! त्रिकाली निरावरण है। वस्तु अन्दर त्रिकाली निरावरण है। आनन्द का पिण्ड है। चैतन्य का रस का सागर है। आहाहा! उस ओर नजर कभी गयी नहीं। बाहर की उलझन में प्रवृत्ति में पड़े रहे। अपनी बात अपने लिये की नहीं। दुनिया के लिये कर दूँ... दूसरे को तो छूता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता ही नहीं, प्रभु! तो तुम क्या करोगे दूसरे का? आहाहा! एक द्रव्य दूसरे को छूता (नहीं), पर को तो छूता नहीं कभी। पर के साथ क्या करना है तुझे? और पर के त्याग-ग्रहण (से शून्य) वह तो तेरे में गुण है।

त्याग-ग्रहणरहित। रजकण, कपड़ा उसका त्याग और ग्रहण उससे तो आत्मा शून्य है। आत्मा में त्याग-उपादानशून्यत्व नाम का गुण है। आहाहा! पर के त्याग-ग्रहण के साथ तो सम्बन्ध नहीं। वास्तव में तो राग का नाश करना और स्वभाव में आना, वह भी व्यवहार है। राग का नाश करना वह व्यवहार है। क्योंकि वस्तु में यह है नहीं। पर्याय में जब वस्तु की दृष्टि करते हैं, तब राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसको नाश करना, ऐसा कहने में आया है। यहाँ निर्विकल्पतत्त्व का अर्थ शुद्धतत्त्व। ऊपर शुद्ध तत्त्व है न? शुद्ध तत्त्व कहो, निर्विकल्प तत्त्व कहो, ध्रुव तत्त्व कहो, सामान्य तत्त्व कहो, अभेदतत्त्व कहो, एक स्वाभाविक वस्तु त्रिकाली कहो—वह सब एक है। आहाहा!

यह निर्विकल्प तत्त्व, जिसमें भेद नहीं। राग तो नहीं, परन्तु भेद नहीं। ऐसे अभेद तत्त्व के स्वरूप का कथन कहेंगे। आहाहा! उसमें त्रिकाल निरूपाधिक जिसका स्वरूप... भगवान आत्मा... शब्द तो बहुत सुने है, भाई! वाणी तो ग्यारह अंग की अनन्त बार की, परन्तु अन्तर में धीरज से, शान्ति से शान्ति का सागर प्रभु उस ओर का झुकाव हुआ नहीं। बाकी सब बातें क्रियाकाण्ड आदि वह संसार के खाते में है। आहाहा! निर्विकल्पतत्त्व त्रिकाल निरुपाधि... तीनों काल उपाधि उसमें नहीं। आहाहा! पर्याय में राग है, वह पर्याय वस्तु (में है, ऐसा) यहाँ नहीं। यहाँ तो त्रिकाली तत्त्व शुद्ध लेना है। ध्रुव।

मूल बात सम्यग्दर्शन का विषय, मूल सम्यग्दर्शन का ध्येय, मूल सम्यग्दर्शन का अवलम्बन, ऐसा जो त्रिकाली निरुपाधि तत्त्व... आहाहा! **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है...** उसका स्वरूप ही ऐसा है। किसी ने बनाया, बना ऐसा है नहीं। आहाहा! **ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** जीवमात्र न लेते हुए अस्तिकाय क्यों कहा? अन्यमति में तो असंख्य प्रदेश हैं नहीं। जीव के असंख्य प्रदेश हैं। एक सर्वज्ञ के अलावा... परमात्मा सर्वज्ञ ने देखा कि एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं। वह भगवान के सिवाय कहीं है नहीं। इसलिए यहाँ जीवास्तिकाय लिया। मात्र जीव ऐसा नहीं। जीव की अस्ति-काय—असंख्य प्रदेश। आहाहा!

भगवान आत्मा त्रिकाल निरुपाधि को यहाँ जीवास्तिकाय कहने में आया है। त्रिकाल निरुपाधि को यह कहने में आया है शुद्ध जीवास्तिकाय। आहाहा! उसमें वास्तव में...

ऐसी चीज़ जो है, उसमें वास्तव में **विभावस्वभावस्थान (-विभावरूप स्वभाव के स्थान)...** उदयभाव के (बोल) हैं न २१ ? वह कोई बोल आत्मा में नहीं है। आहाहा! उदय के २१ बोल हैं। यह तो कर्म के निमित्त के वश... निमित्त से नहीं, निमित्त के वश उत्पन्न होता है, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! उसमें भी शब्द फेर है। निमित्त से उत्पन्न होता है, (ऐसा) बोलने में (आये, पर) निमित्त से उत्पन्न नहीं होता। उत्पन्न तो अपनी पर्याय की कमजोरी से विकार उत्पन्न होता है।

यहाँ कहा कि शुद्ध जीवास्तिकाय... जीव, अस्ति और काय। आत्मा है, असंख्य प्रदेशी है (अर्थात्) अस्तिकाय है। आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ के सिवाय कहीं है नहीं। आहाहा! असंख्य प्रदेश। भगवान के सिवाय प्रदेश किसी ने कहे नहीं किसी स्थान में। जरा सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर में कहा है, परन्तु जो चौदह राजूलोक (का क्षेत्र) है ३४३ (घनराजू) उसमें भूल है। उसने कबूल किया है एक पुस्तक में कि यह ३४३ राजू के प्रमाण से मेल खाता नहीं। कहते हैं, परन्तु मेल खाता नहीं—ऐसा पाठ है। चौदह ब्रह्माण्ड के प्रमाण से मेल नहीं, तो चौदह ब्रह्माण्ड में जितने प्रदेश हैं आकाश या धर्मास्तिकाय के, इतने प्रदेश आत्मा के हैं। चौदह राजूलोक में भूल हो तो वह शुद्ध जीवास्तिकाय में भी भूल आ गयी। समझ में आया ? पुस्तक है उसका। उसके पुस्तक में कबूल किया है कि यह चौदह राजूलोक जो हम कहते हैं, उस प्रकार से मेल नहीं खाता।

यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ ने कही, यह वाणी है। केवलज्ञान के अनुसार की वाणी है। तो यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध जीवास्तिकाय को...** ऊपर जो शुद्धभाव कहा, उसको यहाँ शुद्ध जीवास्तिकाय कहा। **वास्तव में विभावस्वभाव नहीं है...** आहाहा! संसार नहीं है। संसार एक समय की विकृत अवस्था है। संसार कोई स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, पैसा, इज्जत, वह संसार नहीं। संसार अपनी पर्याय से दूर नहीं रहता। संसार भूल है। भूल अपनी पर्याय से दूर नहीं रहती। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब को त्यागा तो संसार त्यागा, ऐसा उसको संसार माने, वह संसार नहीं। संसार तो, प्रभु तीन लोक का नाथ शुद्ध जीवास्तिकाय उसमें से हटकर '**संसरणं इति संसार..**' प्रवचनसार में ऐसा है। उससे हटकर—शुद्ध जीवास्तिकाय उससे हटकर राग-द्वेष, पुण्य-पाप के वश हो जाते हैं, वह

संसार है। आहाहा! कहो, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब वह संसार नहीं। सेठ! आपके पैसे-बैसे वह संसार नहीं, ऐसा कहते हैं।

संसार, यह आत्मा की भूल है। तो आत्मा की भूल आत्मा से दूर न रहे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आत्मा की संसारदशा वह आत्मा की पर्याय में रहे। आत्मा की पर्याय को छोड़कर दूसरे (में) संसार कहे नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! सूक्ष्म तो लगे, परन्तु वस्तु तो यह है। आहाहा! जीवास्तिकाय में विभावस्वभाव का अभाव है। आहाहा!

(शुद्ध जीवास्तिकाय को) प्रशस्त और प्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से... कहते हैं कि विभावस्वभाव क्यों नहीं? आत्मा की पर्याय में है, वस्तु में क्यों नहीं? जीवास्तिकाय ध्रुवतत्त्व भगवान उसमें विभावस्वभाव क्यों नहीं? पर्याय में है, अन्दर ध्रुव में नहीं। कारण? कि **मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं,...** आहाहा! मान शब्द लिया है पहले। भगवान आत्मा में मान भी नहीं और अपमान भी नहीं। किसका मान? पूर्णानन्द का नाथ उसको किसका मान? पूर्णानन्द का नाथ उसको किसका अपमान? ऐसे मान-अपमान जीवास्तिकाय—जीव ध्रुवतत्त्व में वह है नहीं। क्यों नहीं है? कि **मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से...** यह कारण दिया। पर्याय में मोह-द्वेष का भाव होने पर भी, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा आत्मा प्रभु... आत्मा की तो बलिहारी है। यह क्या चीज़ है! आहाहा! करनेयोग्य तो यह एक ही है। यह ध्रुवतत्त्व पर दृष्टि करना—शुद्ध जीवास्तिकाय को आदरणीय करना, शुद्धतत्त्व कहो या ध्रुव कहो, उसको उपादेय करके निर्विकल्प हो जाना, शुरुआत में यह करना है प्रभु! बाकी दूसरी बात कितनी भी करे, परन्तु इस बात के बिना धर्म की शुरुआत होगी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं,... कर्म उसमें हैं नहीं, कर्म तो निमित्त है। परन्तु कर्म के निमित्त के आधीन जो मान और अपमान है, वह पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! मान और अपमान... आहाहा! त्रिलोकनाथ भगवान में है नहीं। क्योंकि मोह और राग-द्वेष का त्रिकालीस्वभाव में अभाव होने से... पर्याय में भले हो, पर्याय द्रव्य में है नहीं। पर्याय का द्रव्य में प्रवेश

होता नहीं। आहाहा! वह ऊपर-ऊपर तैरती है। जैसे पानी के ऊपर तेल की बूँद डाले, वह तेल की बूँद ऊपर-ऊपर तेरे, अन्दर प्रविष्ट नहीं। ऐसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय शान्ति का सागर। शान्ति... शान्ति... शान्ति... अकषायभाव कहो, शान्ति कहो, चारित्र कहो, गुण हों त्रिकाली, चारित्र की पर्याय नहीं। त्रिकाली चारित्र गुण है। शान्त... शान्त... शान्त...

उसमें कर्मोदय के कारणरूप मोह और राग-द्वेष है नहीं। उस कारण से उसमें मान और अपमान के हेतु हैं नहीं। मान-अपमान के हेतु कर्मोदय के स्थान नहीं। आहाहा! मान-अपमान में कर्मोदय हेतु है। निमित्त है। उसमें कर्मोदय का स्थान नहीं। क्योंकि मान-अपमान के हेतुभूत... जरा सूक्ष्म बात है। मान-अपमान का हेतु (कर्मोदय) मात्र निमित्त है। कर्म है, वह मात्र निमित्त हेतु है। कर्म से होता नहींऔर भगवान आत्मा कर्म को छूता नहीं। तीन काल-तीन लोक में कोई आत्मा कर्म को छूता नहीं। उस कारण से कहा कि मान-अपमान के हेतुभूत निमित्त कर्मोदय के स्थान—कर्म के उदय के स्थान आत्मा में नहीं, प्रभु! यह स्वीकृति कैसे होती है? आहाहा! दूसरा सब करे परन्तु इसके बिना...

मुमुक्षु : इसके बिना धर्म होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना धर्म नहीं, प्रभु! लोग माने भले। प्रभु! जन्म-मरण रहित होने का, दुःख से मुक्त होने का मार्ग तो यह है। क्योंकि मिथ्यात्व और राग-द्वेष अत्यन्त दुःख और दुःख की जाल है। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र—राग-द्वेष वह तो दुःख की जाल है। भगवान आत्मा उस दुःख की जाल से रहित है अन्दर। आहाहा! कैसे बैठे? सुबह में उठकर एक चाय का प्याला पीये, तब सुख आये। पद्मचन्दजी! सुबह में चाय पीते हैं न सुबह में? सुनने आये तो ऐसा लगे कि चाय पीकर आये तो मस्तिष्क ठीक रहे। आज पीकर नहीं आये, इसलिए मस्तिष्क ठीक नहीं। आहाहा! प्रभु! वह आधा सेर पानी से तेरा मस्तिष्क ठीक हो गया? आधा सेर पानी-उकाला, चाय पीकर आया तो तेरा मस्तिष्क ठीक रहा और बाद में अठीक हो गया? आहाहा! कहाँ तेरी गति, कहाँ तेरा मान, कहाँ तेरा स्थान! आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं परमात्मा। और कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने कारण से बनाया है। यह तो दुनिया सुने... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने यह श्लोक तो मेरे लिये बनायी है। वह श्लोक तो मेरे लिये बनाये हैं। आहाहा! उसमें यह आया कि **कर्मोदय के स्थान नहीं है...** क्या कहा? **मान-अपमान के हेतुभूत...** मान-अपमान का निमित्त। निमित्त ने कुछ किया नहीं। मान-अपमान के हेतुभूत **कर्मोदय के स्थान...** वह है नहीं अन्दर। कर्मोदय उदय (होना) और यहाँ अपना विकार होना अपने से, उदय से नहीं। वह हेतुभूत निमित्त कर्मोदय है, वह आत्मा में है नहीं। आहाहा! ऐसी बात!

(शुद्ध जीवास्तिकाय को) शुभ परिणति का अभाव होने से... आहाहा! भगवान आत्मा को, षोडशकारण भावना से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस शुभ परिणति का अभाव है। वस्तु में नहीं है। आहाहा! **शुभ परिणति का अभाव होने से...** पंच महाव्रत का परिणाम। भगवान की भक्ति, तीर्थंकर गोत्र बाँधने का परिणाम। आहाहा! वह शुभ परिणामों का अभाव होने से... आहाहा! यहाँ तो सेठिये कुछ पैसे खर्चे और मन्दिर-मन्दिर बनाये तो धर्म हो गया। आहाहा! वहाँ नैरोबी गये थे न? तो वहाँ तो पैसा बहुत पैसा बहुत। करोड़पति ४५० और १५ तो अरबपति और पैसे बहुत खर्च करे।

मुमुक्षु : बहुत सुखी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहा था न। तब कहा था कि दुःखी है तू। और पैसे खर्च करके मकान बनाते हो मन्दिर २५ लाख का, धर्म जरा भी नहीं होगा। जो शुभभाव करेगा तो पुण्य बँधेगा। वह चीज़ तो उससे बनती है। यह चीज़ शुभभाव तूने किया, इसलिए बनती है, ऐसा है नहीं। कठिन बात है, प्रभु! बात वास्तविक परमात्मा का परम सत्य, परम सत्य, ओहोहो! वह अलौकिक है। जिसको पर की कोई अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! पर (पर्याय) बने, उसमें ध्रुव की अपेक्षा ही नहीं और ध्रुव में उसकी अपेक्षा नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय—सम्यग्दर्शन का ध्येय, उसमें कहेंगे कि शुभ परिणति का अभाव है। आहाहा! जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु भाषा समझे? भाषा तो सादी है। ज्यादा साफ हिन्दी नहीं आती, थोड़ी हिन्दी में गड़बड़ हो जाये। आहाहा!

शुभ परिणति का अभाव होने से... आहाहा! प्रभु चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु,

अतीन्द्रिय आनन्द की गठरी-गाँठ, अतीन्द्रिय आनन्द का दल। अतीन्द्रिय ज्ञायक और अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, उसमें शुभ परिणति का अभाव है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे उस भाव का भी उसमें अभाव है। आहाहा! और जिसको तीर्थंकरगोत्र बाँधने का परिणाम हो, उसकी दृष्टि पहले ध्रुव पर होनी चाहिए। ध्रुव बिना यह शुभ परिणति उत्पन्न होगी नहीं। तीर्थंकरगोत्र बाँधने की शुभ परिणति ध्रुव के ऊपर दृष्टि बिना उत्पन्न नहीं होगी। अज्ञानी को उत्पन्न होगी शुभ परिणति, परन्तु जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे वह तो समकिती को ही बँधती है। उसकी दृष्टि तो द्रव्य के ऊपर—ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान पर दृष्टि है। भगवान का भेटा है। आहाहा! समकिती को तो भगवान का भेटा है। उसकी शुभ परिणति उसके पास कुछ गिनती है ही नहीं। आहाहा!

शुभ परिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है,... शुभकर्म नहीं। आत्मा में शुभकर्म है ही नहीं। शुभभाव है नहीं, तो शुभकर्म भी है नहीं। आहाहा! समयसार में तो शुभभाव को विषकुम्भ कहा। जहर का घड़ा है और उससे जो प्रकृति बँधे, उसको जहर का वृक्ष (कहा)। जहर का वृक्ष है, ऐसा लिया है। आहाहा! आत्मा अमृत का सागर है, प्रभु अमृत का सागर है। आहाहा! पर्याय में जो रागादि है, वह तो दुःखरूप है। आहाहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने के भाव (हो, पर) है दुःखरूप। आहाहा! और उससे भिन्न कर्मचीज़ उसमें है ही नहीं। कर्म से विकार होता है, ऐसा नहीं। कर्म से विकार होता है, ऐसा नहीं और वह विकार अन्तर स्वरूप में है, ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर शक्ति पड़ी है। भगवान पड़ा है अन्दर। लक्ष्य तो एक पर्याय ऊपर ही है। एक समय की पर्याय वहाँ लक्ष्य पड़ा है। प्रभु तो पड़ा रहा है अन्दर। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है, प्रभु!

यहाँ कहते हैं कि शुभकर्म, शुभपरिणति नहीं। परिणति अर्थात् पर्याय। परिणति अर्थात् शुभभाव की दशा। वह शुभभाव असंख्य प्रकार के हैं। वह सब शुभभाव जिससे पुण्य बँधे, वह भाव का हेतु कर्मोदय होने से उसमें यह है नहीं। कर्मोदय हेतुभूत होने से... हेतु अर्थात् निमित्त। इतनी निमित्त की अपेक्षा आती है। विकार अपने में होताा है, वह विकार वस्तु में नहीं।

शुभकर्म का अभाव होने से... भगवान आत्मा में शुभकर्म का अभाव होने से। आहाहा! तीर्थंकरगोत्र के बन्धन का अभाव है। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है, श्रेणिक राजा ने तीर्थंकरगोत्र बाँधा। समझ में आया? भगवान! तीर्थंकरगोत्र उन्होंने बाँधा है, परन्तु वह प्रकृति आत्मा में नहीं है। आहाहा! जिस भाव से बाँधा, वह भाव आत्मा में नहीं है, तो फिर प्रकृति तो जड़ है। तीर्थंकरप्रकृति बँधी, वह तो जड़ है। विशेष तो, प्रभु! जिस भाव से प्रकृति बँधी, उस भाव का नाश होते ही प्रकृति का उदय होगा। क्या कहा? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधा, उस भाव का नाश होगा, वीतराग होगा, केवली होगा, तब वह पूर्व की प्रकृति बँधी है, उसका तेरहवें गुणस्थान में उदय आयेगा। आहाहा! समझ में आता है कुछ?

शुभपरिणति द्रव्यस्वभाव में है नहीं। उससे जो तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह प्रकृति का उदय वह तो जड़ बँधा जड़। शुभपरिणति तो चैतन्य की विकारी पर्याय (हो), परन्तु कर्म है जड़, उसका उदय तेरहवें गुणस्थान में आयेगा। आहाहा! यह तो जब केवलज्ञान होगा, पूर्णानन्द का नाथ जब विकाररहित हो गया, तब वह उदय आया। समवसरण (आदि) वह तो बाहर की चीज़ है। उसका आत्मा में कुछ आया नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन प्रभु की चीज़। सुनना भी मुश्किल पड़े, प्रभु! भले थोड़ा, परन्तु चीज़ परम सत्य यह है नाथ! परम सत्य त्रिलोकनाथ की यह वाणी है। आहाहा! परमात्मा वहाँ विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी है। वह ऐसा कहते हैं कि जिस भाव से हमें तीर्थंकर बँधा, वह भाव भी हमारे में नहीं है और जो प्रकृति बन्धन हुई, उसका फल हमको छद्मस्थ (दशा) में नहीं मिलेगा। केवलज्ञान होगा, तब (मिलेगा)। प्रकृति जहर है। आहाहा! तेरहवें गुणस्थान में उदय आयेगा, तब तक केवलज्ञान ले लेंगे। आहाहा! प्रकृति ने कुछ आत्मा को लाभ दिया, ऐसा है नहीं।

वह यहाँ कहते हैं कि **शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है।** भगवान में संसार का सुख नहीं। कल्पना का सुख है न? पैसे में, स्त्री में, कुटुम्ब में। ओहोहो! शरीर का एक अवयव दूसरे शरीर के अवयव को प्रभु! छूता नहीं। छूता नहीं और माना कि हम भोग लेते हैं। आहाहा! दृष्टि का अन्तर है, प्रभु! एक शरीर की पर्याय दूसरे

शरीर की पर्याय को छूती नहीं। आहाहा! एक शरीर का अवयव—मिट्टी-धूल वह दूसरी मिट्टी-धूल के शरीर को छूती नहीं कभी। आहाहा!

तो यहाँ कहते हैं कि **संसार सुख नहीं है।** विषय में जो (सुख) मानते हैं, वह कल्पना है। कर्म उदय उसमें नहीं, राग स्वभाव में नहीं और राग में मानते हैं कि हमें सुख है। संयोग वह सुखरूप और दुःखरूप नहीं। शरीर को अग्नि में डाले तो अग्नि शरीर को छुई ही नहीं। आहाहा! वह शरीर में जो दुःख होता है, वह शरीर की पर्याय से नहीं, अन्तर में अरुचिभाव—विकारभाव करते हैं, उसका दुःख है। संयोगी चीज़ का नहीं, अग्नि का नहीं, पर का दुःख है नहीं। आहाहा! बहुत अन्तर। संसार से अलग है, प्रभु! पूरी दुनिया का मार्ग भिन्न है। यह तो जन्म-मरणरहित होने की बात है, प्रभु! आहाहा! जन्म-मरण (करके) स्वर्ग में जाना, वह स्वर्ग को दुर्गति कही है। आहाहा! स्वर्ग को दुर्गति कही है।

मोक्षपाहुड़ में कहा है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' क्या कहा? '**परदव्वादो दुग्गइ**' भगवान कहते हैं कि मैं परद्रव्य हूँ। तेरा मुझ पर लक्ष्य जायेगा तो दुर्गति है। राग वह आत्मा का चैतन्य(भाव) नहीं, इसलिए दुर्गति है। अष्टपाहुड़ में है। आहाहा! '**सदव्वा हु सुग्गइ**' यह दूसरा बोल है। '**सदव्वा हु सुग्गइ**' अपना जो द्रव्य आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द, उसके अवलम्बन से सुख है और सुगति है। आहाहा! स्वर्ग के सुख भी दुःखरूप हैं, कषाय है, सर्वार्थसिद्धि के देव एकावतारी हैं—एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं, फिर भी (उन्हें) कषायभाव है, वह दुःखरूप है। आहाहा! कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। कोई भी प्रकार के हास्य, रति, अरति, शोक, ग्लानि। आहाहा! वह सब पाप है। हास्य, वह भी पाप है, रति वह पाप है, अरति वह पाप है। आहाहा! हास्य, रति, अरति, शोक, ग्लानि, भय—सब नोकषाय है, विकार अर्थात् दुःख है। आहाहा! कर्म का निमित्त है उसमें, परन्तु उससे उत्पन्न हुआ नहीं। अपनी पर्याय में कमजोरी से... आहाहा!

'अपने को आप भूलकर हैरान हो गया। अपने को आप भूल के हैरान हो गया।' भजन में एक आता है। 'अब हम कबहु न निज घर आये। अब हम कबहु न निज घर

आये। पर घर भ्रमत नाम अनेक धराये।' राग और पुण्यवाले ... नारकी है, तिर्यंच है, मनुष्य है, स्त्री है, पुरुष है, मानी है, अपमानी है। 'प्रभु हम कबहु न निज घर आये, पर घर भ्रमत अनेक नाम धराये।' परघर के लक्ष्य से अनेक नाम धारे प्रभु! परन्तु वह चीज़ तेरी नहीं। आहाहा! भजन में आता है। भजन है न? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि संसार सुख शुभपरिणाम में नहीं। क्या कहा? आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव सुखरूप नहीं, वह भाव दुःखरूप है, जहर है। कठिन लगे, प्रभु! यह सार है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्पष्ट किया है। आचार्य ने स्पष्ट लिखा है। आहाहा!

संसार, शुभ परिणाम या भोग में जो राग हुआ, वह सुख नहीं, वह दुःख है। आहाहा! सुन्दर शरीर और सुन्दर स्त्री का शरीर हो और विषय की वासना में इतनी गृद्धि हो... आहाहा! प्रभु! हमने तो सब सुना है न, देखा है न। किया नहीं है स्त्री का... विषय लेने पहले पकवान खाते हैं। बर्फी, चुरमूं पाव सेर, आधा सेर। बाद में विषय लेने में मजा आये। अरे! प्रभु! यह क्या करते हो तुम? आहाहा! समझ में आया? यह तो ८० वर्ष पहले की बात है। एक का देखा है। बर्फी लेते हैं। खाकर आये हैं। कहा, यह रात को सोने से पहले भोग के समय लेंगे। बाद में भोग लेंगे। आहाहा! सारी दुनिया देखी है। नाचे नहीं, परन्तु नाचनेवाले को देखा है। नाचनेवाले को सबको देखा है। आहाहा! प्रभु! क्या करते हैं और कहाँ जाते हैं, उसको उसकी खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि संसार में कहीं भी सुख नहीं। आहाहा! तुझे सुख चाहिए तो, प्रभु! जीवास्तिकाय में पड़ा है। अन्दर में आनन्द का कन्द है। आनन्द का गोला है प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द की खान है, निधान है। आहाहा! ऐसा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान में संसारसुख नहीं है। उसमें संसारसुख नहीं। अपना आनन्द-सुख है। अपना आनन्द का अतीन्द्रिय सुख है। संसारसुख अन्दर में है ही नहीं। आहाहा! दुनिया कुछ माने, कुछ चले, कोई मेल नहीं मिले। आहाहा! पर को छूते नहीं, हों! उस समय कल्पना होती है कि यह ठीक है। वह कल्पना दुःख है। दुःख, वह जहर है। आहाहा!

यह कल्पना का संसारसुख, शुद्धद्रव्य जीवास्तिकाय... यह मूल अधिकार शुद्धभाव अधिकार है। शुद्धभाव कहो या ध्रुव कहो, ध्रुव कहो या जीवास्तिकाय कहो। शुद्ध जीवास्तिकाय में... आहाहा! प्रभु! यह संसार के सुख के असंख्य प्रकार, अनन्त सूक्ष्म भेद हैं अनन्त प्रकार, वह आत्मा में नहीं। निकल जाये, वह आत्मा में नहीं। छूट जाये, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्दमय है। संसारसुख का अभाव होने से... प्रभु में **संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं...** पाठ में से लिया है। आत्मा में हर्ष नहीं है। आहाहा! हर्ष, वह विकार है। संसारसुख का अभाव होने से... **संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं...** हर्ष अर्थात् प्रसन्न होना। कुछ भी अनुकूल विस्मयकारी वस्तु देखकर खुश हो जाना, वह विकार और दुःख है। आहाहा! वह दुःख प्रभु में नहीं है। जीवास्तिकाय परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अनादि परमानन्द की मूर्ति है। वीतरागस्वरूप से भरा है। पूरा चैतन्यतत्त्व वीतरागस्वरूप से भरपूर है। आहाहा! यह वीतरागस्वरूप में हर्ष का स्थान नहीं। हर्ष नहीं, हर्ष... हर्ष... लड़के की शादी करे तो हर्ष का पार नहीं। उसकी माँ... तीन दिन जीमन में सब गरिष्ठ वस्तु हो न सब, तो कण्ठ बैठ जाये। कोई दूसरे कहे कि बहिन! कण्ठ बैठ गया न? तो थोड़ा बोलो न। कहे कि बहिन दो-तीन है न। कण्ठ बैठ गया हो फिर भी बोल-बोल करे। आहाहा! इतना रस चढ़ गया प्रभु! तुझे कि कण्ठ बैठ गया हो तो भी (बोलना) छोड़े नहीं। वह सब मिथ्यात्व का परिणाम है, प्रभु! आहाहा! ऐसे कुदेव को गुरु मानो, वह तो मिथ्यात्व है ही, परन्तु यह तत्त्व से परमतत्त्व भिन्न है, ऐसा भेद न माने, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा!

और (शुद्ध जीवास्तिकाय को) अशुभ परिणति का अभाव होने से... अशुभ परिणति। पहले शुभ कही थी। सब अशुभ परिणति है ही नहीं अन्दर। **अभाव होने से अशुभकर्म नहीं है,...** भगवान में अशुभकर्म नहीं। **अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है,...** आहाहा! चैतन्य भगवान आनन्द से भरा है, उसमें दुःख नहीं। आहाहा! इकलौता बेटा मर जाये... आहाहा! कहा था न? जामनगर का एक आदमी था। वर्षों से उसका खुराक हलवा था। शीरा... शीरा—हलुआ। हलुआ कहते हैं न? सालों से हलुआ। रोटी बिल्कुल नहीं। सालों से एक ही खुराक। उसमें इकलौता बेटा मर गया।

इकलौता बेटा था, (उसका) देह छूट गया। जलाकर आ गये। खाने के समय खाना क्या? उसने कभी रोटी खाई नहीं है।

उसने तो ऐसा कहा कि रोटी बनाओ। आँख में से आँसू चले जाते थे। दूसरे सगे-सम्बन्धी इकट्ठा होकर (कहे), भाई! आप रोटी खायेंगे तो ठीक नहीं रहेगा। आपको वह अभ्यास ही नहीं। रोटी हजम नहीं होगी और आपको नुकसान होगा। हलुआ बनाओ। आहाहा! आँख में से आँसू की धारा चली जाये और वह हलुआ खाये। हलुआ ऊपर प्रेम नहीं। यह तो भूख है इसलिए खाया। परन्तु अन्दर रस नहीं। आँसू की धारा। ऐसे समकिती को... आहाहा! आत्मा के आनन्द के आगे परचीज़ के (भोग के) समय दुःख होता है। पर की चीज़ भोगने में दुःख होता है। आहाहा! वह दुःख की परिणति अशुभ परिणति है। आहाहा! अशुभ परिणति का अभाव होने से अशुभकर्म आत्मा में नहीं। आहाहा!

अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है। आत्मा में दुःख है ही नहीं। आहाहा! दुःख तो प्रतिकूलता की कल्पना खड़ी करके दुःख में डूब जाता है प्रभु! तू। परन्तु आनन्द का नाथ अन्दर है, वह दुःख की पर्याय के पीछे तल... तल... तल... ऊपर दुःख है उसका तल है। तल में केवल आनन्द है। आहाहा! उस आनन्द के ऊपर नजर नहीं करने से, ऊपर के भोग के सुख के परिणाम अशुभ आदि के... अनेक प्रकार का अशुभ होता है। बेटे की शादी करे और पाँच-पचास हजार खर्च करे, जाति में कुछ बक्षीश दे, आहाहा! सब कहे न? मुम्बई में... तो सारी नात में बेड़े बाँटे थे। बेड़े समझे? पानी भरे का कलशा। उसकी शादी के समय नात में सबको कलशा दिये थे। पूरे पीतल का कलशा। आहाहा! बेड़ा समझते हैं? तांबा का... तांबा का... तांबा का होता है न?

मुमुक्षु : पीतल का घड़ा

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पीतल का, तांबा का घड़ा। पहले घड़े से बड़ा हांडा था। हांडा वह सब बांटे थे। उसमें स्त्री को जब प्रसव का समय आया, पैसा न मिले... पैसा न मिले। जेठाभाई थे, वह गुजर गये। जेठाभाई कहते थे। वह मेरे पास माँगने आया। क्षण में पुण्य पलट जाये, पाप पलट जाये। प्रभु! यह कोई पुण्यादि सदा रहेगा ऐसी चीज़ है नहीं। जिसकी शादी में ऐसा काम किया, उसको कन्या के प्रसव के समय उसको

हॉस्पीटल में दाखिल करने के पैसे न मिले। आहाहा! तो उसको पैसा थोड़े दिये, जेठालाल कहते थे। पैसे थोड़े दे दिये। ओहोहो! ऐसी चीज़ अनित्य—एक क्षण में पलट जाये। आहाहा! उसमें सुख-दुःख क्या है? वह तो तेरी कल्पना है। तेरी चीज़ में भी नहीं और वह (संयोगी) चीज़ में भी नहीं। क्या कहा?

जो शुभ-अशुभ परिणाम तेरी चीज़ में नहीं, वैसे परचीज में नहीं। परचीज तो ज्ञेय है। आत्मा ज्ञायक है, तो सब सारी दुनिया, वीरप्रभु त्रिलोकनाथ भी ज्ञेय हैं। आहाहा! वह सारी दुनिया ज्ञेय है। उस ज्ञेय के दो भाग करना कि यह ठीक है और यह अठीक है, यह दृष्टि मिथ्यात्व है। समझ में आया? अन्दर में अभिप्राय में ठीक-अठीक किया... अस्थिरता का भाव आये, वह दूसरी बात है, परन्तु अभिप्राय में ऐसा कहे कि यह ठीक है, यह अठीक है... ज्ञेय के स्वभाव को ज्ञान में जानना, यह भी व्यवहार है। आत्मा ज्ञान से पर को जाने, यह भी व्यवहार है। वास्तव में पर को जानते नहीं क्योंकि पर में तन्मय होता नहीं। तन्मय हुए बिना निश्चय में जानता नहीं। आहाहा!

अपने में तन्मय होकर जानते हैं। पर में मानते हैं ऐसा कि इसमें सुख है, ऐसा। यह कहते हैं यहाँ। **अशुभ परिणति का अभाव होने से अशुभ कर्म नहीं। अशुभ कर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है,...** प्रभु में दुःख नहीं, प्रभु! आहाहा! **दुःख का कारण होने से अहर्षस्थान नहीं है।** अहर्ष नहीं, शोक नहीं। प्रभु में शोक नहीं। बीस साल का बेटा शादी करके तुरन्त गुजर गया हो तो भी समकिती को अन्तर की दृष्टि छूटती नहीं। ध्रुव से दृष्टि हटती नहीं। अस्थिरता में थोड़ा राग आ जाये तो उसका स्वामी होता नहीं। आहाहा! ऐसा शुद्ध जीव का यह अधिकार है। उसका श्लोक।

(अब ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—) आहाहा! जरा अन्तर है। अर्थ में अन्तर किया है। अन्तर किया है? अन्तर नहीं किया है। निर्भेदतया। श्लोक है, पहले देखो!

(शार्दूलविक्रीडित)

प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-
निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृताववात्मनि।

चैतन्यामृतपूरपूर्णवपुषे प्रेक्षावतां गोचरे
बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं संसृतेर्दुष्कृतेः ॥५५॥

वहाँ अर्थ में जरा अन्तर किया है। अर्थ है न? थोड़ा अन्तर किया है। निर्भेदतया प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ है प्रभु! आहाहा! जरा अन्तर है, लिखावट में अन्तर है। यह अर्थ नया किया है। **निर्भेदतया प्रकाशमान होने से...** मूल पाठ—गाथा में यह है। **निर्भेदतया प्रकाशमान...** प्रभु है। आहाहा! भेद-बेद कुछ नहीं। ऐसे निर्भेदतया प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ है। प्रभु तो सुख से बना हुआ है। बना है अर्थात् सुखरूप है। आहाहा! पाठ है साथ में। पंचास्तिकाय में ऐसा आता है कि त्रिलोक रचना हुई है। रचना का अर्थ त्रिलोक है बस। रचना कौन करे? है।

आत्मा... सुख का बना हुआ है। कौन? आत्मा। बना हुआ है तो क्या नया बना है? सुखस्वरूप ही है। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है। आहाहा! पर्याय में सुख और दुःख, शुभ-अशुभ और शुद्धपरिणति होती है। शुभपरिणति, अशुभपरिणति और शुद्धपरिणति—पर्याय। वह पर्याय में तीनों भाव होते हैं। वस्तु में केवल शुद्ध ध्रुवभाव पड़ा है। आहाहा! इसमें तो शुद्धपरिणति का भी अभाव है। शुभ-अशुभ का तो अभाव है ही, परन्तु शुद्धपरिणति का भी अभाव है। आहाहा!

जो **नभमण्डल समान आकृत है,...** आहाहा! जैसे आकाश उसका आकार क्या? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... चौदह ब्रह्माण्ड पीछे चले जाओ। चौदह ब्रह्माण्ड तो असंख्य योजन में है। पीछे अनन्त आकाश है। कहीं अन्त नहीं। ऐसे आकाश के समान आकृतिवाला है। आहाहा! कौन? यह भगवान आत्मा। आहाहा! **नभमण्डल समान...** आकाश के मण्डल के समान आकृतिवाला अर्थात् निराकार अरूपी है। आकाश को जैसे आकार नहीं, आहाहा! वैसे प्रभु आत्मा में साकार नहीं। आकार है, पर का आकार नहीं। आकार तो प्रदेश के प्रमाण से है। प्रदेशत्व गुण है उसमें। छह गुण है न? प्रदेशत्व गुण एक है। उस गुण के कारण से द्रव्य में आकार तो होता ही है, परन्तु पर का आकार उसमें नहीं। निराकार स्वस्वरूप में पर के आकार का अभाव है, ऐसा भगवान शुद्ध आत्मा है।

चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ... है नीचे श्लोक में। **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है...** आहाहा! चैतन्य के अमृत से भरा हुआ स्वरूप... **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** विचारवान समकिती को **गोचर है।** आहाहा! ऐसी चीज़ भी ज्ञानी को—विचारवन्त को गम्य है—गोचर है—जानने में आता है। आहाहा! **ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** आचार्य ऐसा कहते हैं कि ऐसे आत्मा में रुचि क्यों नहीं करता? **और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है?** संसार में सुख की वांछा... सुख की वांछा... इस (शाश्वत) सुख की वांछा क्यों नहीं करते हो? इस (क्षणिक) सुख की वांछा क्यों करते हो? प्रभु! तेरी दृष्टि में अन्तर हो गया। तेरी चीज़ की महिमा न रही (और) पर की चीज़ की महिमा रह गयी। वहाँ तू रुक गया उसमें।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक - २६-०७-१९७९
श्लोक-५६, प्रवचन-६

नियमसार। ४०वीं गाथा पीछे कलश है। एक कलश में आयेगा। किसी का लिखा हुआ है कि ४० न पढ़ना। जानने की चीज़ है। ४१ में है। वह कलश में आयेगा। देखो! कलश है न?

(मालिनी)

न हि विदधतिबद्धस्पृष्टभावदयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्योऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥

यह बद्धस्पृष्ट की बात चलती थी न? बाद में १४वीं गाथा पढ़ना... किसी ने कहा था कि १४वीं, ३८वीं, ७३वीं पढ़ना। यह १४वीं का सार आ गया। यह १४वा का है। यह कलश १४वाँ का है।

श्लोकार्थः—जगत... अथवा जगत में रहनेवाले जीवों। जगत शब्द है, परन्तु जगत में रहनेवाले जीवों, ऐसा अर्थ है। संसार में भी ऐसा कहते हैं न? कि लोग आये तो मालव देश आया, काठियावाड़ आता है। काठियावाड़ आता है? मालव देश आता है? उसका रहनेवाला आता है। ऐसे यहाँ जगत कहने से जगत में रहनेवाले जीव को सम्बोधन करते हैं। समझ में आया?

मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान... आहाहा! ऐसा समयसार में आया है कि जब तक अज्ञानी है तब तक, (भले) जैन हो, फिर भी पुण्य-पाप का कर्ता है, ऐसा मानना। अन्यमति के जैसे नहीं मानना। वह श्लोक है। संवर... समयसार। कि पुण्य और पाप का भाव... जब तक स्वरूप का ज्ञान नहीं, तब तक अज्ञान से अज्ञानी कर्ता होता है। कर्म से होता है विकार, ऐसा नहीं। समझ में आया? पहले गाथा-श्लोक है कि अर्हंत को माननेवाला, अन्यमति जैसे मानते हैं कि विकार अपना है ही नहीं और

अपने से है ही नहीं, ऐसे न मानो। जब तक अज्ञान है, तब तक पर्याय में अशुद्धता का—राग-द्वेष का कर्ता आत्मा है। अज्ञानी मिथ्यात्वी जब तक है... आहाहा! स्वरूप शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का अनुभव नहीं, तब तक जैन लोग—अरिहन्त को माननेवाले भी राग-द्वेष का कर्ता (मानो कि यह) अशुद्धता की पर्याय मेरी है, मैं करता हूँ। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! और भेदज्ञान हुए पीछे राग-द्वेष का कर्ता मैं नहीं। तो राग-द्वेष का कर्ता (जड़) कर्म है, ऐसा भी नहीं। राग-द्वेष होता है तो अपनी पर्याय में अपनी कमजोरी से, परन्तु जब स्वरूप का ज्ञान हुआ कि मैं तो ज्ञान-आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, तो ऐसी दृष्टि में राग आता है तो भी राग को जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? वह श्लोक है।

भेदज्ञान होने से पहले अरिहन्त को माननेवाला राग-द्वेष, पुण्य-पाप का आत्मा ही कर्ता है ऐसे मानो। परन्तु यहाँ तो वास्तविक दृष्टि का विषय बताना है। क्रमबद्ध में भी वह बताना है कि अकर्ता है। परन्तु अकर्ता कब? कि राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन हुआ, तब वह राग का कर्ता आत्मा नहीं, परन्तु अज्ञान में भी राग का कर्ता आत्मा नहीं और कर्म राग का कर्ता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? पल में कर्ता, पल में अकर्ता? भगवान का स्याद्वाद मार्ग है। तो पर्याय में पुण्य-पाप का मलिनभाव होता है। तो जब तक भेदज्ञान नहीं। ऐसा श्लोक है समयसार में। तब तक तो अरिहन्त को माननेवाले, पर्याय में विकार जो होता है पुण्य, शुभ, दया, दान, काम, क्रोध—वह पर्याय का अपराध है और मैं ही कर्ता हूँ, ऐसा मानना। समझ में आया? और भेदज्ञान होने के बाद... यह भेदज्ञान की बात है। आहाहा!

जगत मोहरहित होकर... ऐसा शब्द पड़ा है न? वह पुण्य-पाप का भाव विकृतभाव है, वह पर्यायबुद्धि में मैं करता था। परन्तु मेरी चीज जो है आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी दृष्टि होकर सम्यग्ज्ञान हुआ तो वह राग का कर्ता मैं नहीं, मैं मोहरहित हूँ। आहाहा! समझ में आया? **मोहरहित होकर...** उसका अर्थ है कि पहले मोहसहित था। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है, भाई! **मोहरहित होकर...** तो उसका अर्थ हुआ कि पहले मोहसहित था। ऐसे मानता था और ऐसा था। आहाहा! बिल्कुल मेरे में

राग नहीं, राग का कर्ता कर्म है अज्ञानभाव में, ऐसे न मानो। ऐसा कलश है। समयसार में। डाह्याभाई!

अभी तक यह बात कही और अब यह बात? यह बात में, प्रभु! स्वच्छन्द न हो जाये कि हम तो सम्यग्दृष्टि हैं, पीछे हमें कैसा भी विकार हो तो भी हमारा है नहीं। हम भोग करते हैं तो हमारा नहीं, ऐसा स्वच्छन्द न हो जाये... आहाहा! जैन में रहा, जैन पक्ष में आया, जैन वाड़ा में आया, जैन का सुना, परन्तु जब तक राग से भिन्न अपनी चीज़ जानने में न आये, तब तक जैनों आप अज्ञानभाव से रागभाव का कर्ता मैं हूँ—ऐसा मानो।—ऐसा आचार्यदेव का हुकम है। आहाहा! डाह्याभाई!

परन्तु जब मोहरहित दृष्टि हुई, आहाहा! कि विकार का विकल्प जो है दया, दान का, उससे भी मेरी चीज़ तो भिन्न है। ऐसी चीज़वाले को 'जगत के प्राणी' सम्बोधन करके आचार्य कहते हैं **मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान...** ऐसा भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति राग से भिन्न होकर, मोह से रहित होकर... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का मार्ग।

और कोई ऐसा प्रश्न करे कि भाई! त्याग कहाँ आया? इसमें त्याग तो आता नहीं। ऐसा प्रश्न अभी कहते हैं अजमेर से। प्रभु! पर का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा का स्वभाव ही त्याग-ग्रहणरहित है। आहाहा! वह ४७ शक्ति में है। प्रभु! पर का त्याग और पर के ग्रहण से तो प्रभु शून्य है। मात्र अज्ञानभाव से राग और द्वेष को मैं करता हूँ और ग्रहण किया, वह अज्ञानभाव है। पर का तो त्याग-ग्रहण है ही नहीं। और मिथ्यात्व का त्याग (किया), वह भी निमित्त से कथन है। मिथ्यात्व का त्याग भी... अपनी चीज़ जो मोहरहित है... आहाहा! ऐसा अनुभव करो।

प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का अनुभव करना चाहिए... आहाहा! राग की रुचि छोड़कर, राग की एकताबुद्धि छोड़कर मोहरहित नाम रागरहित मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि करके, हे जगत के प्राणियों! सन्त-दिगम्बर सन्त पुकार करके करुणा करके जगत को कहते हैं। आहाहा! यह भगवान अन्दर चैतन्य प्रकाशमूर्ति ऐसे सम्यक् स्वभाव का... सम्यक् स्वभाव... रागादि, पुण्यादि उसका मूल स्वभाव नहीं, वह तो उपाधि

है। जब तक राग का कर्ता होता है, तब तक तो अज्ञानी है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि एक बार प्रभु तू मोहरहित हो जा। आहाहा! तेरी चीज़ में यह राग और विकल्प है ही नहीं। ४० में वह कहना था। वह यहाँ सार डाल दिया कलश में। आधार दिया १४वीं गाथा का कि अनुभव करना चाहिए। क्या?

जिसमें यह बद्धस्पृष्ट आदि भाव... आहाहा! क्या कहते हैं? यह १४वीं गाथा का सार है कि कर्म का सम्बन्ध मेरे में है, उस रहित मैं हूँ। बद्ध से रहित हूँ। आहाहा! और स्पृष्ट अर्थात् विस्रा पुद्गल जो है, उसके स्पर्श से मैं रहित हूँ। वह बद्धस्पृष्टरहित। आहाहा! और अनन्य—नरकगति, मनुष्यगति, देवगति आदि मैं नहीं। वह अन्य-अन्य है (और) मैं अनन्य हूँ। यह चार गति से भिन्न मैं अनन्य हूँ। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट, अनन्यम्, नियतम्... पर्याय में अनेक प्रकार की हीनाधिकता की दशा उत्पन्न होती है, वह अनियत है, मैं तो नियत हूँ। आहाहा! मैं तो निश्चय स्वरूप भगवान हूँ, पूर्णानन्द में कुछ कमी-बेसी रहती नहीं और पर्याय आना और जाना, वह मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। है?

जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व... बद्धस्पृष्टत्व तो नहीं, अन्य-अन्य गति वह भी मैं नहीं और अनियत अर्थात् पर्याय में हीनाधिकता होती है, वह भी मैं नहीं और दर्शन, ज्ञान और चारित्र जो विशेष दिखते हैं, वह विशेष भी मैं नहीं; मैं तो सामान्य एकरूप चैतन्य हूँ। आहाहा! ४०वीं गाथा में यह कहना है। उसका सार यह है। आहाहा! समझ में आया? मैं अबद्धस्पृष्ट, अनन्य... और अनियत, आहाहा! वह नहीं। नियत हूँ। निश्चय एकरूप है।

और अविशेष... मैं अविशेष हूँ, विशेष नहीं। क्या? दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसा भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! मैं तो विशेषरहित सामान्य हूँ। रागरहित तो हूँ, परन्तु विशेषरहित मैं हूँ। आहाहा! प्रभु मार्ग अलग है, भाई! यह दुनिया में पैसे से घुस जाये और मजा माने। पहिचाना न सेठ उसको? बैंगलोर। दो करोड़ रुपये। धूल-धूल। आहाहा!

मुमुक्षु : चार....

पूज्य गुरुदेवश्री : चार दीवार में यह कहते हैं, बाहर नहीं। बाहर निकल जाये... आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने कहा, ऐसा दिगम्बर सन्त आड़तिया होकर जगत को भगवान का माल बताते हैं। पसन्द पड़े तो लो, न पसन्द पड़े तो आपकी मर्जी। आहाहा! कहते हैं कि मैं विशेष भी नहीं। राग का सम्बन्ध तो नहीं, कर्म का सम्बन्ध तो नहीं। आहाहा! यह बद्धस्पृष्ट में आता है। यह परिभाषा बद्धस्पृष्ट की है। है? **बद्धस्पृष्ट आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी...** आहाहा! विशेषभाव और कर्म का सम्बन्धभाव और असंयुक्त (अर्थात्) राग से संयुक्त-सहित नहीं। राग से संयुक्तपना राग, दया, दान, व्रत आदि का विकल्प ऊपर तिरते हैं। मेरी चीज़ के अन्दर में उसका प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह पाँच भाव आया। बद्धस्पृष्टरहित, अनन्य अर्थात् अन्य-अन्य गति रहित और पर्याय में अनेकता—विविधता, कमी-बेसी होती है, कमजोरी आती है, वह भी नहीं और विशेष दर्शन, ज्ञान, चारित्र का भेद भी मैं नहीं और असंयुक्त—राग से संयुक्त भी नहीं। आहाहा! ऐसे बद्धस्पृष्ट आदि पाँच यह बोल... भाव **स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी...** आहाहा! यह मार्ग। ४०वीं गाथा में यह कहना था। समझ में आया?

वह ऊपर तिरते हैं, मेरी चीज़ में नहीं। जैसे जल है न पानी? पानी मण, दो मण पानी। उसमें तेल-तेल (डालो), तो तेल अन्दर नहीं प्रवेश करता। तेल की चिकनाई... तेल समझते हैं न? सेठ! वह तेल की चिकास ऊपर रहती है, अन्दर नहीं प्रवेश करती। जल का दल—पानी का दल है, आहाहा! वह तेल का बिन्दु ऊपर तैरता है, अन्तर में नहीं प्रवेश करता। ऐसे यहाँ कहते हैं कि हे जगत के जीवो! प्रभु! तेरा स्वभाव अन्दर ऐसा है कि बद्धस्पृष्ट रागादि भाव ऊपर तैरते हैं, द्रव्य में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहो, ऐसी बात!

अभी तो यह शुद्धनय के विषय की बात है। १४वीं गाथा शुद्धनय के विषय की अर्थात् सम्यग्दर्शन की बात है। १५वीं गाथा सम्यग्ज्ञान की बात है और यहाँ सम्यग्दर्शन की बात है। फिर भी सम्यग्दर्शन में भी शुद्धनय का विषय वह (अभेद) लिया है। नय

तो ज्ञान है। वह शुद्ध नय जो पवित्र दृष्टि पर्याय, उसका वह विषय है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो हमने पढ़ा ही नहीं। नय....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यहाँ तो पढ़ना होगा न उसको! आहाहा! आये कहाँ से देखो। कहाँ-कहाँ से आये हैं। अपनी सुविधा छोड़कर। जैसी वहाँ सुविधा है वैसी यहाँ मिलती नहीं है। तो क्या चीज़ है? प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक राग, द्वेष, कर्म, पर्याय की अनेकता, गति की अनेकता, भेद का विशेषभाव और रागभाव—वह आत्मद्रव्य के ऊपर तैरते हैं। द्रव्य में प्रवेश नहीं। आहाहा! यह १४वीं गाथा। है नय का अधिकार, परन्तु वह दर्शन का अधिकार है। १५ में ज्ञान का अधिकार है कि बद्धस्पृष्टरहित अपने आत्मा को अनुभवे वह सारा जैनशासन का अनुभव हुआ। जैनशासन में यह कहना है, '**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' जिसने भगवान आत्मा को... आहाहा! विशेष और राग-द्वेष से रहित भिन्न आत्मा जिसने देखा और अनुभव हुआ। वह '**अपदेससंतमज्झं**' सिद्धान्त में भी वह कहा है और अनुभव वही जैनशासन है। ऐसे देखनेवाले ने सारा जैनशासन देखा। आहाहा!

इस गाथा के अर्थ में... यह गाथा है न उसका कलश आता है। उसके अर्थ में, भावार्थ में तो ऐसा लिया है कि भाई! यह अबद्धस्पृष्ट ऐसा कहा, परन्तु पर्याय में मलिनता है, पर्याय में राग है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर अबद्धस्पृष्ट की दृष्टि करना। टीका में है। समयसार की गाथा १४वीं की टीका में लिखा है जयचन्द पण्डितजी ने। आहाहा! पर्याय में राग-द्वेष है ऐसे ज्ञान को लक्ष्य में रखना। बिल्कुल ज्ञान का लक्ष्य छोड़ दे तो एकान्त हो जाये। आहाहा! यह ज्ञान का लक्ष्य रखकर, उससे रहित मैं चैतन्य हूँ, ऐसी दृष्टि का विषय बना ले तेरा भव का अन्त होगा। आहाहा! यह नरक और निगोद... भाई! आहाहा!

वादीराज (मुनि) तो कहते हैं। वादीराज का है न विषापहार (एकीभाव) स्तोत्र। उस स्तुति में कहते हैं कि हे नाथ! मैं भूतकाल का दुःख याद करता हूँ तो मुझे आयुध की चोट लगता है, ऐसा लगता है। मुनि कहते हैं। मेरी पूर्व में नरक और निगोद

की पर्याय में दुःख था, उस दुःख को मैं याद करता हूँ, मुनिराज कहते हैं। विषापहार (एकीभाव) में भगवान की स्तुति करते हैं। हे नाथ! तुमने कहा ऐसा शरण मैंने लिया नहीं और मैं दुःखी हुआ। ऐसा दुःखी कि उस दुःख की स्मृति जहाँ हम करते हैं... नरक और निगोद का दुःख... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त का दुःख करोड़ भव और करोड़ जिह्वा से न कह सके प्रभु ऐसी दुःखदशा है, तू भूल गया। भूल गया तो नहीं था, ऐसा कैसे कहे? समझ में आया?

अपने जन्मने के बाद बारह मास में अपने जीवन में क्या हुआ? माता ने क्या किया (यह) खबर है? दस्त जाने में तो माता ने पग लम्बे करके पग पर बैठाकर दस्त करवाया है। बालक है वो दस्त कहाँ जाये? तो पैर लम्बे करके दो पैर के बीच में बालक को बेठाये। देखा है या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलकत्ता... आहाहा! माता है... उसके दस्त होने की तैयारी हो गयी। थोड़ा बिगड़ गया यहाँ। उसको दस्त कराये कैसे? कहाँ... चूल्हे में बैठाये? बाहर बैठाये? कहाँ बैठाये? तो माता पैर लम्बे करके पैर पर बैठाये। पैर बीच में खाली हो वहाँ दस्त जाये। आहाहा! पण्डितजी! यह तो सब देखा है न? आहाहा! माता ने ऐसा किया है। याद नहीं, प्रभु! तुझे। याद नहीं, इसलिए नहीं था—ऐसा कैसे कहे? आहाहा! ऐसे अनन्त भव में दुःख कहाँ कैसे भोगा? यह दुःख तुझे याद न आवे, इसलिए दुःख नहीं था, ऐसा कौन कहे? कपूरचन्दजी! आहाहा! ऐवी बातें छे यह गुजराती। ऐसी बात है वह हिन्दी।

बद्धस्पृष्ट आदि भाव... भाव तो कहा। कोई अभाव शून्य है, ऐसा है नहीं। भाव तो है रागादि, विशेषादि, बद्धस्पृष्ट आदि है। आहाहा! परन्तु स्पष्टरूप से... आहाहा! भगवान चैतन्य प्रकाश की मूर्ति उसके ऊपर स्पष्टरूप से अर्थात् प्रत्यक्षरूप से। आहाहा! जहाँ वह ज्ञान और आनन्द का सम्यग्दर्शन में प्रतीति पहले अनुभव हुआ। आहाहा! वह अनुभव होकर प्रतीति हुई, तो उसमें स्पष्टरूप से **तैरते होने पर भी...** आहाहा! अपनी चीज़ में ऊपर तैरते हुए... स्पष्ट प्रत्यक्ष आत्मा देखा तो तैरता दिखा। आहाहा! समझ में

आया ? प्रभु ! यह तो धर्मकथा है। यह तीन लोक के नाथ की कथा है, यह कोई कहानी नहीं। बालक को कथा कहते थे न ? कि चिड़िया लायी चावल का दान, चिड़िया लाया मूँग का दाना। बाद में बनायी खिचड़ी। वह बालक की कहानी आती थी। खिचड़ी कुम्हार को दी, कुम्हार ने घड़ा दिया, घड़ा में खजूर लिया ऐसे... आहाहा ! ऐसी बात नहीं है प्रभु ! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की बात है। आहाहा !

कहते हैं कि **बद्धस्पृष्ट आदि...** अर्थात् पाँचों भाव। **स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी...** आहाहा ! यह दया, दान, व्रत के विकल्प भी ऊपर तैरते हैं। आहाहा ! बाहर की चीज़ तो अन्तर में है ही नहीं। उसका त्याग-ग्रहण तो है नहीं, परन्तु रागादि (भाव) भी ऊपर तैरते हैं। आहाहा ! तो द्रव्य पर जहाँ दृष्टि होती है, तो उनका तो अभाव हो जाता है, दृष्टि में से। आहाहा ! दृष्टि में से उनका अभाव हो जाता है। पर्याय में भले हो। वह ज्ञान करने को रहे। परन्तु भाव जो है बद्धस्पृष्ट, अन्य-अन्य आदि उससे रहित जो भगवान को देखा और आत्मा का अनुभव हुआ, चैतन्य का आनन्द का स्वाद आया, तो स्पष्टरूप से—प्रत्यक्ष ज्ञान से आत्मा देखा और आनन्द का भी प्रत्यक्षरूप से स्वाद आया। आहाहा !

ऊपर तैरते होने पर भी वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते... पर्याय ऊपर रहने पर भी उसको द्रव्य में आधार मिलता नहीं—प्रतिष्ठा मिलती नहीं। आहाहा ! धन्नालालजी ! क्या कहते हैं ? दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसे भेद ऊपर तैरते हैं, वह विशेष को द्रव्य में आधार मिलता नहीं। आहाहा ! यह ४०वीं गाथा का सार है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : दृष्टान्त तो बराबर है....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त दृष्टान्त के कारण से है या दृष्टान्त सिद्धान्त के कारण से है ? आहाहा !

पहले हमारे पिटारा था न पिटारा ? पिटारा नहीं होता माल रखने का घर में ? पटारा को क्या कहते हैं ? बड़ी पेटी। पिटारा ऐसे रखते हैं न। शादी में भी आता है पिटारा। तो पिटारे पर गलेरी हो, उसमें थाली हो, थाली। अभेराई भरी हो। बालक को ऊपर बैठाये। पुरुष, स्त्री एकदम न चढ़ सके तो बालक को ऊपर बैठाये। तो बालक को ऊपर बैठाये

तो बालक को वहाँ बैठने के लिये बैठाया है या बालक को लम्बा हाथ करके थाली लेने को बैठाया है ? थाली समझे ? ऊपर बर्तन रखते हैं। पिटारा होता है, उसके ऊपर बर्तन रखते थे। सारी गेलेरी। हमारे तो घर में सब था न, वह हमने तो देखा है।

यहाँ तो दूसरा कहना है कि वहाँ मेहमान आया हो और पाँच-दस थाली चाहिए। घर में दस लोग हो तो दस थाली नीचे होती है। दूसरे दस मेहमान आये तो ऊपर से उतारनी हो, तो बालक को कहे पिटारे पर चढ़ने को। बालक को कहे चढ़ जा वहाँ। तो वहाँ बैठने को कहा है ? चढ़कर थाली उतार ले। ऐसे दृष्टान्त को दृष्टान्त तक रखना है ? आहाहा! दृष्टान्त को सिद्धान्त की ओर ले जाना है। समझ में आया ? हमने तो सारा अनुभव संसार का भी किया है। एक-एक बात में हम... नाटक में जाते थे... कहा न। नाटक में जाते थे तो अकेला सुनते नहीं थे। तुम्हारी पुस्तक लाओ। आप जो बोलोगे उसकी पुस्तक लाओ। तुम क्या बोलते हो, ऐसे समझे बिना हम नहीं देखेंगे।

मुमुक्षु : बारह आने की टिकिट, बारह आने की पुस्तक।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह आना की पुस्तक। टिकिट बारह आना की और पुस्तक बारह आने की। हमारे तो घर की दुकान थी तो माल लेने को जाते थे। छोटी उम्र की बात है १८-१९ वर्ष की। ७० साल पहले की बात है। आहाहा! आप क्या कहते हो आप धीरे-धीरे बोलो। हजारो लोग हैं। हमें ख्याल में आना चाहिए न कि क्या कहते हो। लाखों पुस्तक लाओ। आहाहा! तो नारद आता है पहले नारद। नाटक में नारद आता है। पुस्तक में ऐसा लिखा होता है। ब्रह्मासुत हूँ.... ब्रह्मा सुत हूँ नारद कहाऊँ, ज्यां जाऊँ त्यां कलह करावुं। नारद ब्रह्मासुत मैं नारद कहाऊँ, जहाँ क्लेश न हो वहाँ क्लेश कराऊँ। आहाहा!

मोक्ष पधारनेवाले रामचन्द्रजी महापुरुष थे। उनके लड़के के साथ लड़ाई हुई, लव और कुश। लव-कुश वहाँ नहीं जन्मे थे। सीताजी को ले गये थे। जन्म दूसरी जगह हुआ। तो लड़के को बात कही कि यह पिताजी हैं। मेरे पिताजी तो बाद में, पहले मेरे से जीतते हैं या नहीं ? मुझसे जीतते हैं कि नहीं पिताजी ? लड़ाई करूँगा पहले। नारद ने कहा है। सब हमने देखा है। नाटक में देखा है। तब निवृत्ति थी न। आहाहा! लव-कुश के साथ लड़ाई करते... करते... करते... इतनी लड़ाई हुई रामचन्द्रजी के साथ।

पहले लव-कुश को खबर नहीं थी कि यह हमारे पिता हैं। पीछे रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी का हार जाने का टाईम आ गया। अरे! कौन दूसरा वासुदेव पका? लक्ष्मण कहे कि मैं वासुदेव हूँ, रामचन्द्रजी महापुरुष बलदेव है। यह कौन है कि हमको भी हरा देते हैं? फिर नारद बीच में आ गया। नारद कहे, यह तुम्हारा लड़का है, तुम पिता हो। आहाहा! लड़का हथियार छोड़कर पिताजी के पैर में पड़ गया। पिताजी! मुझे खबर नहीं था कि आप मेरे पिताजी हो। ... जन्मे तो हमको खबर नहीं। हमारी लड़ाई नारद ने करवाई। नारद पीछे लड़ाई में ... हार गये रामचन्द्रजी। रामचन्द्रजी महापुरुष... पुरुषोत्तम पुरुष अन्तिम शरीर है, मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा!

वासुदेव लक्ष्मण तो नरक में जानेवाला है। उसको भी ऐसा हो गया कि यह कौन है? मेरी भी हार हो गयी और उसकी जीत? यह वासुदेव है या कौन है यह? नारद बीच में आ गया तो कहा कि यह आपका पुत्र है। यह सीताजी का लड़का है। परन्तु आपके गाँव में आना है तो पहले ऐसी परीक्षा करके जाना... तो जहाँ-तहाँ लिखा है कि उसमें वह लड़ाई करना, ऐसा करना। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! एक बार नाटक में... समयसार भी नाटक है या नहीं? समयसार को नाटक का रूप दिया है। आहाहा! जहाँ अन्तर में आनन्द का वेश लेकर परमात्मा प्रवेश करते हैं... आहाहा! मोक्ष भी एक वेश है। मोक्ष उसका कायमी स्वरूप नहीं, वेश है। पर्याय है न? संवर, निर्जरा भी एक वेश है। कायम की चीज़ नहीं। आहाहा! दृष्टि का जो विषय है, वह स्पष्टरूप से तिरता है, पर से भिन्न... दृष्टि के विषय में वह तो ऊपर तिरते हैं। अन्तर में है नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने पर रागादि दिखते हैं, परन्तु वह मेरे नहीं, जानने में आता है कि मेरे ज्ञान का ज्ञेय पररूप से ज्ञेय है, स्वरूप से ज्ञेय तो मैं ज्ञाता हूँ, वह स्वरूप से मेरा ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? यह इस गाथा में कहा है।

देखो! **ऊपर तैरते होने पर भी वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होता।** द्रव्य में प्रवेश नहीं। आहाहा! है? कलश है या नहीं? सेठ को मिला? यह तो कोई दूसरी प्रकार की बात है, प्रभु! आहाहा! यह श्लोक। **वास्तव में स्थिति को...** स्थिति अर्थात्

प्रतिष्ठा। समझ में आया? अनुभव '**अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्**' '**तरन्योडप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्**' पाठ है। दूसरे पद का अन्तिम शब्द कलश का। प्रतिष्ठा नहीं मिलती, ऊपर होने पर द्रव्य में प्रतिष्ठा नहीं मिलती। अन्दर में प्रवेश नहीं कर सकता। आहाहा! पर्यायमात्र द्रव्य से ऊपर तैरती है। आहाहा! तो रागादि की बात कहाँ और पर शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार मेरा कहाँ रह गया प्रभु? आहाहा! द्रव्य में पर्याय प्रवेश नहीं करती, पर्याय ऊपर तैरती है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु!

मुमुक्षु : भाव गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव गम्भीर है। यह गाथा।

और (४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज दो श्लोक कहते हैं)— अब टीकाकार दो श्लोक कहते हैं।

(अनुष्टुभ्)

नित्य शुद्धचिदानन्दसंपदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—जो नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** आहाहा! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव, शुद्ध पवित्र ज्ञानानन्द चिदानन्द ज्ञानरूपी सम्पदा है। यह सम्पदा है। धूल की सम्पदा, वह तो विपदा है। आहाहा! कहो। **चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** खान। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर में नित्य और शुद्ध... ऐसे चिदानन्द-ज्ञान और आनन्द दो मुख्य लेना है। ज्ञानानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है। खान में से निकालो इतना निकलेगा। उसमें ... नहीं निकलेगा। आहाहा!

भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यक् शुद्धनय का विषय है, वही आदरणीय है। वह आदरणीय चीज़ है कैसी? एक नित्य रहनेवाली है। नित्य तो परमाणु भी रहते हैं। परन्तु (यह) शुद्ध है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य शुद्ध है, पवित्रता का पिण्ड प्रभु अन्दर है। आहाहा! नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदा, ज्ञानानन्दरूपी अपनी सम्पदा, उससे (भरी) उत्कृष्ट खान है। आहाहा!

तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है... रागादि पर्याय है, वह अपद है, वह विपदा है। आहाहा! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम, वह विपदाओं का स्थान है, अत्यन्तरूप से अपद है। आहाहा! भगवान नित्यानन्द उत्कृष्ट चिदानन्दरूपी गुण की खान है, तो पुण्य और पाप है, वह विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है। वह तो विपदारूप से अपद है, अपना पद नहीं। आहाहा! ऐसी बात। बाद में लोग कहे कि सोनगढ़वाले का एकान्त है... एकान्त है... अरे भाई! बापू! तेरी चीज़ की महत्ता की खबर नहीं, तो तुझे व्यवहार दया, दान की महत्ता आती है। जिसकी महत्ता छोड़ना है, उसकी महत्ता आती है और जिसकी महत्ता करनी है, उसकी महत्ता आती नहीं। आहाहा!

अन्दर में प्रवेश नहीं ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति परिणाम, उसको तो यहाँ (कहा कि) विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है। वह तेरा स्थान नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरा धाम नहीं। यह तेरा धाम नहीं। चैतन्य का यह धाम नहीं। वह राग की आपदा का धाम है। आहाहा! ऐसी बात सुनने पर मनुष्य को एकान्त लगे। प्रभु! यह सम्यक् एकान्त की बात है। सम्यग्दर्शन इस तरह प्राप्त होता है। मैं चिदानन्दरूपी नित्य शुद्ध की खान हूँ, मेरी चीज़ में राग का प्रवेश नहीं। ओहोहो! राग भी मेरी चीज़ के ऊपर तैरता है। आहाहा! है सही। रागादि है सही परन्तु ऊपर तैरता है, अन्दर में प्रवेश नहीं करता। आहाहा!

ओझल होता है न ओझल? ओझल कहते हैं न? यह रानी... पर्दे के पीछे रानी कैसी होती होगी ऐसा लगे। तो एक बार हम वडिया गये थे। वडिया जूनागढ़ के पास में। रामजीभाई थे, नारणभाई थे, बहुत सारे थे। राजा स्वयं व्याख्यान में आये थे, दरबार। तो उसने कहा कि महाराज! हमारे घर पर रानी को दर्शन करता है। लोगों को तो ऐसा लगे कि रानी कैसी होगी! ओहोहो! पर्दे में रहे न? बाहर में रहे नहीं। महाराज! हमारे रसोईघर में ब्राह्मण का रसोईघर है। आपको निर्दोष आहार... हमारी रसोई भिन्न है। एक ब्राह्मण का रसोईघर है, वहाँ आप पधारो और हमारी रानी को दर्शन दो। तो लोगों को लगे कि रानी कैसी होगी? जहाँ अन्दर गये। यह बड़ा शरीर, रक्त नहीं,... रानी कैसी होगी? यह ऐसा नहीं है। राग से रहित पर्दे में भगवान विराजता है, यह (भगवान) ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

वडिया है जूनागढ़ के पास में। वडिया दरबार है। वहाँ हम गये थे। तो सब लोग आये न। दरबार व्याख्यान में आते थे। और दरबार इतना होशियार था कि दूसरे दरबार उनके पास राज कैसे करना, वह सीखने को आते थे। वह दरबार ऐसा था। भूल गये नाम। ९५ में। ९५ में राजकोट चौमासा था न? ९६ में। ९६ में वहाँ गये थे। जूनागढ़ का दर्शन करने। बाद में आते समय वहाँ ठहरे थे। तो वह राजा ऐसा था कि उसके पास सारे राजा, आसपास के राजकुमार सीखने को आते थे। व्याख्यान में सब आये। वह राजकुमार और राजा सब आये थे। ९६ की बात है। कितने वर्ष हुए? ३९।

अन्दर जहाँ गये तो रानी में कुछ ठिकाना नहीं। दुनिया को लगे कि रानी कैसी होगी? यहाँ कहते हैं कि राग से रहित, पर्दा से रहित भगवान अन्दर कैसा है, वह तो अलौकिक बात है। राग का पर्दा तोड़कर अन्दर में जा, आहाहा! बादशाह चैतन्य बादशाह का दर्शन होगा तुझे। आहाहा! ऐसी सम्पदा कहीं है नहीं। ऐसी सम्पदा की खान हो तुम प्रभु! आहाहा! उसकी महिमा न आये और बाहर की महिमा आये, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम की महिमा आती है, वह महिमा मिथ्यादृष्टि है। अपनी चीज़ की महिमा की खबर नहीं और यह पर की चीज़ की महिमा? आहाहा! यह कहते हैं यहाँ।

जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है। देखो! अत्यन्तरूप से। साधारण भी नहीं। वह पद भी नहीं। अपना पद ही नहीं, अपना स्वरूप ही नहीं। आहाहा! **(अर्थात् जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ राग का पर्दा तोड़कर मैं अन्तर में जाता हूँ तो मुझे तेरा अनुभव होता है। यह चीज़ है। वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? बाकी मान ले कि हम जैन में जन्मे हैं नौ तत्त्व की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र है तो हम समकिती हैं, वह कुछ है नहीं, भाई! आहाहा!

इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ। कैसे? आहाहा! कि **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! राग का नहीं। राग नहीं, वह तो पर है। आहाहा!

तीसरा श्लोक। ५७ है न?

(वसन्ततिलका)

यः सर्वकर्मविषभूरूहसंभवानि
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुंक्ते ऽधुना सहजचिन्मयमात्मतत्वं
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति संशयः कः ॥५७॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** वह तो विष के वृक्ष हैं। आहाहा! शुभकर्म और अशुभकर्म जड़, वह विषवृक्ष हैं। आहाहा! तीर्थंकर प्रकृति बँधी हो... आहाहा! समयसार में कहा है कि १४८ प्रकृति विषवृक्ष है। वह प्रकृति में तीर्थंकरगोत्र भी आ गया और आहारक (शरीर की) आहारक-आंगोपांग... मुनि को आहारक शरीर होता है न? भगवान को प्रश्न पूछने जाना हो... वह सब विष का वृक्ष है, प्रकृति विष का वृक्ष है। भगवान आत्मा अमृत का वृक्ष है। अमृत का चिन्तामणि महावृक्ष है। आहाहा!

रागादिभाव वह प्रकृति उसकी है। आहाहा! **सर्व कर्मरूपी...** ऐसे लिया है न? सर्व कर्म में कोई तीर्थंकर प्रकृति निकाल दी, ऐसा है नहीं। प्रकृति भले पड़ी हो, परन्तु वह तो जड़कर्म है। आहाहा! १४८ प्रकृति है, वह सब जड़ है। आहाहा! वह **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** विषवृक्ष से **उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण...** मेरे स्वरूप से विलक्षण अर्थात् विपरीत लक्षणवाले... पुण्य और पाप मेरे स्वरूप से विपरीत लक्षणवाले हैं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन की चीज़। उसको सम्यग्दर्शन का भान नहीं और उसको त्याग हो जाये। त्याग करो, पत्नी, बच्चे का त्याग किया, वह तो मिथ्यात्व है। पर का त्याग मैंने किया, वह तो मिथ्यात्वभाव है। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। वह तो भिन्न चीज़ है। कभी छुआ नहीं तो त्याग करना कहाँ आया? आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! दुनिया बाह्य त्याग को देखकर कहे कि त्यागी है... त्यागी है... धर्म का त्यागी है। वह आता है अन्दर। नियमसार में, भाई! आता है न? नियमसार में आता है। कोने में आता है।

स्वधर्मत्याग ऐसा मोह... आता है, इस ओर आता है। सब कहीं याद है? ऐसा है। इस तरफ है। स्वधर्म का त्याग है ऐसा मोह... आहाहा! कहीं पर है तो सही। है?

मुमुक्षु : २५७ पृष्ठ। २१०वाँ कलश।

पूज्य गुरुदेवश्री : २५७ पृष्ठ न? २५७। कौन सा कलश कहा?

मुमुक्षु : २१०।

पूज्य गुरुदेवश्री : २१०। बराबर। २१० श्लोक। देखो यहाँ **स्वधर्म-त्यागरूप...** है? त्याग किया उसने। क्या त्याग किया? स्वधर्म का त्याग किया। **स्वधर्म-त्यागरूप (मोहरूप)...** है? बाह्य के त्याग में तो स्वधर्म के त्याग(रूप) मोह है। गजब बातें, बापू! स्वधर्म... है? **स्वधर्म-त्यागरूप (मोहरूप) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है और जो उस अघ सेना की ध्वजा को हर लेता है।** आहाहा! मोह की व्याख्या कही कि स्वधर्म के त्यागरूप मोह। आहाहा! पर का मैं त्याग करूँ, पर को छोड़ूँ—वह तो मोहभाव है। अरे! राग का त्याग करना, वह भी नाममात्र आत्मा में है। ३४ गाथा में आता है, समयसार। राग का त्याग भी नाममात्र आत्मा में है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में है नहीं। क्योंकि आत्मा रागरूप हुआ ही नहीं। ऐसी स्वभाव की दृष्टि और अनुभव हुआ तो राग का त्याग उसने किया, ऐसा नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में है नहीं। आहाहा! लोग बाहर के त्याग में स्त्री, पुत्र छोड़े, कपड़े बदल डाले, एक कपड़ा पहने तो हो गया त्यागी।

यहाँ ऐसा कहते हैं देखो। पद्मप्रभमलधारिदेव का यह श्लोक है, हों! मुनिराज का श्लोक है। आहाहा! **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत में नित्य जयवन्त है कि जिसने प्रगट हुए सहज तेजःपुंज द्वारा स्वधर्म-त्यागरूप (मोहरूप) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** आहाहा! स्वधर्म का त्याग ऐसा जो मोह, उसको दूर किया है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अनन्त-अनन्त काल का अन्त लाकर भव का अन्त लाने की बात है। यहाँ भव का अन्त न हुआ तो नरक और निगोद मिलेगा, बापू! आहाहा! अरबोंपति मरकर जाये पशु में गिलहरी... खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी। उसमें जाये। छिपकली होती है, उसमें जन्मे। आहाहा! बापू!

अनन्त बार ऐसा भव किये हैं, भाई! तेरी चीज़ की खबर नहीं और तिर्यंचगति में जाता है, क्यों? गोम्मटसार में लिखा है कि क्यों? कि स्वरूप से उसने विपरीतता टेढाई बहुत की। टेढ़ाई—विपरीतता बहुत की है। तो विपरीतता के कारण उसका शरीर भी टेढ़ा हो गया तिर्यंचरूप। मनुष्य ऐसा सीधा हुआ तो तिर्यंच में हाथी, घोड़ा, गिलहरी का टेढ़ा शरीर है। टेढ़ा शरीर हो गया। टेढ़ाई बहुत की तो टेढ़ा शरीर हो गया। आत्मा में (-पर्याय में) तो टेढाई है ही। आहाहा! ऐसी बात है भाई यहाँ। कौन-सा अधिकार है? समाधि अधिकार है। समाधि अधिकार में यह गाथा है।

यहाँ यह कहा, **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है (अर्थात् जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं है)...** भगवान शुद्ध चिदानन्द मूर्ति में राग की आपदा बिल्कुल नहीं। विपदा उसमें है ही नहीं। राग है वह विपदा है, आकुलता है, दुःख है। आहाहा! अन्दर आत्मा में बिल्कुल है नहीं। आहाहा! **इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** अब **(शुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,...** आहाहा! शुभ-अशुभ कर्म जो हैं, वह विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले **निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर...** विषवृक्ष जो जहर पुण्य-पाप का परमाणु पड़ा है, उसके कारण से यह लक्ष्मी, पैसा, मकान करोड़ों का मिले, वह तो विषवृक्ष का फल है। विष का यह फल है। समझ में आया? आहाहा! यह तो सन्तों ऐसा कहे। लोगों को बैठे या नहीं बैठे।

अरबोंपति होता है, तो कहते हैं कि यह तो विषवृक्ष का फल जहर है। कहो, पोपटभाई! पोपटभाई के साले थे न? दो अरब चालीस करोड़। गोवा... गोवा... गुजर गये। पैसे हैं अभी। लड़के हैं। एक लड़के ने ख्रिस्ती के साथ शादी की है। पैसे बहुत हैं। दो अरब चालीस करोड़, ढाई अरब और बहुत करोड़ों की आमदनी एक वर्ष की। उसका साला है। वह तो गुजर गये। यहाँ बैठे हैं न उसके साले। वह गुजर गया। लड़का है। ढाई अरब पैसा—२५० करोड़। धूल में क्या है? भाई! आहाहा!

वह कहते हैं कि कर्मरूपी विषवृक्ष का फल है। वह निजरूप से विलक्षण है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान उससे (विलक्षण) लक्ष्मी, स्त्री आदि अनुकूल, लड़का अनुकूल, इज्जत अनुकूल, वह जहर का फल है। आहाहा! उसकी मिठास छूटे... आहाहा!

तब प्रभु की मिठास आये। बाहर की मिठास छूटे अन्दर से... बिल्कुल विष का वृक्ष का विषफल है। अरबों रुपया हो और लड़के भी १०-१२ हो, एक-एक लड़का पाँच-पाँच दस-दस लाख की उपजवाला हो, सब विष का वृक्ष है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सबके लिये है। है या नहीं अन्दर? आहाहा!

निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव इसी समय... इसी समय में **सहज चैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,...** राग को नहीं भोगता, पर को नहीं भोगता है, तो अपने को भोगता है। **वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है— उसमें क्या संशय है।** अपने आत्मा का अनुभव करता है, वह अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करता है, उसमें संशय क्या है?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक - २७-०७-१९७९
श्लोक-५६-५७, गाथा-४१, प्रवचन-७

नियमसार। ५६वाँ कलश लो। पृष्ठ-८२ है। ८२ पृष्ठ, श्लोक-५६। **जगत मोहरहित होकर...** मुद्दे की रकम है, यह तो प्रभु!

मुमुक्षु : उसके बाद का श्लोक।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो एक पंक्ति बाकी रह गयी। एक पंक्ति बाकी है। **जगत मोहरहित होकर सर्व...**

मुमुक्षु : उसके नीचे का। उसके बाद का।

पूज्य गुरुदेवश्री : नीचे का? ठीक। ५६ का नहीं। वह तो ५७ कहते हैं। ५७। आहाहा!

(अनुष्टुभ्)

नित्य शुद्धचिदानन्दसंपदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

श्लोकार्थः—जो नित्य-शुद्ध... आहाहा! भगवान अन्दर आत्मा नित्य-शुद्ध प्रत्यक्ष अनन्त गुण की सम्पदा से विराजमान है। उसका **चिदानन्दरूपी सम्पदा...** आहाहा! वस्तु की चिदानन्द ज्ञानानन्द-ज्ञान और ज्ञान का आनन्द, यह उसकी सम्पदा है। आहाहा! दुनिया की सम्पदा पैसे, महल और मकान, वह सब धूल है, आपदा का निमित्त है। आपदा नहीं। आपदा का निमित्त है। दूसरी चीज़ आपदा का कारण... यह तो अन्तर्मुख सब... चिदानन्दरूपी सम्पदा उसकी उत्कृष्ट खान है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन होने से... चौथे गुणस्थान पर अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह बात यहाँ कहते हैं। **शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान...** उसके ऊपर जहाँ नजर गयी, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण जो सर्वांग भरा हुआ है, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का अंश वेदन आता है। चौथे गुणस्थान में समकित में। यह तो सुबह में कहा था, सर्वगुणांश ते समकित। जितने गुण हैं, अनन्त अनन्त वह सब

द्रव्य दृष्टि करते, अनुभव करते द्रव्य में जितनी शक्ति है-गुण है, वह सब गुण एक समय की पर्याय में व्यक्त-प्रगट होते हैं। सर्व गुण व्यक्त-प्रगट (होते हैं) समकित में। समकित को साधारण चीज़ लोगों ने मान ली है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा,... श्रद्धा ऐसा मानकर अनादि से भटकता है।

यह आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप है, वह **विपदाओं का अत्यन्तरूप से...** दूसरी चीज़ आत्मा के सिवा... **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है।** दूसरे पद है, परन्तु यह अपद है। जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं है आत्मा में। आहाहा! राग का कण भी नहीं। चौथे गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है। तो कहते हैं कि आपदा का अंश नहीं (और) अनुभव में आनन्द आता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द... वह सर्व गुण के अंश प्रगट... सम्यग्दर्शन होने से जितनी संख्या में गुण हैं, सब गुण का अंश व्यक्त-प्रगट पर्याय में अनुभव में आता है। आहाहा! कठिन व्याख्या, भाई! अनन्त काल से यह भी नौवें ग्रैवेयक अनन्त क्रियाकाण्ड करके, सम्यग्दर्शन बिना क्रियाकाण्ड कर-करके मर गया अनन्त बार। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। आहाहा! परन्तु... यह भाषा थोड़ी गुजराती हो गयी।

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूपी... आहाहा! ऐसी **सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** (सम्पदा) समाप्त न हो, ऐसी खान है। कितना भी केवलज्ञान और केवल आनन्द, अन्तर में से अनन्त आनन्द निकाले सादि-अनन्त, तो भी अनन्त गुणा आनन्द वहाँ रहता है। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अनुभव सम्यग्दर्शन में होता है। तब अनन्त आनन्द में से अतीन्द्रिय आनन्द का नमूना वेदन में आता है। तब वेदन में ख्याल आये कि यह चीज़ सारी अतीन्द्रिय आनन्द से भरी पड़ी है। आहाहा! सूक्ष्म बात है थोड़ी।

और **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है।** आहाहा! प्रभु! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प वह तो कथनमात्र व्यवहाररत्नत्रय है। वह श्लोक आ गया है पहले उसमें कि व्यवहाररत्नत्रय तो कथनमात्र है, कोई वस्तु है नहीं। वह तो अनन्त बार किया और उससे आत्मा का लाभ किंचित होता है, ऐसा नहीं। वह श्लोक है इसमें। कहाँ पर है वह याद नहीं।

मुमुक्षु : १७२ पृष्ठ, १२१ कलश।

पूज्य गुरुदेवश्री : १७२ (पृष्ठ) इसमें? हाँ, वही। **मोक्ष का कुछ कथनमात्र कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा है...** आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि। १७२ पृष्ठ है। बोल (-कलश) १२१ है। १२१। **मोक्ष का कुछ कथनमात्र...** कुछ कथनमात्र व्यवहार तो है। आहाहा! **कारण है उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी) भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** आहाहा! १७२ पृष्ठ है।

भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भव-भव में (-अनेक भवों में)... आहाहा! **कि जो सर्वदा एक ज्ञान है, उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को) जीव ने सुना-आचरा नहीं है...** सुना भी नहीं और आचरण भी किया नहीं। आहाहा! यहाँ तो सुना ही नहीं, ऐसा कहा। सुना तो इसे कहिए। ४ गाथा का अर्थ है न? श्रुत परिचित अनुभूता... ४ गाथा। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।**' सारी दुनिया ने राग और काम-इच्छा का अनुभव किया है। परन्तु वह सब '**एयत्त-स्सुवलंभो...**' पर से भिन्न अपने से एकत्व '**णवरि ण सुलहो..**' यह सुलभ नहीं है। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भरा हुआ प्रभु है, एक बार भी ऐसा स्वाद आया, उस स्वाद के आगे दुनिया सारी आपदा लगती है। आहाहा! अपनी सम्पदा के आगे इन्द्र के इन्द्रासन भी आपदा लगती है। आहाहा! ऐसे भगवान चैतन्य चमत्कार वस्तु... कहते हैं कि व्यवहार तो अनन्त बार सुना। सुना है? और आचरण किया। आचरण भी किया अनन्त बार व्यवहाररत्नत्रय। परन्तु अरे रे! खेद है कि **जो सदा एक ज्ञानस्वरूप...** ज्ञायकस्वरूप है **ऐसे परमात्मतत्त्व को जीव ने सुना...** नहीं। सुना उसको कहते हैं कि सुनकर अन्दर में अनुभव करे तो सुना कहे। आहाहा! सुना नहीं, आचरा नहीं।

ज्ञानस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उसको सुना भी नहीं। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।**' कामभोग अर्थात् केवल विषय नहीं। इच्छा कर्ता और इच्छा कर्म भोग, कर्ता और भोक्ता की बात तो अनन्त बार सुनी और कही है। आहाहा! परन्तु अन्दर राग के विकल्प से भिन्न, रागमात्र का कर्तव्य

जिसमें नहीं ऐसा ज्ञानमात्र आत्मा, उसको कभी सुना नहीं, आचरण किया नहीं। आचरण किया नहीं है... नहीं है... ऐसे दो बार लिया है। पाठ में है। 'न च... न च' दो बार। आहाहा! अन्दर आनन्दकन्द प्रभु विकल्पातीत है, विकल्प का भी स्पर्श नहीं जिसको, ऐसी अखण्ड चीज़ को कभी तूने सुना नहीं। आहाहा! इसलिए आचरण नहीं किया। सुना नहीं। दो लिया न? सुना नहीं और आचरण किया नहीं। वह ४ गाथा में लिया है। '**सुदपरिचिदाणुभूदा**' राग करना, वह बात सुनी। वह परिचय में आया। अनुभव में आया। '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा। एयत्तस्सुवलंभो**' राग और विकार के भाव से भिन्न भगवान आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय, उसको कभी सुना नहीं। ४ गाथा में कहा है।

ग्यारह अंग पढ़ लिया है, नव पूर्व का ज्ञान भी हुआ। दस पूर्व नहीं। दस पूर्व का ज्ञान समकिती को होता है। समझे? दस पूर्व का ज्ञान सम्यक् अनुभवी को होता है। सम्यक् सिवाय, मिथ्यात्व में नव पूर्व और विभंगज्ञान ही होता है, उसे सात समुद्र, सात द्वीप दिखते हैं। आहाहा! तो भी वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ग्यारह अंग और नव पूर्व का ज्ञान और विभंगज्ञान भी अनन्त बार हो गया। विभंगज्ञान—जो विभंग में सात द्वीप और सात समुद्र देखे। आहाहा! फिर भी वह अज्ञान है। स्व आत्मा अन्दर नहीं आया, अपनी सम्पदा अन्तर में नहीं आयी, उसके बिना सब मिथ्यात्व, आहाहा! अजीव और जड़ है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, सदा ज्ञानस्वरूप है, ऐसे परमात्मा को जीव ने सुना-आचरा नहीं। नहीं है... नहीं है। ऐसा कहा। आहाहा! आचार्यों ने भी समझने के लिये, भाई! प्रभु! तूने तेरे घर की बात सुनी नहीं... सुनी नहीं... आहाहा! ऐसी तो करुणा से बात करते हैं। भगवन्त! तू कैसा है अन्दर में चीज़? वह बात तूने सुनी नहीं, कभी आचरण में तो ली नहीं, परन्तु सुनी नहीं। आहाहा!

अब?

मुमुक्षु : ८२ पृष्ठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ८२ पृष्ठ क्यों?

मुमुक्षु : ४० गाथा चलती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह शुद्धभाव अधिकार। ८२। क्या आया?

मुमुक्षु : ५६वाँ चलता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह।

नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है... यह अनेकान्त किया। अनन्त सम्पदाओं की खान और विपदाओं की गन्ध नहीं, (ऐसा) अपद। उसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है—वह अनेकान्त नहीं है। वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। निश्चय से स्व के अनुभव से ही होता है आत्मकल्याण, व्यवहार से होता नहीं—उसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी होता है, व्यवहार से भी होता, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन काम है। व्यवहार में तो सूझबूझ पड़े क्योंकि अनादि काल से परिचय है। आहाहा! अनादि काल का अभ्यास है, अशुभ का अभ्यास और शुभ का अभ्यास है। अनन्त काल में शुभ का अभ्यास किया तो वह आसान लगे और शुभाशुभरहित आत्मा... आहाहा!

जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं। **ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! मुनिराज कहते हैं। मुनि किसको कहिये? आहाहा! जिसको अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद छठवें-सातवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आये। आहाहा! अप्रमतदशा, अतीन्द्रिय आनन्द का निर्विकल्प स्वाद और छठवें गुणस्थान आये तो विकल्प है, (लीनता) है, इतना आनन्द तो है, परन्तु विकल्प आया उतना दुःख भी है। आहाहा! सातवें में विकल्प का दुःख गया, आनन्द की वृद्धि हुई, तब यह सातवाँ गुणस्थान हुआ, उसका नाम मुनिपना-साधुपना है। आहाहा! क्रियाकाण्ड पंच महाव्रत यह कोई साधुपना नहीं है। ऐसा तो अनन्त बार मुनिव्रत ऐसे व्रत। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार...' आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जिस पद में विपदा नहीं है, जिस पद में केवल आनन्द की सम्पदा है, इस पद का अनुभव करता हूँ। आहाहा! करता हूँ, ऐसा कहा। पंचम काल के मुनि, पंचम काल के (कहते हैं कि) मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता हूँ। आहाहा! यह चीज़ है। वह ५६ हुआ। पीछे। ५७।

(वसन्ततिलका)

यः सर्वकर्मविषभूरूहसंभवानि
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुंक्तेऽधुना सहजचिन्मयमात्मतत्वं
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति संशयः कः ॥५७॥

श्लोकार्थः—(शुभ तथा अशुभ) सर्व कर्मरूपी... चाहे तो शुभनामकर्म का यशोकीर्ति बँधे, तीर्थंकर(गोत्र) बँधे, आहारक शरीर बँधे, ऐसे भाव हो, परन्तु वह भाव शुभराग है, कर्म है। आहाहा! **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों...** आहाहा! १४८ प्रकृति विष के वृक्ष। गजब बात है, प्रभु! एक ओर अमृत का सागर, भगवान अमृत का सागर और १४८ प्रकृति विष के वृक्ष। आहाहा! वहाँ तो तीर्थंकर प्रकृति को भी विष वृक्ष कहा। १४८ प्रकृति सबको विष वृक्ष कहा। गजब है न! तीर्थंकर प्रकृति को भी विषवृक्ष में डाल दिया। वह तो जड़ है और कारण तो शुभभाव था। वह शुभभाव तो विषकुंभ है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभ-अशुभ के फल को छोड़ने की बात कही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शुभाशुभरहित।

मुमुक्षु : शुभाशुभ तो नहीं कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर शुद्ध में आना, वह वस्तु है। आहाहा! छोड़ना, वह भी अपेक्षा से कहना है। बाकी शुद्ध चैतन्य आनन्दस्वरूप में रमे, तो शुभाशुभभाव उत्पन्न होता नहीं है, उसको शुभाशुभ त्याग किया, ऐसा कहने में आता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! शुभाशुभभाव छोड़ना, वह भी व्यवहार से कथन है। छोड़े क्या? यह शुभ-अशुभ तो पर्याय में है। पर्याय में दृष्टि कर के छोड़ने जाये तो दृष्टि मिथ्या हो जाये। आहाहा!

शुभाशुभभाव... त्रिकाली चिदानन्द की दृष्टि में शुद्ध का अनुभव होता है तो वह उत्पन्न होता नहीं। उसको शुभाशुभ नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं, **(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी...** कोई बाकी नहीं १४८ प्रकृति में।

आहाहा! **विषवृक्षों से...** विष के वृक्ष। ओहोहो! विषवृक्ष में फल क्या आये? फल तो विष है। विष के वृक्ष के फल में विष है। अमृत के वृक्ष में फल अमृत हैं। आहाहा! भाषा थोड़ी है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है।

अभी तो प्रवृत्ति में सब कुछ मान लिया है। कुछ प्रवृत्ति करे, त्याग करे, बाह्य दृष्टि भले अन्दर मिथ्यात्व हो, परन्तु बाह्य त्याग उसकी महिमा हो गयी है। वस्तु रह गयी अन्दर सारी। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर निर्विकल्प परमात्मस्वरूप उसके वेदन में जो आनन्द आता है, इसको यहाँ चौथा गुणस्थान समकित कहने में आता है। आहाहा! उससे विशेष आनन्द, पंचम गुणस्थान में प्रतिमाधारी को विशेष आनन्द आता है। क्योंकि अन्दर स्थिर हुआ थोड़ा। मुनि को इससे विशेष आनन्द आता है। पाँचवीं गाथा में कहा है, प्रचुर स्वसंवेदन। कुन्दकुन्दाचार्य कहे कि मुझे प्रचुर स्वसंवेदन है। समकिती को प्रचुर स्वसंवेदन नहीं।

प्रचुर स्वसंवेदन... आत्मा के आनन्द का प्रचुर अर्थात् बहुत अनुभव-बहुत अनुभव चौथे-पाँचवें में इतना अनुभव नहीं होता। चौथे-पाँचवें में तो प्रचुर नहीं है, अल्प-अल्प आनन्द का अनुभव होता है। छठवें-सातवें... कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैं प्रचुर स्वसंवेदन से कहता हूँ। समयसार प्रचुर स्वसंवेदन से कहता हूँ। आहाहा! उससे समयसार कहा। ऊपर से सुनकर ऐसा नहीं। सुना है, परन्तु कहता हूँ... प्रचुर आनन्द के वेदन की भूमिका में विकल्प आया है, उससे समयसार बनाता हूँ। आहाहा!

सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर... आहाहा! प्रकृति का फल चाहे तो यशोकीर्ति हो, उसका फल दुनिया में यश मिले। प्रभु! यह विष है, छोड़ दे उसको। आहाहा! यशोकीर्ति..., उसकी इज्जत बहुत जम जाये बाहर में। धर्म-बर्म हो नहीं। आहाहा! कीर्ति की लालच में आ जाये। यशोकीर्ति प्रकृति है। अभव्य को भी यशोकीर्ति प्रकृति होती है। यह यहाँ कहते हैं, विषवृक्ष के फल हैं। बाहर की आबरू, कीर्ति। ओहोहो! पैसे... अरबोंपति पैसा। आहाहा!

गये थे न वहाँ अफ्रीका में। १५ तो अरबोंपति हैं, अरबोंपति... छह करोड़। और ४५० तो करोड़पति हैं।

मुमुक्षु : सुखी बहुत हैं, कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी हैं सब।

मुमुक्षु : पर के कारण से कोई दु:खी होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी... वह दु:ख का निमित्त है, इसलिए दु:खी है। कोई लक्ष्मी से दु:खी नहीं। परवस्तु में दु:ख नहीं। जिसमें सुख है, उसकी उल्टी अवस्था में दु:ख है। कोई पुद्गल में सुख है नहीं। आत्मा में आनन्द है, उसकी उल्टी अवस्था में—अपनी अवस्था में दु:ख है। वह सब तो दु:ख का निमित्त है। निमित्त करता नहीं कुछ। आहाहा! बाहर के ठाठ दिखे बँगला, मकान... आहाहा! जिस मकान में हम ठहरे थे नैरोबी। १५ लाख का मकान था। १५ लाख का मकान। पैसा करोड़ोंपति बड़े। २५-२५, ३०-४० लाख का कपड़ा। उस कपड़ा... करे। खुद कुछ नहीं करे। खुद तो साधारण है। बुद्धि भी साधारण और देखने में भी साधारण। परन्तु पूर्व के पुण्य को लेकर धूल दिखे। परन्तु वह तो दु:ख है। दु:ख का निमित्त है।

मुमुक्षु : आपके लिये तो नयी मोटर ली थी उसने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ली उसमें क्या करना? २० लाख की मोटर ली वहाँ मुम्बई। २० लाख। गाँव में से प्लेन में जाना था मुम्बई। अपने हैं न चन्दुभाई के भाई पूनमचन्द। उसके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। पाँच-छह करोड़। तो उसका बेटा बाहर परदेश में से २० लाख की मोटर लाया था। गाँव में से प्लेन में जाना था तो उस मोटर में बैठे थे। कहा, इस मोटर की कीमत कितनी है? ऐसी मोटर की कीमत २० लाख। एक मोटर की २० लाख। अरे! हैरान हो जायेगा, कहा। २० लाख की। तब दूसरे ने कहा कि स्वीट्जरलैण्ड में ५० लाख की है एक। तो तीसरे ने कहा ईशु ख्रिस्ती के गुरु... क्या कहते हैं उसको? पोप। पोप के पास पाँच करोड़ की मोटर है। पाँच करोड़ की मोटर है। हीरा-मानेक जड़ित हो। धूल में क्या है?

यह कहते हैं कि पूर्व के जो फल हैं ऐसे फल को छोड़कर... आहाहा! चाहे तो करोड़ों, एक समय में करोड़ों रुपये आता हो तो उसमें तुझे क्या आया? तेरी सम्पदा आनन्द है। आनन्द में से कुछ न आया तो आया क्या? तुझे हुआ क्या? दु:खी है सेठिया लोग। हुकमचन्दजी ने तो ... कर डाला है। पैसे से पैसा मिले। परन्तु पैसा वह पाप है।

लिखा है न? पैसेवाले पापी हैं। उसका दस धर्म (पुस्तक में) है। ऐसे कहे पैसा मिलता है पुण्य के फल से। भगवान चौबीस प्रकार के परिग्रह करते हैं। प्रभु चौबीस प्रकार के परिग्रह करते हैं। १४ अभ्यन्तर, १० बाह्य। तो १० बाह्य में यह लक्ष्मी आती है। खेत, दास, दासी (आदि) सब। आहाहा!

पुण्य का फल पाप। पाप का स्वामी पापी। आहाहा! गजब बात है। २४ प्रकार के परिग्रह हैं न? १४ अन्तरंग और १० बाह्य—२४ प्रकार के परिग्रह हैं। यद्यपि बाह्य का परिग्रह निमित्त है, उसको परिग्रह कहने में आता है शास्त्र में। २४ प्रकार के परिग्रह कहे हैं, उसमें यह बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि जो पूर्व के वृक्ष डाले थे, विषवृक्ष सब... **विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर...** आहाहा! यह मेरे पुण्य फला है, मेरा बेटा अच्छा हुआ, पैसा करोड़ हुए, मैं सुखी हूँ। रहने दो। प्रभु! तू दुःखी है। तेरे आनन्द के अभाव में तू दुःखी है। आहाहा! सुख की गन्ध नहीं। सुख की गन्ध तो समकिती को ही अन्दर से आती है। आहाहा! पद्मचन्दजी! क्या यह सब आप पैसेवाले को सुखी कहते हैं। आहाहा! सुख तो यहाँ है।

फलों को छोड़कर जो जीव इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है... देखो! पूर्व के १४८ प्रकृति वह विष के वृक्ष उसका फल छोड़कर, आत्मतत्त्व **इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को...** स्वाभाविक आत्मतत्त्व को... है? भोगता है। उसको अनुभवना। आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है। बाकी समय तो चला जायेगा, भाई!

मुमुक्षु : आचार्य शुभ कार्य को छोड़ने की बात कर रहे हैं और स्वयं कर रहे हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आता है, वह हेय है। विष का फल जानते हैं। अपने से नहीं। अन्तिम कलश में आया। अन्तिम कलश में आया है सबमें। समयसार, प्रवचनसार,... इस शब्द से टीका बनी हैं, मैंने बनायी नहीं। और शब्द से तुमको ज्ञान होता है, ऐसे मोह से न नाचो, प्रभु! ऐसा कहा है। ऐसे मोह से न नाचो कि शब्दों से तुझे ज्ञान होता है। आहाहा! शब्द भिन्न चीज़ है, ज्ञान भिन्न चीज़ है। ज्ञान की पर्याय शब्द से होती है, ऐसे मोह से न नाचो। आहाहा! मैं तो आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूप

में गुप्त हूँ। वाणी आदि निकलती है, यह सब जड़ की पर्याय में होनेवाली दशा होती है। आत्मा से कुछ बाहर में होता नहीं। आहाहा! गजब बात है। यह यहाँ कहा न।

इसी समय... किसी समय? पूर्व के शुभ के विष के फल। आहाहा! उसको छोड़कर, चक्रवर्ती का राज भी विष का फल है, उसको भी छोड़कर सहजचैतन्यमय... वह चीज़ सहज नहीं है। वह तो कोई प्रकृति का निमित्त है और आनेवाली चीज़ उपादान अपने से आती है। पैसा भी आता है वह पुण्य से आता है, ऐसा कहने में (पुण्य) निमित्त है। पूर्व का पुण्य वह निमित्त है। वह पुण्य है, वह पैसे लाता नहीं। परन्तु वह पैसा आनेवाला था, उसमें वह निमित्त था। निमित्त ने लाया नहीं। परमाणु वहाँ आनेवाला था। आहाहा! उसका फल छोड़कर... आहाहा! **इसी समय...** क्या कहते हैं? इसी काल में-अभी। आहाहा!

पाँचवीं गाथा में कहा न? '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाणेज्ज पमाणं**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि '**तं एयत्तविहत्तं**' पर से विभक्त, और स्व से पूर्ण ऐसी बात करूँगा। ऐसी बात पहले कही। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।**' अपने वैभव से कहूँगा। फिर लिया कि '**जदि दाणेज्ज**' यदि दिखाऊँ, क्योंकि वह तो भाषा है। जो भाषा आयी उसको प्रमाणकरना। प्रमाण करना अर्थात् अनुीाव करना। पाँचवीं गाथा में है। आहाहा! उत्कृष्ट बात है भाई! दिगम्बर मुनि की। जगत में कही है नहीं, ऐसी वाणी दिगम्बर मुनि की। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य पंचम आरा के श्रोता को कहते हैं कि मैं जो कदाचित बात करूँ... कहने की वृत्ति उठी है, और उसमें जो भाषा हुई तो तुम भी अनुभव करना। '**जदि दाणेज्ज पमाणं**' प्रमाण अर्थात् अनुभव। आहाहा! यह पाँचवीं गाथा में है। '**जदि दाणेज्ज पमाणं**' आहाहा! '**चुक्केज्ज छलं ण धेत्त्वं**' कोई शब्द में अन्तर पड़े विभक्ति आदि। यह मेरा लक्ष्य नहीं। मेरा लक्ष्य तो अनुभव के ऊपर है। इसलिए विभक्ति आदि शब्द में तुझे अन्तर ख्याल में आये, तुझे ज्ञान हो तो उसके ऊपर अटकना नहीं—वहाँ रुकना नहीं। अपना अनुभव कैसे हो? उसके ऊपर आ जाना। आहाहा! ऐसी बात है, भाई भगवान की। लोगों को कठिन लगे। परन्तु प्रभु! करना तो यह है।

अरे! अनन्त काल से बहुत किया। चमड़ी उतारकर नमक डाले तो क्रोध नहीं

किया, प्रभु! ऐसी क्षमा अनन्त बार की है। यह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! दूल्हे बिना की बारात... वर को क्या कहते हैं? दूल्हा नहीं और बारात। ऐसे आत्मा का सम्यग्दर्शन अनुभव नहीं और सब बारात जोड़ दी। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। आहाहा! भोगता। **सहज चैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है, वह जीव कल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है...** आहाहा! अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है तो वहाँ क्रमबद्ध कहाँ रहा? अल्प काल... '**अचिरात**' पाठ है। अल्प काल में। तो उसमें क्रमबद्ध कहा रहा? ऐसा कोई कहे। परन्तु इसका अर्थ कि यह क्रमबद्ध ही है। ऐसा अनुभव करे, उसके क्रम में अल्प काल में केवलज्ञान आयेगा। ऐसा उसका क्रम है। समझ में आया?

शब्द तो ऐसा है। '**अचिरात**' है पाठ में। देखो! '**मुक्तिमचिरादिति**' अल्प काल में... अल्प काल में क्रम कहाँ रहा आपका? क्रम पहले रहा, बाद में यह बात रही। यह क्रम में ऐसे आनेवाला ही था। जिसने आत्मा का अनुभव किया, उसको अल्प काल में केवलज्ञान क्रम में आनेवाला ही था। आहाहा! क्या करे? किसको कहे? मार्ग कोई दूसरा है। मार्ग की प्रणालिका पलट डाली सब। क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में सब कर डाला है। अन्तर का अनुभव और अन्तर में राम को रमताराम करना, यह बात मूल है, वह बात रह गई। आहाहा!

इसमें क्या संशय है? क्या कहते हैं? कि जो जीव विषवृक्ष के फल को १४८ फल को छोड़कर जीव चैतन्यमय को भोगता होता है। भोक्ता। तो वह जीव अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है। उसमें क्या संशय है? उसमें सन्देह क्या है? अल्प काल में मुक्ति पाता है। आहाहा! ऐसा प्रवचनसार... परमात्मप्रकाश में तो ऐसा लिया है। वरना समकिती तो अभी आगे न जाये तो ज्यादा भव भी करे। १५ भव करे, इससे ज्यादा करे, ऐसा पाठ हैं।

परन्तु परमात्मप्रकाश में ऐसा लिया है, यह पंचम काल देव का अभाव— परमात्मा का अभाव है, उसमें जो कोई प्राणी सम्यग्दर्शन पाता है, वह एक-दो भव में खलास (-भव का अन्त) करता है। उसके लिये तृतीय भव... आया था पाठ में। ...कलश है न? उसकी संस्कृत टीका अध्यात्मतरंगिणी उसमें है। तृतीय भव आदि है। आहाहा! पंचम काल है, इसलिए मोक्ष की शुरुआत न हो, ऐसा नहीं है। आहाहा!

उसको अपना बड़प्पन बैठता नहीं। अपनी महत्ता—महिमा—बढ़ाई—अधिकाई—अलौकिकता उसकी कीमत नहीं आती और बाहर की कीमत आती है। थोड़ा बाहर किया, छोड़ा, तो हम कुछ त्यागी हुए।

वास्तव में तो कठिन लगे, प्रभु! बाहर की वस्तु का त्याग करता हूँ और ग्रहण करता हूँ, वह मिथ्यात्व है। आहाहा! क्यों? कि आत्मा में अनन्त गुण हैं, उसमें एक गुण ऐसा है। त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति। एक शक्ति ऐसी है, उसका सब गुण में रूप है। सब गुण में उसका रूप है। आहाहा! गजब बात है। आचार्यों ने गजब किया है। दिगम्बर आचार्य ने तो एक पृष्ठ भरा है, एक ही पृष्ठ। गजब बात है। १४८ प्रकृति विषवृक्ष को छोड़कर प्रभु तेरे स्वरूप ही सम्पदा को सम्हाल। आहाहा! हम तो कहते हैं कि पंचम काल है, इसलिए तुझे ज्यादा भव करना पड़ेगा, (ऐसा है नहीं)। समकिती को एक-दो भव में मोक्ष जाये, ऐसा कोई नियम नहीं है। किसी को १५ भी हो और किसी को विशेष भी हों। परन्तु यह पंचम काल और ऐसा दग्धकाल कि जहाँ परमातमा के विरह पड़े, कोई देव आये नहीं और इस भव में जो कोई सम्यग्दर्शन पाये तो वह एक-दो भव में मोक्ष जायेगा। आहाहा! परमात्मप्रकाश। आहाहा!

कीमती चीज़ तुझे मिली ऐसे काल में, उसमें जो तूने प्राप्त किया, प्रभु! तुझे अल्प काल में मुक्ति होगी। मुक्ति उसके क्रमबद्ध में अल्प काल में आयेगी। अल्प काल '**अचिरात**' लिया है, परन्तु '**अचिरात' का अर्थ यह नहीं है कि क्रम बदल जाये। उसको मोक्ष पाने का** 'अचिरात'—लम्बा काल नहीं है। क्रमसर आनेवाला केवलज्ञान हो जायोगा। आहाहा! इसमें क्या सन्देह है?

४१। जरा सूक्ष्म बात लगे, प्रभु! कठिन लगे, परन्तु करने जैसा यह है। पचानेयोग्य यह है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं। दुनिया खुश हो, दुनिया प्रसन्न हो, दुनिया प्रशंसा करे, इससे क्या? अन्तर की चीज़ का स्पर्श हुआ नहीं और बाहर की प्रवृत्ति में सब मान लिया। यह कहते हैं,

णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा॥४१॥

नीचे हरिगीत।

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं,
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

आहाहा! **टीका:—चार विभावस्वभावों के...** चार को विभावस्वभाव कहा। आहाहा! क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक समकित, क्षायिक अतीन्द्रिय आनन्द—यह क्षायिकभाव हैं, परन्तु है चारों विभावस्वभाव। क्योंकि विशेष भाव हैं। वह त्रिकाली सामान्य भाव नहीं। आहाहा! **चार विभावस्वभावों के...** गजब किया है न! क्षायिकभाव को विभावस्वभाव (कहा)। क्योंकि वह पर्याय है, द्रव्य नहीं। द्रव्य तो भगवान पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें क्षायिकभाव की पर्याय का प्रवेश नहीं। आहाहा! उदयभाव का तो प्रवेश नहीं, परन्तु एक समय की क्षायिक पर्याय का उसमें प्रवेश नहीं। क्षायिक जाता है अन्दर, परन्तु अन्दर में परमपारिणामिक हो जाता है। क्या कहा?

क्षायिकभाव की एक समय की अवधि है, केवलज्ञान की अवधि भी एक समय की है। दूसरे समय वह पर्याय का व्यय होता है। व्यय होकर जाती कहाँ है? द्रव्य में। यहाँ क्षायिकभाव था, वह अन्दर में परमपारिणामिकभाव हो गया। आहाहा! जो यहां उदयभाव था वह व्यय हुआ तो उसकी योग्यता अन्दर में चली गयी, परमपारिणामिकभाव में चली गयी, विकार नहीं। यहाँ कहे, चार विभावस्वभाव... आहाहा! गजब है न गाथा। क्षायिकभाव विभाव। विभाव का अर्थ? विकारी नहीं। वि-भाव। वि-शेषे भाव सामान्य जो द्रव्य है, त्रिकाली जो सामान्य द्रव्य है, उससे यह पर्याय विशेष है। इसलिए विशेष को विभावस्वभाव कहने में आया। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में परमपारिणामिक ध्रुवभाव एकरूप है, इसकी अपेक्षा से एक समय की पर्याय की पलटन चाहे तो केवलज्ञान हो या अनन्त आनन्द हो, परन्तु उसकी अवधि एक समय की है और दूसरे समय तो नाश होता है। नाश होकर जाती कहाँ है? द्रव्य में मिलती है। आहाहा! ऐसी चीज़ है। **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** आहाहा! क्या कहा? चार विभावस्वभाव का स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का कथन है। पारिणामिकभाव

भगवान त्रिकाली उसका कथन है। आहाहा! चार विभाव तो छोड़नेयोग्य हैं। स्पष्टीकरण करते हैं।

कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। आहाहा! वह भी आत्मा में—द्रव्य में नहीं। आत्मा सम्पदा से भरा हुआ है उसमें यह नहीं। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत और भक्ति करे और कुछ प्रतिमा धारण करे तो उसको हो जाये व्रत और धर्म। आहाहा! भगवान! क्षायिकभाव की पर्याय भी तेरे में नहीं। क्षायिकभाव का आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! चार भाव में क्षायिकभाव भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है, क्योंकि उसकी अवधि एक समय की है। आहाहा! गजब बात है! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द (आदि) अनन्त चतुष्टय क्षायिकभाव है। पर्याय में क्षायिकभाव है। यह क्षायिकभाव भी आदरणीय नहीं। आहाहा!

कर्मों के क्षय से जो भाव हो... क्या कहते हैं? कि विभावस्वभाव क्यों कहा? कि क्षायिकभाव में निमित्त के अभाव की एक अपेक्षा आयी। क्षायिकभाव में कर्म के निमित्त की अपेक्षा आयी, इसलिए विभावस्वभाव कहते हैं। आहाहा! कठिन है, भाई! परन्तु है उसके घर की बात। भगवान विराजते हैं, उनकी बात है। कहते हैं कि कर्म के उदय से जो भाव... कर्मों के क्षय से... कर्मों के क्षय में—कर्मक्षय के सद्भाव में। व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा जीव को जिस भाव में आये, वह क्षायिकभाव है। क्या कहते हैं?

कर्म के क्षय से, यह एक निमित्त से कथन है, व्यवहार से कथन है। कर्म जड़ है और क्षायिकभाव चैतन्य की पर्याय है। दोनों के बीच में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! तो कर्म के क्षय से क्षायिकभाव होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! परन्तु समझते हैं कि इसमें निमित्त की अपेक्षा रह गयी। केवलज्ञान हुआ तो उसमें चार घातिकर्म का अभाव उसके (अपने) कारण से हुआ, परन्तु इतनी निमित्त की अपेक्षा रह गयी, इसलिए केवलज्ञान को भी हम विभावभाव कहते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! पूरे दिन प्रवृत्ति करना और यह... आहाहा!

कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। यह निमित्त की अपेक्षा से कथन है। वास्तव में तो भावकर्म के नाश से (होता है)। द्रव्यकर्म के नाश से, यह तो

निमित्त का कथन है। द्रव्यकर्म तो अपने कारण से कर्म की पर्याय छोड़कर अकर्मपर्याय हो जाती है। कर्म की पर्याय अपने से कर्मरूप पर्याय है, यहाँ जहाँ केवलज्ञान होता है तो कर्म की पर्याय अकर्मरूप अपने स्वकाल में क्रम में आनेवाला था और आया। आहाहा! समझ में आया? इसलिए इतनी निमित्त की अपेक्षा से कथन है। **कर्मों के क्षय से...** यह निमित्त का कथन है। आहाहा! जो भाव उत्पन्न हुआ, वह क्षायिकभाव है।

कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हुआ, वह क्षायोपशमिकभाव है। राग उदयभाव आता है न वह? यह क्षयोपशमभाव है। **कर्मों के उदय से जो भाव हो वह औदयिकभाव है।** २१ बोल आता है न? उदय के २१ बोल आते हैं और क्षयोपशम के १८ बोल आते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में। **कर्मों के उपशम से जो भाव हो वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त...** आहाहा! सकल कर्मों की निमित्त की अपेक्षा से विमुक्त **ऐसा, परिणाम से जो भाव हो...** ऐसे परिणाम से जो भाव हो, **वह पारिणामिकभाव है।** वह पारिणामिकभाव है। आहाहा!

कर्मोपाधि से विमुक्त ऐसा, परिणाम से जो भाव हो... परिणाम का अर्थ सहज होता है। वस्तु यह सहज है। परिणाम की अवस्था सहज है। क्षायिकभाव को परिणाम कहते हैं। पंचास्तिकाय ५६वीं गाथा में पाठ में लिया है, परिणाम। वह परिणाम पारिणामिकभाव को कहते हैं। पंचास्तिकाय की ५६वीं गाथा में लिखा है। आहाहा! पारिणामिक को यहाँ पारिणामिक कहा। **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त ऐसा, परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।** आहाहा! एक ही आदरणीय है। परम पारिणामिकभाव दृष्टि में आदर करनेयोग्य यह भाव है। चार भाव भी दृष्टि में हेय हैं। दृष्टि का विषय क्षायिकभाव भी नहीं। आहाहा!

दृष्टि का विषय तो त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकभाव है। आहाहा! आचार्यों ने तो जो सत्य था, वह बेधड़क दुनिया के पास जाहिर कर दिया। समाज समतौल रहे या न रहे, उसको रुचे या न रुचे, वह कोई वीतरागी... और वह वाणी भी वाणी की थी। उनकी वाणी नहीं थी। आहाहा! क्षायिकभाव को विभाव कहा, उसको छोड़ पारिणामिकभाव की दृष्टि कर। आहाहा! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक - २८-०७-१९७९
गाथा-४१, प्रवचन-८

नियमसार, गाथा-४१। इसमें ऐसा आया कि चार भाव भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! एक परमभाव त्रिकाली ध्रुव अनादि सत्ता, जिसमें अधिकता या कमी या विपरीतता कभी होती नहीं। ऐसी जो चीज़ अनादि-अनन्त ध्रुव परमपारिणामिक परमस्वभाव उसका आश्रय छोड़कर चार भाव आश्रय करनेयोग्य नहीं। ओहोहो! पाँच भाव है न? चार भाव पर्याय है। एक भाव पारिणामिक है त्रिकाली। वह यहाँ कहते हैं कि पाँचों भाव में चार भाव आदरनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। आहाहा! कठिन लगे। बाहर की क्रिया जो दया, दान, व्रत, प्रतिमा आदि के परिणाम—राग हैं, उसको आदरना भी मुश्किल पड़े, छोड़ना भी मुश्किल पड़े, वहाँ यह चार भाव छोड़ना... आहाहा!

एक समय की पर्याय में से नयी पर्याय उतपन्न होने की ताकत नहीं। ... में जाते हैं तो प्रथम उपशम समकित होता है। शान्ति... शान्ति... आहाहा! कहते हैं कि पहले उपशमभाव... अनादि मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक गया, अनन्त क्रिया-क्रियाकाण्ड, पाँच महाव्रत आदि (पाले), चमड़ी उतारकर नमक छिड़के और क्रोध न करे, ऐसी क्षमा भी थी, परन्तु द्रव्य-वस्तु दृष्टि जो है, उसका अभाव था। एक चैतन्य के आनन्द के अभाव के कारण से उसका एक भी भव कम हुआ नहीं। आहाहा! इतने-इतने महीने, दो महीने के अपवास, रस में सर्व रस का त्याग करे। आहाहा! भिक्षा के लिये एक बार जाये, उसके लिये चौका बनाया या कुछ बनाया हो तो ले नहीं—ऐसा क्रिया अनन्त बार की, नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार उपजा है। आहाहा! अनन्त बार ऐसी क्रिया की, परन्तु आत्मा अन्दर आनन्द का सागर, चार भाव से भी भिन्न है। चार पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अन्तर में लक्ष्य करना और वह आनन्द का बीज उगाना, यह पहली चीज़ है। सबसे पहली चीज़ यह करना है। तो यहाँ औपशमिक का पहले लिया है। क्योंकि उपशम समकित पहले होता है। उपशम के दो भेद हैं। वह आगे कहेंगे।

क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव

के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं। व्यवहार से भेद किये हैं। **अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व और उपशमचारित्र।** पहले उपशम समकित होता है और किसी को प्रथम उपशम चारित्र भी होता है समकित के बाद। पहले तो सम्यक् आत्मद्रव्य परमपारिणामिकभाव दृष्टि में, अनुभव में लिया नहीं तो कुछ लाभ होता नहीं।

मुमुक्षु : परमपारिणामिकभाव का अर्थ भी हम समझते नहीं। परमपारिणामिकभाव किसको कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहजभाव उसका नाम परमपारिणामिकभाव। यह चार भाव सहज नहीं। नये उत्पन्न होते हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक नये उत्पन्न होते हैं और वस्तु अनादि अनन्त सनातन पड़ी है, जिसको यहाँ पारिणामिकभाव कहते हैं। जिसमें उत्पन्न होना या व्यय होना, ऐसी जिसमें गन्ध नहीं। उत्पन्न होना... केवलज्ञान क्षायिकभाव भी उत्पन्न होता है और केवलज्ञान की स्थिति भी एक समय की है। आहाहा! तब प्रभु की स्थिति—भगवान आत्मतत्त्व की स्थिति अनादि-अनन्त सत्ता है। आहाहा! केवलज्ञान की स्थिति एक समय की है, ऐसा कहा तो चिल्लाते थे। कहाँ?

मेरठ? मथुरा... मथुरा... सुना तो चिल्लाते थे। कहा, केवलज्ञान की स्थिति एक समय की है, केवलज्ञान की। परन्तु वह तो प्रगट होता है न? केवलज्ञान कहाँ अनादि का है? एक समय की पर्याय उत्पन्न होती है और व्यय होती है दूसरे समय में। आहाहा! जबकि व्यय होकर जाती है अन्दर में। चारों पर्याय पारिणामिक की नहीं, परन्तु यह चारों पर्याय व्यय होती हे तो जाती है अन्दर में और पारिणामिकभाव(रूप) हो जाती है। चाहे तो उदय जाये अन्दर में, तो पारिणामिकभाव हो जाता है, क्षयोपशम जाये तो पारिणामिक हो जाता है, उपशम जाये तो पारिणामिक हो जाता है, क्षायिक जाये तो पारिणामिक होता है। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द सच्चिदानन्द का कन्द है। जिसमें चार भाव का लेप अन्दर में नहीं। आहाहा! उपशम के दो भेद उसमें है नहीं। उपशम समकित, उपशम चारित्र—दो भेद आत्मा में है नहीं, पर्याय में है। आहाहा! यह भेद उत्पन्न होते

हैं द्रव्य के आश्रय से। त्रिकाली पारिणामिक प्रभु अखण्डानन्द चैतन्य रत्न के अवलम्बन से वह उपशमभाव उत्पन्न होता है। उत्पन्न होता है, फिर भी वह आश्रय और अवलम्बन करनेयोग्य नहीं।

पीछे क्षायिकभाव के नौ भेद। क्षायिक समकित। आहाहा! चौथे गुणस्थान से क्षायिक समकित होता है। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती हैं। नरक में गये, परन्तु उनको क्षायिकभाव है। आहाहा! वह भी आदरणीय नहीं, क्योंकि एक समय की पर्याय है। भगवान पूर्ण आनन्द दल पड़ा है अन्दर। उसके अनुभव बिना... अनु अर्थात् उसको अनुसरना, भव अर्थात् होना। पर्याय के अनुसार होना, वह संसार है। आहाहा! वह विकल्प है। त्रिकाली को अनुसरकर भवना, वह अनुभव। आहाहा! उसमें, यह क्षायिकभाव, क्षायिक समकित त्रिकाली में होते नहीं। क्षायिक समकित का आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! जगत तत्त्व अनन्त काल से... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त बार साधु हुआ, अनन्त बार मुनि हुआ, अनन्त बार ग्यारह-ग्यारह प्रतिमा अनन्त बार धारी, परन्तु अन्तर द्रव्यस्वभाव जो क्षायिकभाव से भी पार है... आहाहा!

यहाँ (कहा कि) क्षायिक समकित से भी पार है। आहाहा! और यथाख्यातचारित्र से भी पार है। यथाख्यातचारित्र। बारहवें, तेरहवें... ग्यारह में उपशम है। यथाख्यातचारित्र। यथाख्यात—जैसी है, वैसी प्रसिद्धि। अन्दर में जैसा स्वभाव है, ऐसी यथाख्यात-यथाप्रसिद्धि। जैसी चीज़ अन्दर है, ऐसी प्रतीति होना, चारित्र की रमणता (होना), वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! और वह भी पारिणामिकभाव में नहीं। आहाहा! गजब बात! यहाँ तो अभी उदय की क्रिया करनी, यह करना, यह करना। उदयभाव की क्रिया और उसका कर्ता होना, वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

निश्चय से प्रभु! बहुत कठिन बात है। व्यवहार का कथन तो बहुत आता है। परन्तु निश्चय... पर का त्याग-ग्रहण वह मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु अन्दर क्षायिकभाव से भी रहित है, तो पर के त्याग-ग्रहण से तो रहित ऐसा उसका गुण है। इसका तो यह गुण है। यह क्षायिक आदि तो पर्याय है। समझ में आया? क्षायिक समकित, यथाख्यातचारित्र, वह तो पर्याय है। आहाहा! यह तो त्रिकाली गुण है। आहाहा!

शुद्ध चैतन्यगुण भगवान आत्मा... आहाहा! फिर भी यह गुण भी भेद से आदर करनेयोग्य नहीं। आहाहा! एकरूप चैतन्यस्वरूप... एकरूप चैतन्यस्वरूप महत् आनन्दकन्द का नाथ प्रभु, केवल अतीन्द्रिय आनन्द का दल, प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का दल है। आहाहा! कन्दमूल है, कन्द है। कन्द में जैसे अनन्त आत्मा हैं, वैसे इसमें अनन्त स्वभाव है। आहाहा! अरेरे! उसको अपनी निज शक्ति को अन्तर देखने, मानने का प्रयत्न किया नहीं और नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया। यहाँ (-ध्रुव में) यथाख्यातचारित्र भी नहीं। आहाहा! केवलज्ञान नहीं। वह भी पर्याय है। आहाहा! वह आश्रय करनेयोग्य नहीं।

जबकि केवलज्ञान तो पूर्ण स्वरूप प्राप्त है उसका ... है, परन्तु श्रुतज्ञानी को केवलज्ञान अद्भुत व्यवहार है। केवली को तो प्रमाण हो गया पूरा, उनको कोई नय-बय है नहीं। परन्तु जहाँ पूर्ण नहीं ऐसी पर्याय में केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय (का विषय है)। चौथे, पाँचवें, छठवें, केवलज्ञान को सद्भूतव्यवहारनय कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) निश्चय प्रभु भगवान पूर्णानन्द अनादि-अनन्त सत्व उसके पास सद्भूतव्यवहारनय... नय यहाँ (होता) है। केवली को नय नहीं। परन्तु श्रुतज्ञानी को नय है। तो यह केवलज्ञान भी भेद और सद्भूत -व्यवहारनय है। वह वर्तमान में है नहीं, परन्तु आश्रय करनेयोग्य भी है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात लोगों को लगे। बात तो ऐसी है, अलौकिक बातें। जन्म-मरण से रहित होना... आहाहा! चौरासी के अवतार, निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक... निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक। आहाहा! अनन्त-अनन्त भव... एक-एक (योनि) में अनन्त-अनन्त (अवतार) किये। परन्तु कहीं आत्मा की दृष्टि की नहीं। आत्मा की दृष्टि बिना ऊपर से सब मान लिया।

यह यहाँ कहा कि केवलज्ञान भी आत्मा का स्वभाव नहीं। एक समय की पर्याय है। आहाहा!

उत्पाद-व्यय है और वस्तु एक ध्रुव है,... वस्तु एक ध्रुव है। केवलज्ञान उत्पाद-व्ययस्वरूप है। उस कारण से श्रुतज्ञानी को केवलज्ञान भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। केवलज्ञान हो गया उसका तो प्रश्न नहीं। श्रुतज्ञानी को नय होता है न? वहाँ नय नहीं

होता है—केवलज्ञानी को नय-बय नहीं होता। नीचे नय होता है चौथे, पाँचवें, छठवें। इसलिए कहते हैं कि केवलज्ञान सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। वह निश्चयनय का विषय नहीं। आहाहा! निश्चयनय में तो परमात्मा... आहाहा! अनाकुल आनन्द का नाथ उसकी अस्ति—उसकी अस्ति-उसकी मौजूदगी अनादि-अनन्त है, जिसमें एक समय भी कमी आये नहीं। आहाहा! वास्तव में तो क्षायिकभाव को भी छूता नहीं। पर्याय है न? द्रव्य ऐसा त्रिकाली द्रव्य... वर्तमान केवलज्ञान भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसे केवलदर्शन क्षायिकभाव।

अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान... वह कौन सा दान? किसी को दान देना, वह नहीं। सम्प्रदान। अन्तर में आनन्द में जाने से अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न होने से सम्प्रदान... सम्प्रदान... कर्ता आत्मा, कर्ता का कर्म अपना और वह सम्प्रदान जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, वह अपने में रखा, पात्र भी स्वयं और दाता भी स्वयं। आहाहा! ऐसा है। केवलज्ञान में पात्र भी स्वयं और दाता भी स्वयं। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वयं ने स्वयंभू किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ने स्वयंभू। सम्प्रदान। षट्कारक है, (उसमें) सम्प्रदान है। अपनी पर्याय को ही अपने उत्पन्न करके अपने में रखे, यह सम्प्रदान है। आहाहा! इसका भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। क्षायिक समकित, क्षायिक सम्प्रदान। आहाहा! जो समय-समय में अनन्त आनन्द अपने को आता है (उसका) पात्र भी स्वयं और दाता भी स्वयं। यह दोनों एक समय में है, फिर भी वह चीज त्रिकाल में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें... रतनलालजी! इस बाहर के रतन में सूझ पड़े ऐसा नहीं है। आहाहा!

अन्दर में प्रभु... यहाँ कहते हैं कि दान जो है दान। दान पर को दे सकते, ले सकते नहीं। तीर्थंकर छद्मस्थ हो और आहार लेने जाये तो आहार उनको दे सकते हैं, ऐसा है नहीं। आहार के परमाणु वहाँ जानेवाले थे तो जाते हैं। देनेवाले को तो राग की मन्दता का भाव है। आहाहा! उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ सम्बन्ध नहीं। दान की चीज़ उसकी नहीं कि वह दे सके। परद्रव्य है, उसको तो आत्मा छूते ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अत्यन्त अभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : अत्यन्त अभाव। प्रभु! दान दे सकते नहीं। यह तो दान अपने को दे। अपने अन्तर में अनन्त आनन्द प्रगट करके अपने में रखे, वह भी एक अन्तरायकर्म का नाश करके उत्पन्न होता है अथवा अपनी पर्याय की योग्यता से उत्पन्न होता है। यह दान भी आत्मा में नहीं। यह दान, हों! आहार देना वह दान तो है ही नहीं आत्मा में। यह (आत्मा) कभी छूता नहीं आहार को। आहार देनेवाले को, मैं आहार देता हूँ ऐसा कर्ता(पने का) अभिमान हो तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग कोई गजब है। डालचन्दजी! कहीं है नहीं। ऐसी बात कहीं है नहीं। आहाहा! वीतराग सिवा। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा उनकी दिव्यध्वनि में यह आया। उन्होंने कहा कि दान अपने में लेना-देना है। निर्मल पर्याय लेना और देना अपने को, वह भी अन्तर में नहीं। यह दान भी अन्तर में नहीं है। आहाहा! जड़ का दान तो नहीं, राग का दान तो नहीं, शुभराग वह भी दान नहीं, परन्तु शुद्ध दान है शुद्ध, आहाहा! वह भी पर्याय में है, वह द्रव्य में है नहीं। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : अमर बना दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमर है न प्रभु! प्रभु हैं न सब? आहाहा! भगवन्त! तुझे कौन-सी उपमा दे? ऐसी दशा भी तेरे में नहीं ऐसी चीज़ तू क्या... अन्तर आनन्द में से अनन्त आनन्द प्रगट होकर अपने में रखे, वह चीज़ भी अन्तर में नहीं। आहाहा! समझ में आता है, भाई? भाषा तो सादी है, प्रभु! यहाँ कोई अंग्रेजी-फंग्रेजी ऐसा कुछ है नहीं। सुधरी भाषा नहीं यहाँ। आहाहा!

लाभ,... दुनिया की चीज़ का लाभ तो उसमें है ही नहीं। पैसाा मिला, स्त्री मिली, कुटुम्ब मिला—वह लाभ तो आत्मा में है ही नहीं। वह तो जड़ है। परन्तु राग का भी लाभ नहीं। अनन्त आनन्द से अनन्त आनन्द का अंश जो प्रगट हो, इसका नाम यहाँ दान है। वह दान भी क्षायिकभाव है। आहाहा! क्षायिकभाव का दान... वह जड़ का दान... रागभाव वह उदय का दान। आहाहा! आहार आदि जाये वह तो जड़ अपनी पर्याय से वहाँ जाता है। आत्मा उसको दे सकता नहीं। आहाहा! मैं दे सकूँ, ऐसा माने वह तो जड़ का कर्ता हुआ। कर्ता हुआ तो मिथ्यादृष्टि हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसे दिये हमको फिर भी मिथ्यादृष्टि हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसको दिये पैसे? पैसे धूल हैं जगत की (तो) जगत में आये। दे कौन? रतनलालजी! ऐसा कहा, सेठिया ने पैसे दिये ५० हजार, लाख। कौन दे? पैसा धूल है, वह भी एक द्रव्य है, उसकी पर्याय के काल में वह पैसा वहाँ जाता है। देनेवाला कहे कि मैंने दिया, लेनेवाला कहे कि मैंने लिया। दोनों को भ्रम अज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : ५० हजार दिये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५० हजार, लाख मिला... अभी गये थे न वहाँ? नैरोबी। तीन लाख रुपये। २५ दिन में तीन लाख दिये सोनगढ़ के लिये, शास्त्र की कीमत कम करने के लिये। कहा, राग की मन्दता हो तो इससे पुण्य होगा। बाकी यह चीज़ मैंने दिया है, ऐसा जो अभिमान है अन्दर में, वह तो कर्ताबुद्धि है। आहाहा! शास्त्र में व्यवहार से कथन तो बहुत आता है। परन्तु वह सब व्यवहार का कथन (यथार्थ) मान ले, तो दृष्टि विपरीत हो जाती है। यहाँ तो दान और लाभ... पैसा का लाभ, स्त्री का लाभ, कुटुम्ब का लाभ, इज्जत का लाभ—ऐसी बात यहाँ है नहीं।

यहाँ तो आनन्द का लाभ... अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ पर्याय में होना, क्षायिक लाभ होना... यह क्षायिकभाव का लाभ होना... आहाहा! जो पर्याय प्रगटी, वह क्षायिकभाव है, वह सदा रहेगी। भले एक समय की पर्याय है, परन्तु दूसरे समय, तीसरे समय में क्षायिकभाव रहेगा। यह दान, अन्तर चीज़ भगवान, परमानन्द का नाथ, अनादि-सनातन, सत्य सनातन वस्तु इसमें यह लाभ का अभाव है। आहाहा! भाई! मूल चीज़ है, पर्याय बिना की मूल चीज़ है वह पकड़ना, बापू! अलौकिक बातें हैं, भाई! वह कोई बाह्य की क्रियाकाण्ड से पकड़ने में आवे... आहाहा! वह तीन काल में आती नहीं। ऐसी यह चीज़ अन्दर है।

लाभ, भोग,... शरीर आदि के भोग, वह नहींद्य राग के भोग, वह नहीं। अन्तर के आनन्द का भोग। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान का भोग भी आत्मा में नहीं, पर्याय में है। आहाहा! राग का भोग तो आत्मा में है ही नहीं। राग का भोग माने

वह तो मिथ्यादृष्टि है और आहार-पानी का खाने का भोग माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। रतनलालजी! यह तो सब धूल मिट्टी है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि को आहार देना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आहार दे—ले सके नहीं। भाव हो। वह आहार के परमाणु उस क्षण में वहाँ जानेवाले हो तो जायेंगे। देनेवाला कहे मैंने दिया उसका स्वामी होकर, तो मिथ्यादृष्टि है। शुभभाव हो, परन्तु मिथ्यात्वसहित शुभभाव है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो भोग एक बार भोगने में आये ऐसी आनन्द की पर्याय वह भी भोग अन्दर में नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय भोगवने में एक समय में आती है, वह अतीन्द्रिय आनन्द भी क्षायिकभाव है। वह क्षायिकभाव अतीन्द्रिय आनन्द का भोग भी अन्तर में नहीं। आहाहा! **उपभोग...** बारम्बार पर्याय को भोगना। बारम्बार यह आनन्द की पर्याय को भोगना। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अनाकुल शान्ति-विकल्प बिना की निर्विकल्प शान्ति—उसका बारम्बार भोगना, वह भी पर्याय में है, वस्तु में है नहीं। आहाहा! बारम्बार भोगना स्त्री को, पैसे को, मकान को—वह चीज़ तो कहीं दूर रह गयी। परचीज़ मेरी है और मैं कुछ उसका हेरफेर कर सकता हूँ, ऐसी दृष्टि को प्रभु मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

अपने अतिरिक्त परद्रव्य में कुछ... निश्चय से तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। आहाहा! तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं, चुम्बन किया नहीं, चुम्बन अर्थात् स्पर्श किया नहीं। आहाहा! एक द्रव्य ने दूसरे को स्पर्श किया नहीं। आहार को आत्मा ने स्पर्शा नहीं, हाथ ने भी उस आहार को स्पर्श किया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रवचन हो रहा है, वह क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वाणी है जड़। जड़ से निकलती है। आत्मा इसका कर्ता है नहीं। अरे! प्रभु! आहाहा! ईर्या समिति—देखकर चलना। दूसरे को दुःख न हो, इतना भाव है, वह भी शुभ है। बाकी पैर की चलने की क्रिया है, वह जड़ की है। और वह पैर भी नीचे चलते हैं तो वह पैर नीचे जमीन को छूते नहीं। क्या कहा? पैर चलता है न ऐसा धरती पर? धरती को छूते नहीं पैर। क्योंकि धरती का परमाणु और पैर के

परमाणु के बीच में अत्यन्त अभाव है। आहाहा! बात ऐसी है, बापू! अनन्त काल में कभी अन्तर्दृष्टि की नहीं और बाह्य में कुछ करे तो मिलेगा, वह शल्य अन्दर से निकलता नहीं अनादि से। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **भोग, उपभोग...** क्षायिक उपभोग हों। परचीज़ बारम्बार भोगे, उसकी बात ही नहीं। अपने आनन्द को बारम्बार भोगना, वह पर्याय है; वह भी आत्मद्रव्य में नहीं। आहाहा! **और वीर्य...** वीर्य तो इसको कहते हैं... राग की रचना करे, उसे वीर्य नहीं कहते हैं। स्वरूप की रचना करे, उसको वीर्य कहते हैं। वहाँ प्रश्न चला है। अभी कहते थे। अपने वहाँ नपुंसक लिखा है न? क्लीब का अर्थ नपुंसक लिखा है। तो वहाँ कोई विद्वान ने कहा, नपुंसक ऐसा (अर्थ) नहीं। भाई! क्लीब का अर्थ नपुंसक ही है, दो जगह पर है। पुण्य-पाप अधिकार और अजीव अधिकार में। नपुंसक ही, जयचन्द पण्डित ने उसका अर्थ नपुंसक ही किया है। वह समय से चला आया है। वह समयसार पहले ७८ में हाथ में लगा। उसमें यह नपुंसक लिखा है। शुभभाव की रचना करनेवाला नपुंसक है। आहाहा! वह वीर्य नहीं।

यह वीर्य तो क्षायिकवीर्य है, क्षायिकवीर्य। जो अपने स्वरूप के अनुभव की अनन्त शक्ति की पर्याय की रचना करे, उसका नाम वीर्य है। आहाहा! वह वीर्य भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! इतना शक्तिवन्त जिसका पुरुषार्थ अपने स्वभाव की रचना करे, परन्तु वह वीर्य भी अन्तर में नहीं। वह पर्याय में ऊपर तैरती है। द्रव्य के ऊपर ही तैरती है। आहाहा! अरे! भगवान! तेरी महिमा तूने सुनी नहीं कि तेरे अन्दर में क्या-क्या चीज़ है। आहाहा! यह पाँच क्षायिकभाव वह तेरे में नहीं। पाँचों। **दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य।**

अब **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान...** तेरे में नहीं। वह तो पर्याय है। आहाहा! एक समय का मतिज्ञान दूसरे समय में वह मतिज्ञान रहता नहीं। दूसरे समय में मतिज्ञान दूसरा हो जाता है। भले हो ऐसा ही, परन्तु दूसरा है। वह मतिज्ञान क्षायोपशमिकभाववाला है। आहाहा! परन्तु वह आत्मा का स्वरूप नहीं। मतिज्ञान आत्मा में नहीं। चिल्लाने लगे। बहुत बुद्धिवाला और मति में धारणा करके लाखों लोगों में उपदेश में खम्मा... खम्मा करे... प्रभु! सुन तो सही।

मुमुक्षु : मतिज्ञान को केवलज्ञान का अंश कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अंश है। केवलज्ञान का अंश कहा है तो भी आदरणीय नहीं। अंश तो कहा है, परन्तु उससे विशेष कहते हैं। मतिज्ञान में... षट्खण्डागम में ऐसा लिया है कि सम्यग्दर्शनपूर्वक मतिज्ञान हुआ, वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। ऐसा पाठ है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ क्षायिकभाव हेय तरीके से कहा। वहाँ ऐसा कहा। सम्यक् मतिज्ञान अनुभव में से आया, वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आओ, अल्प काल में केवलज्ञान आओ। दूज हुई है, तेरहवें दिन पूनम हुए बिना रहेगी नहीं। दूज हुई है तो तेरहवें दिन पूनम पूर्ण होगी। ऐसी समकितरूपी बीज का अनुभव हुआ, उसको अल्प काल में केवलज्ञान आये बिना रहे नहीं। आहाहा! माहात्म्य उसका कहाँ आये? भाई! बाहर के आचरण में कुछ फेरफार हो तो ठीक लगे लोगों को। ... आचरण छह-छह खण्ड का स्वामी, क्षायिक समकिती और बड़ा चक्रवर्ती, छियानवें हजार (स्त्री) के विषय का भोग, छियानवें करोड़ (सैनिक) का स्वामी। अन्दर में पर के एक अंश का स्वामी नहीं। आहाहा! वह तो त्रिकाली आनन्द के नाथ का स्वामी है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसको तो रसोई बनानेवाले ३६० होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न ३६०। एक दिन की रसोई बनाने के लिये, चक्रवर्ती की एक दिन की रसोई करने के लिये, ऐसे (पूरे वर्ष के लिये) ३६० रसोईया रखे हो। उसमें एक-एक रसोईया एक दिन की चीज़ करने में बारह महीने पुरुषार्थ करे—तैयारी करे। बारह महीने में एक दिन... पकानेवाला... पकानेवाले को क्या कहते हैं? रसोईया। एक दिन की चीज़ करने को अमलदार होता है। जो बारह महीने तक एक दिन की चीज़ को तैयार करता है और हुकम करता है कि तुम्हारे यह करना। ऐसे ३६० हैं। रसोईया नहीं हो, ३६० अधिकारी। आहाहा! फिर भी क्षायिक समकिती है। आहाहा! परचीज़ नहीं। बापू! प्रभु! आहाहा!

जिसकी कूख में सवा नौ महीने तक रहा, उस माता को देखकर... स्नान करती हो तो नग्न देखकर नजर वहाँ रहे, ऐसा हो सके नहीं। आहाहा! सगी माता-जनेता।

कोई स्नान करती हो खटिया बीच में रखकर और खड़ी को कपड़े बिना। स्वयं आ गया हो और नजर पड़े तो नजर को हटा ले। नजर वहाँ न रखे। मेरी जनेता है—माता है। आहाहा!

बोटाद में ऐसा बना है। उपाश्रय है न स्थानकवासी? उसके सामने मोढ रहते थे मोढ। मोढ की स्त्री उसकी नयी माँ थी। नयी माँ। उसकी माँ गुजर गयी थी। उसकी स्त्री के कपड़े नयी माने पहने थे। ओढ़े हुए थे-पहने थे। स्त्री गयी थी नहाने और स्त्री के कपड़े पहनकर उसकी नयी माँ सोयी थी। उसमें उसको विषय की वृत्ति उठी तो वहाँ गया। उसको लगा मेरी स्त्री है। स्त्री के कपड़े थे न? ऐसा पैर मारा तो माँ बोली, क्यों भाई! स्त्री नहाने गयी है। आहाहा! एकदम वृत्ति बन्द हो गयी। उसने कहा... समझ गयी उसकी माँ कि यह विषय के लिये आया है। कहा—स्त्री नहाने गयी है। आहाहा! एकदम वृत्ति बन्द हो गयी। उसने कहा... समझ गयी उसकी माँ कि यह विषय के लिये आया है, विषय जगा है। स्त्री नहाने गयी है। ऐसे जहाँ सुना तब तो जो वृत्ति तीव्र थी, वह उड़ गयी। आहाहा!

ऐसे अपने आत्मा में, राग का कण और पर्याय मेरी चीज़ में नहीं। ऐसे यथार्थ दृष्टि हो जाये तो दृष्टि रुक जाये आत्मा में। आहाहा! क्योंकि यह जनेता, प्रत्येक पर्याय की जनेता द्रव्य है। आहाहा! पर्याय में से पर्याय नहीं आती। आहाहा! पर्याय द्रव्य में से आती है और द्रव्य में जाती है। आहाहा! चाहे तो चार भाव में से कोई भी हो, वह दूसरे समय तो व्यय होता है। पहले समय जो भाव उत्पन्न हुआ, वह दूसरे समय व्यय होकर जाता कहाँ है? अन्दर पारिणामिकभाव में जाता है। आहाहा! जन्मदाता तीन लोक का नाथ मेरा प्रभु उसमें पर्यायें जाती हैं और वहाँ पर्याय(रूप) नहीं रहती, वहाँ पारिणामिकभाव हो जाती है। यहाँ उदयभाव बाहर में है, मिथ्यात्व का तीव्र उदय है, वह जब दूसरे समय में व्यय होता है, अन्दर में चला जाता है। मिथ्यात्व(रूप) विपरीत भाव नहीं जाता, परन्तु इसकी योग्यता जो है, वह अन्दर जाती है। सूक्ष्म बात है, प्रभु!

यहाँ कहते हैं कि क्षायिकभाव का वीर्य अपना नहीं। मतिज्ञान, मतिज्ञान क्षयोपशमभाव है। थोड़ा याद जहाँ रहा तो अभिमान हो जाये। प्रभु! मतिज्ञान तो अनन्तवें

भाग है, केवलज्ञान के अनन्तवें भाग है। कितना भी धारे मति में, बारह अंग का ज्ञान, वह भी विकल्प है। आया है न? इसमें आया है कलशटीका में। बारह अंग भी विकल्प है। बारह अंग में भी अनुभूति करने की बात कही है। कलशटीका में है। समझ में आया?

बारह अंग किसको कहे प्रभु! चौदह पूर्व तो, बारह अंग में से कुछ भाग रह गया। बारह अंग की तो चौदह पूर्व से विशेष शक्ति है। बारह अंग में चौदह पूर्व तो एक भाग है। आहाहा! वह चौदह पूर्व से ऊपर अधिक बारह अंग का ज्ञान है। वह बारह अंग भी विकल्प है। परलक्ष्य में जायेगा तो विकल्प उठेगा। उसमें ऐसा कहा है। बारह अंग में भगवान ने ऐसा कहा है, प्रभु! तेरा पारिणामिकस्वभाव अन्दर है, उसका अनुभव कर। आहाहा! उसमें पाठ है। पता है न कलशटीका में? कौन सा पद है?

मुमुक्षु : १३वाँ कलश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : १३वाँ कलश। बहुत बार बताया है।

कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। आहाहा! कोई जानेगा कि बारह अंग का ज्ञान अपूर्व है, अपूर्व लब्धि है। तो **उसके प्रति समाधान इस प्रकार है...** बारह अंग अपूर्व लब्धि (है, ऐसा) कोई माने तो उसका समाधान... आहाहा! यहाँ तो जरा पाँच-पच्चीस करोड़, पचास, पाँच सो, दो हजार, दस हजार... हमने जब दीक्षा ली थी तो दो वर्ष में छह हजार श्लोक कण्ठस्थ किया था। छह हजार श्लोक। सब अभिमान... आहाहा! अन्तर में चीज़ दूसरी है, भाई!

यहाँ कहते हैं कि **आत्मानुभव मोक्षमार्ग है। इस प्रसंग में और भी संशय होता है कि कोई जानेगा कि द्वादशांगज्ञान कुछ अपूर्व लब्धि है। उसके प्रति समाधान इस प्रकार है कि द्वादशांगज्ञान भी विकल्प है।** आहाहा! १३वाँ श्लोक है। बारह अंग। एक आचारांग के १८ हजार पद और एक पद में ५१ करोड़ से ज्यादा श्लोक। आहाहा! ऐसे ग्यारह अंग अनन्त बार किया, कण्ठस्थ अनन्त बार किया। परन्तु आनन्द के नाथ को स्पर्शा नहीं। आहाहा! ऊपर-ऊपर सन्तोष मानकर जीवन निकाला। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि द्वादशांग भी विकल्प है। **उसमें भी...** भले द्वादशांग में भी **ऐसा**

कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है,... उसमें यह कहा है कि शुद्धात्मानुभूति मोक्षमार्ग है। **इसलिए शुद्धात्मानुभूति के होने पर शास्त्र पढ़ने की कुछ अटक नहीं है।** आहाहा! १३वाँ श्लोक है। अमृतचन्द्राचार्य... राजमलजी की टीका है। आहाहा! बारह अंग का ज्ञान भी विकल्प है। आहाहा! और वह कोई अन्तर द्रव्य में नहीं। और बारह अंग में भी परमात्मा ने अनुभूति—आत्मा की अनुभूति... राग-विकल्प बिना अनुभूति (करने को) बारह अंग में कहा है। आहाहा! बारह अंग का सार यह है। बाहर की कुछ भी बातें करो, परन्तु अन्तर आनन्द का नाथ उसके अनुसार अनुभूति-भवना, आनन्द के स्वाद में आना वह उसकी चीज़ है, बाकी तो सब एक के बिना का शून्य है। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहते हैं, मतिज्ञान तो केवलज्ञान के अनन्तवें भाग में है, इसका तो आश्रय नहीं। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। बुलाता है का अर्थ? ऐसा पाठ है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। कोई व्यक्ति बुलाता है कि भाई! यहाँ आओ। यह मार्ग क्या है? ऐसे मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है अर्थात् क्रमसर केवलज्ञान होता है। आहाहा! मतिज्ञान केवलज्ञान को 'बुलाता है' का अर्थ... पाठ में 'बुलाता है' ऐसा है। षट्खण्डागम। सब देखा है न? आगम-बागम सब देखा है। उसमें (कहा कि) केवलज्ञान जल्दी आओ। यहाँ क्षायिकभाव का निषेध किया है। परन्तु भाव में आगे बढ़ने, शुद्धि बढ़ने की, द्रव्य का आश्रय उग्र लेने की माँग है। द्रव्य का उग्र आश्रय हो तो केवलज्ञान होता है। मतिज्ञान में द्रव्य का अल्प आश्रय है। आहाहा!

श्रुतज्ञान में, अवधिज्ञान में, मनःपर्ययज्ञान में द्रव्य का अल्प आश्रय है। केवलज्ञान में द्रव्य का पूर्ण आश्रय है। आहाहा! वह आश्रय माँगते हैं। पूर्ण आश्रय हो जाओ, दूसरा मुझे चाहिए नहीं। मेरा प्रभु पूर्ण ब्रह्म पड़ा है, उसका पूर्ण आश्रय हो जाओ। आहाहा! आस्रव अधिकार में आया है। समयसार, आस्रव अधिकार में दो जगह पर आया है। आहाहा! क्या? कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है। पाठ में आया है दो जगह। आस्रव अधिकार। सब है उसमें। इस ओर है और उस ओर है। (कौन सा है) उसकी खबर नहीं। शास्त्र में देखा है। किसी को देखना हो तो देखो। इसमें है न?

मुमुक्षु : समयसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार। गुजराती है। आहाहा! क्या कहते हैं? कि शुद्धनय की पूर्णता केवलज्ञान में होती है। ऐसा लिया है दो जगह पर। क्योंकि वहाँ बाद में आश्रय लेने का रहा नहीं। नीचे जब तक चार ज्ञान है, बारहवाँ गुणस्थान है, तब तक तो आत्मा का आश्रय लेना है। वह आश्रय पूर्ण हो गया तो शुद्धनय पूर्ण हो गया ऐसा लिखा है। क्या बोला? कि स्व का आश्रय पूर्ण हो गया, वहाँ शुद्धनय पूर्ण हो गयी। है, आस्रव (अधिकार) में है। निकला?

मुमुक्षु : बायीं तरफ अन्तिम लाईन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ओर। केवलज्ञान होने से साक्षात् शुद्धनय होता है। वहाँ नय कहा है। पण्डित जयचन्द ने अर्थ किया है। पहले से पण्डित ने किया उनका ही अर्थ यहाँ है। अन्तिम में आया कि शुद्धोपयोग में लीन रहने का उपदेश है। केवलज्ञान होने से साक्षात् शुद्धनय होता है। नय होता है, ऐसा कहते हैं। नय का अर्थ कि आश्रय पूरा हो गया। आहाहा! दो जगह पर है। दूसरी जगह पर है। इस ओर है। दोनों जगह। देखो कहा था न? इस ओर है और उस ओर भी है। साक्षात् शुद्धनय तो केवलज्ञान से होता है। आहाहा! वह क्या कहा? कि पूर्ण आत्मा का अवलम्बन केवलज्ञान होने पर होता है। पीछे आश्रय करना रहता नहीं। उस कारण से शुद्धनय केवलज्ञान होते ही... आहाहा! साक्षात् शुद्धनय केवलज्ञान होने से होता है। यहाँ कहा कि केवलज्ञान होने से साक्षात् शुद्धनय होता है।

एक तरफ ग्यारहवीं गाथा में ऐसा कहा, समयसार (में)। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ जो त्रिकाल है वह शुद्धनय है। आहाहा! क्या कहा? ११वीं गाथा। '**भूदत्थो देसिदो**' भूतार्थ है, वह शुद्धनय है। यहाँ कहा कि शुद्धनय की पूर्ण प्राप्ति केवलज्ञान में हो गयी। आश्रय, मूल आश्रय है न। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का अवलम्बन पूरा हो गया तो केवलज्ञान में शुद्धनय पूर्ण हो गया, वरना शुद्धनय तो श्रुतज्ञान का भाग है, परन्तु केवलज्ञान हुआ तो वह श्रुतज्ञान का शुद्धनय भी रहा नहीं। आहाहा! आत्मा का पूर्ण आश्रय हो गया, पूर्ण आश्रय होकर केवलज्ञान हो गया, पीछे

शुद्धनय का आश्रय करना रहा नहीं, इसलिए शुद्धनय पूर्ण हुआ—ऐसा कहने में आया है। दो जगह है लो। (कलश) २८४ और २८५। दो जगह नीचे है। कहा था न।

तो यहाँ कहते हैं कि **मतिज्ञान,...** अरे! **श्रुतज्ञान...** बारह अंग का ज्ञान, वह भी पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। द्रव्य तो भगवान आत्मा है। श्रुतज्ञान तो पर्याय पामर है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में एक श्लोक है। आहाहा! सन्त-मुनि आत्मध्यानी-ज्ञानी आनन्द के अनुभव वाले, वह मुनि ऐसा मानते हैं कि हम तो पामर हैं और केवलज्ञानी ही प्रभु हैं। आहाहा! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है, गाथा है। हम तो पामर हैं। आहाहा! प्रभुता तो द्रव्य में है, ध्रुव में। परन्तु पर्याय में पामरता है। ध्येय में प्रभुता है। आहाहा! नया नया लगे।

ध्येय में ध्रुव और केवलज्ञान हुआ तो परिपूर्ण पर्याय—शुद्धनय हो गया, ऐसा पाठ आया। आहाहा! क्योंकि शुद्धनय बाद में आश्रय करना रहा नहीं। ऐसे शुद्धनय तो श्रुतज्ञान का भेद है। तो आश्रय जब तक करे तब तक शुद्धनय कहने में आता है, शुद्धनय का भेद। आश्रय पूर्ण हो गया, पीछे शुद्धनय का भेद रहा नहीं। मात्र केवलज्ञान रह गया परमात्मस्वरूप। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं कि श्रुतज्ञान भी आत्मा में है नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ५, रविवार, दिनांक - २९-०७-१९७९
गाथा-४१, प्रवचन-९

नियमसार। गाथा है न? ४१वीं गाथा। यहाँ आया है। चार भाव भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! उदयभाव, शुभ-अशुभकर्म-विकार... वह विकार अपने से अपने में होता है। कर्म से नहीं। कर्म तो निमित्त है। पहले अधिकार में चला है। कर्म की विचित्रता और (कर्म के) वश आत्मा में शुभाशुभभाव होता है। पहले समयसार में आ गया है। आहाहा! वह शुभाशुभभाव भी अपना नहीं, वह आत्मा में है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा कि क्षायिकभाव भी आत्मा में नहीं। अरे! किसका अभिमान करना? क्षायिकभाव भी आत्मा में नहीं। आहाहा! उसकी दृष्टि वहाँ लेना है। पर्याय में पामरता है, वस्तु त्रिकाली अनन्त आनन्दकन्द है। पर्याय में पामरता माने, वह द्रव्य में जाये। आहाहा! पर्याय में जिसका अभिमान और अधिकता हो जाये, उसका द्रव्य हीन हो जाये, द्रव्य का आदर न रहे। जो पर्याय में क्षयोपशम(ज्ञान) से अधिकता हो जाये, मान आये, आबरू, कीर्ति। यह आया न अपने? श्रुतज्ञान आया है। श्रुतज्ञान का क्षयोपशम... आहाहा! बारह अंग का ज्ञान कुछ नहीं। वह चीज़ भी वस्तु में नहीं, तथा उस चीज़ के आश्रय से लाभ नहीं। आहाहा!

बारह अंग किसको कहे प्रभु! तेरी प्रभुता के समक्ष बारह अंग का ज्ञान भी पामर है। आहाहा! चौदह पूर्व जो बारह अंग का भाग है। बारह अंग तो चौदह पूर्व से दो भाग विशेष है। आहाहा! यह भी श्रुतज्ञान का क्षयोपशम है। प्रभु! यह तेरे आत्मा में नहीं। आहाहा! वह ज्ञान के अभिमान कि हमें आता है, हमें कहना आता है, समझाना आता है। प्रभु! वह अभिमान आत्मा को नुकसान करनेवाला है। आहाहा! आत्मा में बारह अंग का ज्ञान आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! तो इससे अधिकाई क्यों मनाये? जिसका आश्रय करनेयोग्य नहीं, उसकी अधिकाई और अभिमान क्यों मनाये? आहाहा! जिसके समक्ष आत्मा को पामर माने... पर्याय में आत्मा पामर है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में गाथा है। कार्तिकस्वामी में गाथा है।

धर्मी जीव को अपनी पर्याय में क्षयोपशम हुआ है, बारह अंग का क्षयोपशम हुआ है। फिर भी अपनी पर्याय में केवलज्ञान की अपेक्षा से अपने को पामर मानता है। आहाहा! यह बात यहाँ कहते हैं। श्रुतज्ञान... कितना कहे? ग्यारह अंग में एक-एक (पहले) अंग में १८ हजार पद, एक-एक पद में इक्यावन करोड़ से ज्यादा श्लोक। ऐसा ग्यारह अंग का ज्ञान, उससे तो चौदह पूर्व कहीं अधिक (और) उससे बारह अंग तो कहीं अधिक। आहाहा! इसका भी अभिमान नहीं। बारह अंग प्रगट हो फिर भी... वह तो कलशटीका में भी बताया कि विकल्प है। बारह अंग है, वह विकल्प है। और बारह अंग में भी प्रभु! अनुभव आनन्द का लेना, यह कहा है। आहाहा! अनुभूति कहा है। बाकी सब बातें हैं। व्यवहार, क्रियाकाण्ड आदि सब अनन्त बार किया। अनन्त बार उसका फल दु:ख (भोगा)। उसका फल दु:ख है। भगवान आत्मा श्रुतज्ञान के बारह अंग से पार है, जिसकी महिमा का पार न मिले, उसको वहाँ अधिक भासे, पर्याय से अधिक भासे, उसको पर्याय का अभिमान रहे नहीं। आहाहा! यहाँ श्रुतज्ञान कहा।

अब **अवधिज्ञान...** क्षयोपशमभाव और अवधिज्ञान। आहाहा! अवधि(ज्ञान के) तो अवधि, परम अवधि आदि तीन भेद हैं न? सर्वावधि। आहाहा! वह तीनों—अवधि, परम अवधि, सर्वावधि वह भी एक पर्याय है। एक समय की पर्याय है। आहाहा! प्रभु तो उससे दूर है। जिसको इसका अन्दर अहंपना रहे। वह अन्दर जा सके नहीं। आहाहा! परमात्मा अखण्डानन्द प्रभु अवधिज्ञान से भी पार है। आहाहा! यहाँ तो थोड़ी-बहुत क्रिया करे तो ज्ञान होते हैं हो... प्रभु! बात बहुत कठिन है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सच्चा... आत्मा के आश्रय से जो दर्शन-ज्ञान हो वह कोई अलौकिक बात है। यह अवधिज्ञान तो पर के आश्रय से अनन्त बार हुआ। क्षयोपशमभाव। फिर भी वह क्षयोपशमभाव आत्मा में नहीं, द्रव्य में नहीं। आहाहा! मन:पर्ययज्ञान। चार ज्ञान में वह भी क्षयोपशमभाव है। मन का भाव जाने... आहाहा! यह तो मुनि को ही होता है, उनको अभिमान होता नहीं। आहाहा!

चार ज्ञान हो तो भी अपने को पर्याय में तो तुच्छ माने। कहाँ सर्वज्ञ केवलज्ञान। अनन्त... अनन्त... एक समय में अनन्त... अनन्त केवलज्ञान जाने, वह चीज़ क्या और यह मन:पर्ययज्ञान क्या? इसके क्षयोपशम का ज्ञानी को अभिमान होता नहीं और उस

चीज़ की दृष्टि होती नहीं। वह चीज़ अपने में है नहीं त्रिकाल में। आहाहा! और उस क्षयोपशम के ऊपर दृष्टि रहे, वहाँ तक समकित होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो पर्यायदृष्टि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है। प्रभु अन्दर परमात्मा पूर्णानन्द है, पूर्ण वीतरागस्वभाव से भरा पड़ा है। उसके अन्तर अनुभव बिना यह सारा अवधिज्ञान या सारा मन:पर्ययज्ञान... मन:पर्ययज्ञान तो मुनि को ही होता है। उनको तो आत्मज्ञान होता ही है। मन:पर्ययज्ञान का अभिमान है नहीं। कहाँ मैं, कहाँ केवलज्ञान? उसके समक्ष अनन्तवें भाग में तुच्छता-पामरता है। केवलज्ञानी के पास में मन:पर्ययज्ञानी छठवें गुणस्थान में मुनि आत्मज्ञान सहित, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के वेदनसहित... आहाहा! प्रचुर स्वसंवेदन। पाँचवीं गाथा में आया न? समयसार। मुनि तो प्रचुर स्वसंवेदन... चौथे गुणस्थान स्वसंवेदन आनन्द है, परन्तु प्रचुर नहीं। आहाहा! विशेष नहीं। अल्प आनन्द है, अतीन्द्रिय का नमूना आता है। आहाहा! वह भी यह पर्याय के अभिमान छोड़कर दृष्टि में जाये तो।

यहाँ कहते हैं कि मन:पर्ययज्ञान, क्षयोपशमज्ञान ऐसे चार ज्ञान आत्मा में है नहीं, द्रव्य में है नहीं। आहाहा! किसका अभिमान करना? किसको अपना मानना? किसको अपना मानना? पर्याय को अपना माने तो द्रव्य रह जाता है। द्रव्य को अपना माने तो पर्याय को माने कि अस्ति है, पर्याय की अस्ति है। परन्तु वह द्रव्य की अस्ति मानने पर जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अपनी पर्याय के अस्तित्व का स्वीकार करता है, वह पर्याय व्यवहारनय से मेरे में है, अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से है। अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय से है। क्योंकि वह द्रव्य अशुद्धपने हुआ है। आहाहा! और अशुद्धपना वह व्यवहार है। व्यवहारनय से मन:पर्ययज्ञान हो, पर मेरी चीज़ में अन्दर में वह है नहीं। प्रभु! उसको कितना करना पड़ता है! आहाहा! यह कोई बातचीत करने से या बाह्य कोई क्रियाकाण्ड से वस्तु मिले, ऐसा नहीं प्रभु! यह पर्याय में से तो मर जाये, तो जीवन-त्रिकाल जीवन का पता लगे। पर्याय कहो, व्यवहार कहो या अशुद्ध द्रव्यार्थिक कहो। उस ओर के जोर में पुरुषार्थ की अधिकता भासे तो अन्दर न जा सके। आहाहा! इसलिए यहाँ क्षयोपशमज्ञान कहा।

बाद में **कुमतिज्ञान...** कुमतिज्ञान वह अभव्य, भव्य दोनों को होता है। **कुश्रुतज्ञान...**

वह मिथ्यात्वसहित नव पूर्व का ज्ञान... ओहोहो! आत्मा के आनन्द के वेदन सिवाय नौ पूर्व का ज्ञान भी कुश्रुत है। आहाहा! और अवधि **विभंग...** विभंग मिथ्यादृष्टि को होता है। अनादि से अनन्त बार हुआ है। विभंगज्ञान में सात द्वीप, सात समुद्र देखते हैं। आहाहा! वह भाव भी अनन्त बार हुआ, उसमें अभिमान हुआ कि मैं तो सात द्वीप और समुद्र देखता हूँ, हमें ज्ञान ऐसा हुआ। भगवान! शान्त हो। प्रभु! यह विभंगज्ञान क्षयोपशमभाव तो अज्ञानी को होता है। वह पर्याय द्रव्य में है नहीं। विभंगज्ञान। ऐसे **भेदों के कारण अज्ञान तीन...** तीन हुए न अज्ञान? मति, श्रुत और विभंग।

और **चक्षुदर्शन...** वह भी क्षयोपशमज्ञान है। चक्षु में देखने की बहुत शक्ति हो। चक्रवर्ती को चक्षुदर्शन में देखने की इतनी शक्ति होती है कि अपने महल में से सूर्य में परमात्मा भगवान (की प्रतिमा है), उसका दर्शन करता है। आहाहा! क्या कहते हैं? भरत चक्रवर्ती समकिती अपने महल में... देव ने बनाये हुए हैं। पाँच महल हैं, देव ने बनाये हुए। महल पर रहकर, आँख का क्षयोपशम इतना है, सूर्य में प्रतिमा विराजती है। भगवान की जिनप्रतिमा है। उनको ऐसी आदत थी कि सुबह में उठकर मुँह धोकर (दर्शन करते) हैं। (लोगों को) आदत ऐसी पड़ गयी। अन्दर भगवान हैं न? परन्तु वह उसको पता नहीं तो सूर्योदय हुआ तो जय नारायण... सूर्य में जिनप्रतिमा है। जिनवर की प्रतिमा त्रिलोकनाथ की है। उसका दर्शन... आहाहा! क्षयोपशमभाव में... आहाहा! चक्षुदर्शन में भरत चक्रवर्ती करते हैं। यहाँ मनुष्य में रहते हैं। सूर्य कितना दूर! वहाँ प्रतिमा विराजती है मन्दिर में, उसका दर्शन करते हैं, फिर भी अभिमान नहीं। आहाहा!

अचक्षुदर्शन... पाँच इन्द्रिय में चक्षु छोड़कर चार इन्द्रिय... उसका भी उघाड़ विशेष हो तो जान सके। परन्तु वह तो पर्याय है। पर्याय का कोई मूल्य नहीं। मूल्य तो भगवान का है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ... भाषा है प्रभु! परन्तु यह वस्तु है ऐसी। अतीन्द्रिय आनन्द चैतन्यचमत्कार, जिसके अन्दर में अनन्त... अनन्त... चैतन्य सम्पदा की ऋद्धि-सम्पदा पड़ी है, ऐसा भगवान आत्मा, आहाहा! उसकी दृष्टि के समक्ष अचक्षुदर्शन भी कुछ है नहीं। आहाहा! अवधिदर्शन। इसकी कुछ है नहीं गिनती। आहाहा! उस भेदों के कारण दर्शन तीन हैं।

बाद में लेते हैं **काललब्धि...** काललब्धि ली है। वह काललब्धि नहीं। परन्तु

यह काललब्धि क्षयोपशमभाव को लिया है। पाँच बोल आता है न? पाँच बोल आता है न? क्षयोपशम, विशुद्धि। तो वहाँ काल नहीं आता है उसमें। यह काल जो है, वह काललब्धि क्षयोपशमभाव को कहा है। वह काललब्धि नहीं। जिस समय में जो पर्याय प्रगट होती है, जिस समय में जो पर्याय प्रगट होनेवाली है, उस समय में होगी, वह काललब्धि, उसकी बात यहाँ नहीं। यहाँ काललब्धि का अर्थ क्षयोपशमभाव है। आहाहा!

करणलब्धि... परिणाम शुभ होता है। आहाहा! **उपदेशलब्धि...** देशना। उपदेशलब्धि का अर्थ देशना। भगवान की वाणी सन्तों ने सुनाई और सुनी, उसका नाम देशना। देशनालब्धि तो समकित पानेवाले को मिलती ही है। फिर भी देशनालब्धि से समकित होता नहीं। देशनालब्धि ज्ञानी सुनाते हैं, देशना का ज्ञान होता है, परन्तु वह परलक्ष्यी ज्ञान है। वह देशनालब्धि से भी समकित होता नहीं। आहाहा! वह देशनालब्धि का भी अन्दर में अभाव है। आहाहा!

उपदेशलब्धि... उपदेश आया न? वह देशना ही है। **उपशमलब्धि...** वह विशुद्धि है। पाँच बोल आते हैं न? वह उपशमलब्धि विशुद्धिभाव में आती है (अर्थात्) राग की मन्दता। राग की मन्दता, वह शुभभाव है। यह भाई कहते थे न उसमें? कान्तिलाल ईश्वर मुम्बई में है न? वह कहते थे कि देखो! शुभभाव से समकित पाते हैं। विशुद्धिलब्धि उसमें हैं, उस कारण से पाते हैं। प्रभु! यह बात तो एक ओर रह गयी। आहाहा! परन्तु बाद में जैनशासन १५वीं गाथा मुम्बई में चली, सुनी। बोल गये। नरमाश से बोल गये कि हमको भाव दिगम्बर आपने बनाया। बापू! दिगम्बर कोई पक्ष नहीं है। दिगम्बर कोई वाड़ा नहीं। वस्तु का स्वरूप है, उसका नाम दिगम्बर धर्म कहने में आता है। आहाहा! आत्मा का और छह द्रव्य का स्वरूप है, उसको जिसने जाना, उसने आत्मा-सन्मुख की बात कही, वह जैनधर्म और जैनशासन है। आहाहा!

कौन से क्षण में देह पड़ जाये? किस क्षण में देह में कौन सा रोग आ जाये? किसका अभिमान? कहते हैं कि वह विशुद्धिज्ञान का भी अभिमान नहीं। शुभभाव मेरे आत्मा में है नहीं। आहाहा! वह शुभभाव की जो क्रिया, वह मेरे में है नहीं। आहाहा! **प्रायोग्यतालब्धि...** कर्म की स्थिति की मन्दता। प्रायोग्यता का अर्थ यह है। कर्म की जो

तीव्र स्थिति है, उसकी मन्दता (हो)। वह पाँचों बोल आत्मा में नहीं, पर्याय में है। आहाहा! **ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदकसम्यक्त्व...** वह भी आत्मा में त्रिकाल में नहीं; पर्याय में है। वेदक-वेदन। समकितमोहनीय की प्रधानता से वेदक समकित कहने में आया है। सम्यग्दर्शन तो है, परन्तु समकितमोहनीय अभी साथ में पड़ा है। फिर भी उसको समकितमोहनीय का बन्ध नहीं।

बन्ध तो तीन में से मिथ्यात्व का एक का ही बन्ध पड़ता है। क्या कहा, समझ में आया? मिश्र प्रकृति, समकितमोहनीय और मिथ्यात्व। तीन प्रकृति में से बन्धन का कारण तो एक मिथ्यात्व ही है। मिश्र और समकित (मोहनीय) बन्ध का कारण नहीं। आहाहा! वह भी अपने आत्मा में नहीं। वेदनसमकित भी अपने आत्मा में नहीं। आहाहा! **वेदकचारित्र**। क्षयोपशमचारित्र। आहाहा! आत्मज्ञानसहित आत्मा के आनन्द की ओर में चढ़कर जो अनादि राग और कषाय के साथ में... पड़खे को क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : बाजू.... बाजू...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाजू। सोनेवाला सोता है तो दायीं तरफ ठीक न पड़े तो करवट लेता है। ऐसे अनादि से अज्ञानी राग की एकता में था, वह गुलाँट खाकर करवट बदलता है। आहाहा! वह दिशा पलटता है। दिशा की दशा अन्तर है। अपनी दिशा की ओर के झुकाव में यह समकित है। पर की दिशा की ओर में झुकाव में समकित नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

अपनी दिशा दशा... जो समकित है, उसकी दिशा तो द्रव्य है। आहाहा! और रागादि की दशा है उसकी दिशा तो परद्रव्य आदि पर है। तो वह भी यहाँ कहा कि वेदकचारित्र भी आत्मा में नहीं। **और संयमासंयमपरिणति।** पंचम गुणस्थान। आहाहा! जिसमें सम्यग्दर्शन, वेदनसहित शान्ति की वृद्धि हो गयी। चौथे समकित में जो आनन्द का वेदन था, उससे पंचम गुणस्थान में प्रतिमाधारी को आनन्द बढ़ गया अन्दर। आहाहा! उसको यहाँ संयमासंयमपरिणति कहते हैं। आहाहा! मुनि कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ऐसा कहा कि मैं समयसार कहूँगा, परन्तु वह प्रचुर स्वसंवेदन मेरे वैभव से कहूँगा। मैंने सुना है, इसलिए कहूँगा—ऐसा भी नहीं।

मैं प्रचुर स्वसंवेदन निजवैभव से कहूँगा। वहाँ मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन है, तो पंचम गुणस्थान में उससे कम वेदन आनन्द का है और उससे थोड़ा कम चौथे (गुणस्थान में) आनन्द का वेदन है। वरना गुणस्थान नहीं (होता)। गुणस्थान नहीं है, ऐसा नहीं, परन्तु गुणस्थान मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प वेदन चौथे होता है और पाँचवें में विशेष, छठवें में (उससे) विशेष है। यहाँ कहते हैं कि वह सब क्षयोपशमभाव है। वह आत्मा में नहीं, द्रव्य में नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब समझना पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! जिसको दरकार हो, उसको समझना पड़े, प्रभु! उसका कारण है कि भूल बहुत ज्यादा है, भूल के प्रकार बहुत हैं। तो उसको निकालने को बहुत जानपना करना पड़ेगा। आहाहा! जो अल्प भूल है तो एकदम अन्दर जाते हैं तो छूट जाती है। बाहर में तो बहुत भूल—कि पार न हो, इतनी भूल है यह तो। आहाहा! वह मिथ्यात्व के शल्य... असंख्य प्रकार का क्या शल्य है? आहाहा! तो उसको जानना तो पड़ेगा, प्रभु! जाने बिना उससे दूर नहीं हो सकता। आहाहा!

औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं; नरकगति... वह आत्मा में नहीं। **तिर्यंचगति...** आहाहा! नरकगति में चौथे गुणस्थान तक की दशा हो, परन्तु वह आत्मा में नहीं। तिर्यंचगति में पंचम गुणस्थान तक (की दशा) हो, फिर भी आत्मा-द्रव्य में नहीं। **मनुष्यगति...** आहाहा! मनुष्यगति में १३-१४ गुणस्थान हो, परन्तु वह आत्मा में नहीं। आहाहा! आया है? जीव अधिकार में आया है। ६८ गाथा अन्तिम। गुणस्थान वह आत्मा नहीं। आहाहा! केवलज्ञान तेरहवाँ गुणस्थान भी आत्मा नहीं। आहाहा! एक समय की स्थिति है। प्रभु तो अनादि-अनन्त सत्ता सत्स्वरूप है। उसकी सत्ता की तो क्या बात! यहाँ तो चमत्कारिक अन्दर चैतन्यरत्न भरे हैं। चमत्कारिक अनन्त चैतन्यरत्न आत्मा में भरे हैं। आहाहा! उसका जो अनुभव वह भी, कहते हैं कि अन्दर में नहीं, द्रव्य में नहीं। वह पर्याय है। आहाहा!

देवगति... चौथे गुणस्थान तक होता है। सर्वार्थसिद्ध का देव। वह भी द्रव्य में नहीं। आहाहा! **ऐसे भेदों के कारण गति चार; क्रोधकषाय,...** आत्मा में नहीं। आहाहा!

मानकषाय... आत्मा में नहीं। **माया कषाय...** आत्मा में नहीं। **लोभकषाय,...** आत्मा में नहीं। **ऐसे भेदों के कारण कषाय चार; स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग ऐसे भेदों के कारण लिंग तीन...** वह आत्मा में नहीं। आहाहा! यह शरीर का दिखाव है, वह (लिंग) नहीं है। अन्दर में जो पुरुषवेदन का उदय है, उसको यहाँ वेद कहा है। शरीर का आकार स्त्री का, पुरुष का, वह (वेद) नहीं, वह तो पारिणामिकभाव जड़ का है। आहाहा! अन्दर विषय वेदना का जो विकल्प उठता है स्त्री, पुरुष या नपुंसक को, वह वस्तु में है नहीं। आहाहा! नपुंसक, नारकी असंख्य नपुंसक है। सब—असंख्य नारकी नपुंसक हैं। फिर भी क्षायिक समकित वहाँ है। श्रेणिक राजा पहली नरक में गये हैं। हैं नपुंसक। आहाहा! वह भी जानते हैं कि यह नपुंसकवेद मेरे द्रव्य में नहीं। आहाहा! ओहोहो! ऐसी बात है। भाई! कितने भेद! याद रहना मुश्किल है। फुरसत न मिले। आहाहा!

यह लिंग तीन हैं। अब, **सामान्य संग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक,...** है। मिथ्यादर्शन के भेद असंख्य और अनन्त हैं। परन्तु सामान्य की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक है। बन्ध अधिकार में आया है। सुना है? पर को मैं जिला सकता हूँ, पर को मैं मार सकता हूँ, पर को सुख-दुःख कर सकता हूँ, वह (मान्यता) मिथ्यात्व है। उसमें लिखा है। मिथ्यात्व का एक भाग हैं। आहाहा! क्या कहा? वह कोई पूरा मिथ्यात्व है नहीं। पर को मैं जिन्दा रख सकता हूँ, पर को मैं मार सकता हूँ, पर को मैं मदद कर सकता हूँ... आहाहा! ऐसी बात जो है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मिथ्यादर्शन—उल्टी मान्यता... आहाहा! नपुंसक आदि वेद हो तो... और समकिती हो तो मिथ्यादर्शन नहीं। वह अज्ञान एक है। यहाँ क्या कहा? कि **सामान्य संग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक...** है। ऐसे मिथ्यादर्शन के असंख्य प्रकार हैं। आहाहा! मिथ्यामान्यता का सूक्ष्म भेद लेने से, एक सूक्ष्म विकल्प की तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी मेरी चीज़ है ऐसा यदि हो, तो तीर्थंकरगोत्र बँधे नहीं और मिथ्यादृष्टि है वह। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अज्ञान एक... सामान्य संग्रहनय है। **असंयमता एक...** सामान्य संग्रहनय है। **असिद्धत्व एक...** चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धत्व है। आहाहा! चौदह गुणस्थान तक

उदयभाव है, वह असिद्धभाव है, सिद्धभाव नहीं। आहाहा! **असिद्धत्व एक...** गजब बात है। चौदहवें गुणस्थान में असिद्धपना? सिद्धपना नहीं। दूसरी भाषा में कहे तो असिद्धत्व अर्थात् संसारपना। आहाहा! चौदहवें गुणस्थान तक संसारदशा है, पीछे सिद्धदशा होती है। असिद्ध(दशा) छूटकर सिद्धदशा होती है। आहाहा!

शुक्ललेश्या... वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! शुक्ललेश्या शुभभाव है। शुभभाव कषाय के साथ... कषायिक भाव-कषाय के साथ... शुभभाव कषाय, उसका नाम शुक्ललेश्या है। **पद्मलेश्या...** वह भी शुभभाव की मन्दता है। **पीतलेश्या...** वह भी शुभभाव की मन्दता है। **कापोतलेश्या...** वह अशुभभाव है। **नीललेश्या...** वह अशुभभाव है, **कृष्णलेश्या...** अशुभ है। **ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह...** है।

पारिणामिक भाव के तीन भेद इस प्रकार हैं... अब यह लिया। आहाहा! चार भाव तो उसमें नहीं। अब पारिणामिकभाव है, उसके भी तीन भेद हैं, परन्तु तीन भेद अन्दर में नहीं। आहाहा! **जीवत्वपारिणामिक...** तीन भेद। जीवत्वपारिणामिक सहजस्वभाव... सहजस्वभाव... जिसमें कोई उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की अपेक्षा नहीं। ऐसा निरपेक्ष भगवान जीवत्वपरिणाम है। **भव्यत्व-पारिणामिक...** वह भी पारिणामिकभाव में गिना है, परन्तु उसका तो अन्त आ जाता है। तीन क्यों लिये हैं? उसमें जीवत्वपरिणाम का अन्त नहीं आता। जीवत्व पारिणामिकभाव तो तीनों काल का है। भव्यत्व परिणाम का अन्त आ जाता है, सिद्ध होता है तो। सिद्ध में भव्यत्व परिणाम रहता नहीं।

प्रश्न-उत्तर में तो ऐसा लिया है भव्य-अभव्य... गोपालदास बरैया ने लिया है। परन्तु वह गुण लिया है। अपेक्षित है। भव्य भी गुण नहीं। गुण हो तो तीन काल रहना चाहिए। सिद्ध में भव्यत्व रहता नहीं। भव्यत्व की दशा जो होनी है, वह हो गयी। तो (सिद्ध को) भव्यत्व-अभव्यत्व का अभाव है। यहाँ आयेगा। चौदह मार्गणा है न? उसमें। भव्यत्व-अभव्यत्व सिद्ध में नहीं। आहाहा! भव्यपना सिद्ध में नहीं। भव्यपना तो प्राप्त होनेयोग्य की बात है। प्राप्त हो गया, फिर क्या रहा? आहाहा!

भव्यत्व-पारिणामिक... उसका अन्त आता है। **अभव्यत्वपारिणामिक...** वह

अनादि-अनन्त है। **यह जीवत्वपारिणामिकभाव भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है...** जीवत्व पारिणामिकभाव। आहाहा! त्रिकाल जीवत्व पारिणामिकभाव भव्य और अभव्य... भव्यों को, अभव्य को—दोनों को पारिणामिकभाव सदा रहता है। अभव्य को पारिणामिकभाव? आहाहा! जीव है न? तो पारिणामिकभाव है। आहाहा! और पारिणामिकभाव का अन्त नहीं आयेगा पर्याय में। परन्तु पारिणामिकभाव है... वह चर्चा बहुत हो गयी है कि अभव्य को पारिणामिकभाव कहा और भव्य को पारिणामिक (कहा)। भव्यता का तो अन्त हो गया, सिद्ध हुए वहाँ भव्य(पना) रहता नहीं। अभव्य है, वह तो अनादि-अनन्त है तो भी पारिणामिकभाव से है। आहाहा!

उसका द्रव्य पारिणामिकभाव से है, गुण पारिणामिकभाव से है। अभव्य की पर्याय भी पारिणामिकभाव से है। अशुद्ध पारिणामिकभाव, वह पर्याय अनादि-अनन्त है। परन्तु है पारिणामिक की पर्याय। जयधवल में उदयभाव को पारिणामिकभाव में गिना है। आहाहा! जयधवल है न? धवल, जयधवल, महाधवल। जयधवल में उदयभाव को पारिणामिकभाव में गिना हैं। क्योंकि पारिणामिक की पर्याय है। आहाहा! भले नाश न हो अभव्य को, परन्तु है तो पारिणामिकभाव त्रिकाल, उसकी यह पर्याय। आहाहा! पारिणामिकभाव अभव्य को होता हैं।

इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया। पाँच भावों में क्षायिकभाव कार्यसमयसारस्वरूप है। अब उसमें से सार निकाला कि पाँच भावों में क्षायिकभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि वह कार्यसमयसारस्वरूप है। आहाहा! परमात्मा, वह कार्यसमयसारस्वरूप हैं। **(क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत...** आहाहा! भगवान का गर्भ, जन्म होता है तो त्रिलोक में खलबलाहट होती है। जरा आनन्द आता है। वह आनन्द आत्मा का नहीं, हों! आत्मा का आनन्द आये उसको तो जन्म-मरण का अन्त आ जाये। आहाहा! भगवान के जन्म में, गर्भ में चौदह ब्रह्माण्ड में आनन्द होता है। यह तो स्वभाविक कल्पना के सुख का आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द तो एक समय में आया, उसकी मुक्ति होगी ही होगी। आहाहा!

भगवान के जन्म में आनन्द होता है। लोग ऐसा मान ले कि नारकी को भी आनन्द

होता है। परन्तु कौन-सा आनन्द प्रभु? अतीन्द्रिय आनन्द जो आता हो तो सब नारकी समकिती हो जाये। आहाहा! वह बाहर का आनन्द शुभभाव, वह आनन्द में गिनने में आया है। लौकिक बाहर का। आहाहा! कहो सेठ! यह सब याद रखना पड़ेगा। आहाहा! बहुत कठिन काम, प्रभु! वीतराग का मार्ग गहन है, प्रभु! बहुत गहरा है और बहुत गूढ़ है। आहाहा! इसका अभिमान... पर्याय में अभिमान की चीज़ काम नहीं करेगी। आहाहा! किंचित् भी जो पर्याय का अभिमान रह गया, जानपने का, धारणा का—ऐसा कोई रह गया तो जन्म-मरण मिटेगा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **पाँच भावों में क्षायिकभाव कार्यसमयसारस्वरूप है; (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत... प्रक्षोभ=खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।** आनन्दमय खलबली अर्थात् क्या? यह सुख। अतीन्द्रिय आनन्द नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द एक समय आये तो पूरा हो जाये—जन्म-मरण का अन्त आ जाये। आहाहा! समझ में आ गया? तीर्थंकर के जन्म के समय में, गर्भ समय में लोक में आनन्द होता है, वह अतीन्द्रिय आनन्द की बात नहीं है। शुभभाव का सुख। शुभभाव होता है। आहाहा!

कार्यसमयसारस्वरूप है; (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले... यह तो तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले... क्या तर्क आया? यहाँ अन्दर तर्क आया था कि यह तो केवलज्ञान तीर्थंकरत्व द्वारा ही क्यों लिया? (अकेला) केवलज्ञान द्वारा क्यों न लिया? समझ में आया? वरना यह तो केवलज्ञानियों को भी होता है। परन्तु उस समय ऐसा मस्तिष्क में आ गया था कि यह अमृतचनद्राचार्य भविष्य में तीर्थंकर होंगे उसकी ना नहीं। यहाँ केवलज्ञान नहीं लिया। तीर्थंकरत्व लिया। आहाहा! वह और यह पद्मप्रभमलधारिदेव... एक श्लोक ऐसा है उसमें से निकाला था। ओहोहो! यह पुरुष भविष्य में तीर्थंकर होंगे। समझ में आया?

यहाँ दृष्टान्त में तीर्थंकरपना लिया। दृष्टान्त में केवलज्ञान नहीं लिया। आहाहा! समझ में आया? उसका कोई हेतु है या नहीं? मुनि का अक्षर अहेतुक नहीं है। भगवान! शान्ति से समझना चाहिए प्रभु! यह **तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल**

केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को (तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को)... देखो! पेटा में यह लिया। उपलक्षण में सामान्य केवली लिये, मुख्य में तीर्थंकर लिये। आहाहा! **अथवा सिद्ध भगवान को होता है।** तीनों को होता है। तीर्थंकर होनेवाले हैं, उसको होता है, केवली को होता है और सिद्ध को होता है। तीर्थंकर न हो तो सामान्य प्राणी केवल (ज्ञान) प्राप्त करता है तो उसको भी यह भाव होता है। आहाहा!

औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक भाव संसारियों को ही होते हैं,... देखो! उदय, उपशम, क्षयोपशमभाव संसारियों को ही होते हैं। **मुक्त जीवों को नहीं।** सिद्ध में नहीं। सिद्ध में तो क्षायिकभाव है। अब जरा शब्द आया है।

पूर्वोक्त चार भाव आवरण संयुक्त होने से... आहाहा! क्षायिकभाव आवरण संयुक्त है। उसका अर्थ? कि आवरण का निमित्त का अभाव, इतनी अपेक्षा लागू पड़ती है। उदय आदि में उदय है निमित्त प्रत्यक्ष। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में निमित्त के अभाव की अपेक्षा आती है, इसलिए उसको आवरणवाला कहने में आया है। आवरणवाला है नहीं। आहाहा! **चार भाव आवरण संयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** क्षायिकभाव मुक्ति का कारण नहीं है। उसका कारण? कि उसके आश्रय से मुक्ति (होती) नहीं है। आहाहा! वह पहले भी आ गया था।

चार भाव आवरणयुक्त होने से... ओहोहो! पहले भी आ गया था। चार भाव से अगोचर... आ गया था पहले। आत्मा चार भाव से अगम्य है। उसका अर्थ? चार भाव में उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में तो (आत्मा) गम्य है, परन्तु चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया? उससे चार भाव से अगोचर कहा था और यहाँ चार भाव आवरण संयुक्त कहे। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी तो अलौकिक है, भाई! आहाहा! केवलज्ञान के आढ़तिया हैं-केवलज्ञान के मार्ग पर चलनेवाले हैं सनतों। आहाहा!

चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति कारण नहीं हैं। क्षायिकभाव में कर्म के क्षय के निमित्त की अपेक्षा आती है। उस कारण से उसको आवरणसंयुक्त कहा है। समझ में आया? जिसमें कोई अपेक्षा नहीं। परम पारिणामिक प्रभु अन्दर जिसको कोई अपेक्षा ही नहीं कि उत्पन्न हुआ या व्यय हुआ, घट गया या बढ़ गया—कुछ है नहीं। अनादि

अनन्त एकरूप सत्प्रभु विराजता है, उसको पारिणामिकभाव कहते हैं। क्षायिकभाव (को) तो आवरणवाला कहते हैं। क्योंकि आवरण नाश होता है। इतनी अपेक्षा लेकर... आहाहा!

चार भाव आवरण संयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है... आहाहा! त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है, **ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** आहाहा! चार भाव की दृष्टि छोड़ दे, चार भाव का भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! क्षयोपशम और क्षायिक का भी लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! यहाँ तो जरा थोड़ा क्षयोपशमज्ञान हुआ, पाँच, दस, पच्चीस लाख, करोड़ श्लोक याद रह गये तो... ओहोहो! प्रभु! उसमें क्या है?

यह कहते हैं कि **त्रिकाल निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव की (-पारिणामिकभाव की) भावना से पंचम गति में...** उसकी भावना से। चार भावना से नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव से मुक्ति होती है, उसके आश्रय से नहीं। चन्दुभाई! ऐसा सुना कहाँ हो? धन्धे में केवल पाप में सारा दिन रचा-पचा रहे। यह करना... यह करना... यह करना... होली सुलगती है सारा दिन कषाय। प्रभु अन्दर... आहाहा! चार भाव से भी लक्ष्य में आयेगा नहीं। क्योंकि चार भाव पर्याय हैं। पर्याय के लक्ष्य से भगवान दृष्टि में आता नहीं। आहाहा! उस कारण से त्रिकाली निरुपाधि जिसका स्वरूप है... तीनों काल उपाधिरहित परमपारिणामिक चैतन्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप, सहजस्वभावस्वरूप, वस्तु अनादि-अनन्त... आहाहा!

ऐसे निरंजन निज परम... निरंजन—जिसमें अंजन नहीं, मैल नहीं। **निज परम पंचमभाव की...** निज परम पंचमभाव की। अपना पंचम भाव। भगवान का पंचम भाव भी नहीं। आहाहा! भगवान का पंचम भाव पर लक्ष्य करकेगा तो राग आयेगा। मोक्ष अधिकार में कहा है कुन्दकुन्दाचार्य ने। '**परदव्वादो दुग्गइ**' भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे ऊपर लक्ष्य करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। अष्टपाहुड़ में है। दुर्गति का अर्थ? सुगति—स्वर्गादि मिलेगी, वह दुर्गति है। मोक्षगति नहीं मिलेगी। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! ऐसा कहा है। '**सदव्वा हु सुग्गइ परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा पाठ है अष्टपाहुड़ में। आहाहा!

अपना शुद्ध पारिणामिक स्वभावभाव से ही मोक्ष की दशा उत्पन्न होती है। बाकी चार भाव से उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो थोड़ा शुभभाव करे तो ऐसा हो जाये कि हमने ऐसा किया और हम बढ़ गये। आहाहा! ऐसे पंचम भाव को **निरंजन निज परम पंचमभाव निरुपाधिक जिसका स्वरूप...** ऐसी भावना से... भावना में तो क्षायिक, क्षयोपशम आया। समझ में आया? पंचम भाव की भावना में उपशम, क्षयोपशम तो आया, परन्तु उसके आश्रय से नहीं (होता) इतना बताने की बात है। आहाहा! प्रभु की गहन गति है, प्रभु! दिगम्बर आचार्यों की गजब कोई गहन गति है। आहाहा! केवलज्ञान को खड़ा कर दिया। केवलज्ञानी (का विरह) भुला दिया। केवलज्ञान नहीं है, (परन्तु) ऐसी वाणी निकली कि उसमें केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, ऐसा बता दिया। पंचम काल के प्राणी को पंचम भाव... आहाहा!

केवलज्ञान तो अभी क्षायिकभाव है, परन्तु यह तो पंचम भाव त्रिकाल निरुपाधि... आहाहा! जिसका स्वरूप है, निरंजन है। निज परम पंचमभाव की भावना से... यह भावना तो है क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक। पुण्य नहीं, शुभ नहीं, उदय नहीं। चार भाव में उदयभाव नहीं। तीन भाव लेना। आहाहा! उस **भावना से पंचमगति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! वर्तमान काल में मोक्ष जाते हैं महाविदेह में। छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ (जीव) तो त्रिकाल मुक्ति (को पाते हैं)। (अभी) भरत, ऐरावत में नहीं (पाते)। जहाँ भगवान विराजते हैं, वहाँ छह महीने और आठ समय में ६०८ जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं। भगवान विराजते हैं वहाँ। आहाहा! साक्षात् प्रभु विराजते हैं, वहाँ ६ महीने और ८ समय में ६०८ जीव मुक्ति पाते हैं।

वर्तमान काल में जाते हैं। वर्तमान काल शब्द से भले यहाँ पंचम काल की बात नहीं। मनुष्य क्षेत्र में। आहाहा! भविष्यकाल में जायेंगे, भूतकाल में गये थे, वह एक ही भाव है। पंचम भाव की भावना एक ही बात मोक्ष का कारण है, दूसरा कोई कारण नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक - ३०-०७-१९७९
गाथा-४१, श्लोक-५८, ५९ प्रवचन-१०

नियमसार। अन्तिम पेरेग्राफ है न? मुमुक्षु... फिर से लेते हैं। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना में द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की है तो दृष्टि करने को कहा है। उसके बिना सारी पर्याय... यहाँ तो चार भाव आवरणसंयुक्त कहा। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, परिणाम तो उदयभाव है, वह तो विकार है, भोगी के भोग का मूल है। वह अभी आयेगा। आहाहा! वह कोई धर्म नहीं। उसके आश्रय से, कारण से धर्म होगा शुभ करते... करते, ऐसा नहीं। परन्तु तीन भाव जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है, वह पर्याय है। पर्याय में निमित्त की अपेक्षा और निरपेक्षता आती है। इतनी अपेक्षा है तो चारों भाव को आवरणसंयुक्त कहा।

अथवा क्षायिकभाव की पर्याय—दशा हो, परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! शरीर की क्रिया कहीं रह गयी। अन्दर व्रत, तप, भक्ति के परिणाम तो कहीं रह गये। सूक्ष्म बात है, भाई! मूल बात जैनदर्शन की कोई अलौकिक है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि चार भाव अर्थात् उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक... क्षायिक में तो केवलज्ञानादि नौ लब्धि... नौ लब्धि... आहाहा! वह भी पर्याय है। दृष्टि जिसको करना है, उसे पर्याय ऊपर लक्ष्य करना नहीं। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत करना हो, उसको तो चार भाव से रहित अन्दर ज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करने से दृष्टि होती है। आहाहा! कठिन बात है।

साधारण प्राणी... भले छह खण्ड के राज में है, वह समकिती है तो समकिती की दृष्टि द्रव्य पर है। वह अखण्ड को साधते हैं। आहाहा! बाह्य छह खण्ड तो साधते नहीं, परन्तु पर्याय खण्ड है—भेद है, उसको भी साधते नहीं। आहाहा! समझ में आया? चार भाव का लक्ष्य छोड़ना। क्योंकि वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। तुम सुनो, तुम्हें योग्य लगे तो ग्रहण करो। आहाहा! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कहा मार्ग मेरे में है और मेरी भावना द्रव्यस्वभाव पर है। आहाहा! दूसरी चीज पर्याय होती है, राग होता है।

राग का निमित्त भी हो, अन्दर में कर्म निमित्त हो, बाह्य में भगवान की प्रतिमा आदि हो, परन्तु वह कोई आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! है। परन्तु आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली भगवान चैतन्य विलास का... सहजात्मस्वरूप का विलास जो आत्मा, सहज चैतन्य का विलासस्वरूप प्रभु... आहाहा!

त्रिकाली द्रव्य जो है, वह सहज चैतन्य का विलासस्वरूप, चैतन्य का आनन्दस्वरूप वह भगवान आत्मा पूर्ण है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। चारित्र तो पीछे बापू! सम्यग्दर्शन पहले... आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय करके प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, पीछे द्रव्य का विशेष आश्रय करने से चारित्र उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से चारित्र नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? उस कारण से इस चार भाव को आवरणसहित कहा है। आश्रय करनेयोग्य नहीं उस कारण से।

त्रिकाल निरुपाधिक जिसका स्वरूप है। आहाहा! भगवान द्रव्य-वस्तु अन्दर है, वह त्रिकाल निरुपाधिक है। जिसमें उपाधि—कर्म का निमित्त और राग की उपाधि अन्दर है ही नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम, वह उपाधि हैं, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! निरुपाधि भगवान आत्मा जिसका स्वरूप ही निरुपाधि है।

ऐसे निरंजन... जिसमें अंजन अर्थात् मैल का भी अभाव है, रागादि का। **निज परम पंचम भाव...** आहाहा! सुबह में आया था न? कि द्रव्य मोक्ष की पर्याय को भी करता नहीं। आहाहा! गजब बात है। दया, दान राग का तो कर्ता आत्मा है नहीं और जो कर्ता माने वह आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। आहाहा! बात कठिन लगे, भाई! यहाँ कहते हैं कि **निरंजन निज परम पंचम भाव...** त्रिकाली निरंजन... ऐसे तो शुद्ध आत्मा की बात तो वेदान्त भी बहुत करता है। कबीर में भी आती है। परन्तु यह नहीं, ऐसी नहीं। सब एकान्त की बात है। आहाहा!

यह तो परमात्मा एक समय में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में, पारिणामिक स्वभावभाव वर्तमान में पूर्ण है। त्रिकाल की अपेक्षा तो पीछे। वर्तमान में ही पूर्ण है। अनन्त गुण का कन्द, खान, वर्तमान में परमपारिणामिकभाव पूर्ण है। ऐसे परिणामिकभाव की... देखो! आहाहा!

भावना से... क्षायिकभाव की भावना से और उदयभाव की भावना से नहीं। दया, दान, व्रत, उसकी भावना से आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है, आहाहा! या चारित्र होता है—ऐसा नहीं। चाहे तो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले, परन्तु वह सब राग है। आहाहा! तो उसके आश्रय से भावना नहीं होती। आहाहा! भावना तो है उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय, परन्तु वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय के आश्रय से यह भावना नहीं होती। ऐसी बात है।

पंचम पारिणामिकस्वभाव भगवान आत्मा जिसमें किसकी भावना से? भावना अर्थात्? चिन्तन और कल्पना नहीं। परमभाव परमात्मा द्रव्यस्वभाव उसकी एकाग्रता, उसको ध्येय बनाकर... आहाहा! वस्तु के स्वभाव को ध्येय बनाकर अन्तर में एकाग्र होना, यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय द्रव्य में एकाग्र होने से होती है। आहाहा! अभी फुरसत कहाँ मनुष्य को। अन्तर यह मूल चीज़ है। वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' छहढाला में आता है। छहढाला। 'मुनिव्रत धार...' अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, उसके लिये चौका करके (बनाया हुआ) आहार तीन काल में ले नहीं। प्राण जाये तो भी एक उसके लिये बनाया पानी का बिन्दु ले नहीं, ऐसी तो जिसकी क्रिया है। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। समझ में आया? आहाहा! तब इसका पंच महाव्रत निरतिचार था। परन्तु वह सब राग है।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतम ज्ञान बिना लेश...' आत्मज्ञान... राग से भिन्न भगवान, ऐसा त्रिकाली आत्मा का आत्मज्ञान। आत्मज्ञान का अर्थ? गुण का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान, ऐसे नहीं। निमित्त का ज्ञान, राग का ज्ञान, यह तो नहीं; परन्तु पर्याय का ज्ञान और गुणभेद का ज्ञान भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आता है न छहढाला में। आतमज्ञान बिन... आत्मा जो चिदानन्द प्रभु है, उसको स्पर्श करना। आहाहा! उसका अनुभव करना। ऐसी चीज़ भावस्वरूप जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्रतारूपी भावना करना। ऐसी बात है।

उस **भावना से पंचम गति में...** मोक्ष में इस भावना से **मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं त्रिलोकनाथ परमात्मा। उनकी

उपस्थिति में सन्त आत्मध्यानी, ज्ञानी, अन्तर पंचम भाव की भावना से अभी भी मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करते हैं—मोक्ष होता है। परन्तु यह भाव यह। व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शन होता है और मोक्ष होता है या पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है—ऐसा नहीं। अरेरे! यह समझने की कुछ दरकार ही नहीं। है अन्दर?

पंचम भाव की भावना से पंचम गति... आहाहा! पंचम गति अर्थात् सिद्ध, मोक्ष। मुमुक्षु अर्थात् वर्तमान काल में... मुमुक्षु इसको कहिये कि जिसको परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की भावना करके परम आनन्द स्वभाव में से प्रगट हुआ है और वह उपादेय त्रिकाल आत्मा को मानते हैं। पर्याय को भी उपादेय नहीं मानते, हेय मानते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले आ गया है। संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय को परद्रव्य मानते हैं समकिती। शरीर, वाणी, पैसा, धूल तो कहीं परद्रव्य रह गया। उसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध है नहीं। परन्तु अन्दर में राग आया, उसके साथ भी आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! परन्तु अन्दर में से स्वभावभावना हुई, शुद्ध परम पारिणामिकस्वभाव की भावना हुई, वह संवर और निर्जरा है।

मोक्ष जाते हैं। है? **मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! तथापि वह पर्याय के आश्रय से नहीं। उसको यहाँ तो परद्रव्य कहा है। आहाहा! अरर! पैसा, शरीर, धूल, यह तो परद्रव्य है, उसके साथ तो तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में पंचम भाव की भावना से अन्तर में संवर और निर्जरा शुद्ध आनन्द का स्वाद आया, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, इसको भी परद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! है? यह तो बात चल गयी है पहले। पहली गाथा में ३८ में। छह तत्त्व परद्रव्य है। आहाहा! सुबह में भी आया था कि द्रव्यस्वभाव वह वस्तु को द्रव्य दृष्टि कराने की बात है। लाख बात, करोड़ बात सब क्रियाकाण्ड करे, वह कोई धर्म का साधन है नहीं। आहाहा! एक ही परमात्मा पूर्ण स्वरूप से विराजमान अन्दर है, उसकी भावना अर्थात् अन्तर की एकाग्रता, उसका आश्रय करने से जो कोई सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! उस परद्रव्य का आश्रय करनेयोग्य नहीं और परद्रव्य के आश्रय से मुक्ति नहीं होती। स्वद्रव्य की पंचमभाव की भावना से मुमुक्षु को मुक्ति होती है। आहाहा!

चार भाव नहीं हैं ऐसा नहीं। धर्मी को अपनी पर्याय में कमजोरी से राग आता (नहीं) ऐसा नहीं। राग आता है, परन्तु वह राग बन्ध का कारण है। और जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ संवर, निर्जरा, परन्तु उसके आश्रय से भी विकल्प उत्पन्न होता है, राग उत्पन्न होता है। निर्विकल्पता उत्पन्न होती है त्रिकाली भगवान ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप प्रभु, आहाहा! उसका आश्रय करने से और उसकी भावना—उसकी एकाग्रता करने से पंचम गति को, मोक्ष को मुमुक्षु जाते हैं। वह आया न? पंचम गति अर्थात् मुक्ति।

पंचम भाव की भावना से पंचमगति को। आहाहा! भाषा तो सादी है। भाव तो बहुत गम्भीर है, भाई! अरेरे! जिन्दगी चली जाती है, उसमें यह बात अन्तर में दृष्टि न हुई तो चौरासी के अवतार में भटकेगा, नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! समझ में आया? वर्तमान काल में पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं। भले यहाँ से नहीं (जाते, परन्तु) महाविदेह में वर्तमान में पंचम भाव की भावना से—पंचम भाव त्रिकाल, उसकी भावना—वर्तमान एकाग्रता, उससे—मुमुक्षु जीव मोक्ष जाते हैं। आहाहा!

(भविष्य काल में) जायेंगे... भविष्य जो वर्तमान से अनन्त काल है... तो (हमेशा) एक ही सिद्धान्त है। पंचमभाव भगवान पूर्णानन्द की पकड़ करके, एकाग्रता करके पंचम गति को भविष्य में भी प्राप्त होंगे। आहाहा! **और (भूतकाल में) जाते थे।** अनन्त काल गया उसमें भी जो मोक्ष गये, वह अन्तर स्वभाव जो पूर्णानन्द प्रभु, उसमें एकाग्र होकर, ध्येय बनाकर लीन होते-होते भूतकाल में भी मुमुक्षु पंचम भाव की भावना से मुमुक्षु पंचम गति को प्राप्त होते थे। आहाहा! ऐसा मार्ग यह है। एक ओर मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालनी... कौन निकाले? सुन तो सही! वह तो सब जड़ की क्रिया होनेवाली है, वह होती है। आत्मा निकाल सकता है? आहाहा! क्या आत्मा मन्दिर बना सकता है? आत्मा राग बनाता है, ऐसा मानना भी मिथ्यादृष्टि का कर्तव्य है। तो पर को मैं करता हूँ मन्दिर को, वह तो महामिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीत मिथ्यात्व। वह अगृहीत है। आहाहा! ऐसी बात है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में यह लिया है। उसकी टीका पद्मप्रभमलधारि

मुनि करते हैं। भविष्य काल में जायेंगे और भूतकाल में जाते थे। भूतकाल में यह पंचमभाव की भावना से मोक्ष गये। अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त केवली होकर जो मोक्ष गये, वह सब परमभाव परमात्मस्वरूप त्रिकाल (की भावना से)। 'घट घट अन्तर जिन बसे...' वह जिन परमात्मस्वरूप वीतरागस्वरूप प्रभु ही आत्मा है। वह परमात्मा का आश्रय करने से, एकाग्र होने से भूतकाल में भी मोक्ष गये हैं, वर्तमान में भी जाते हैं और भविष्य में भी जायेंगे। आहाहा! एक ही मार्ग है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ नो पंथ।' दो नहीं। यह एक ही पंथ है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' यह श्रीमद् में आता है। आत्मसिद्धि। आहाहा! अरे! सुनने को मिलता नहीं और इस जगत के रस में फँस गया। आहाहा! पैसा... पैसा... पैसा। नहीं थे दो अरब चालीस करोड़। और अभी एक मुम्बाई में आया था सेठ चिमनभाई का। विष्णु था। पचास करोड़ रुपये। बड़ा नाम सुनकर आवे तो सब आवे। पचास करोड़। क्या नाम उसका?

मुमुक्षु : रामदास।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, रामदास।

मुमुक्षु : आपने कहा रामदास सेठ। उसने कहा सेठ न कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ न कहो। वह जाने कि महाराज... लोग सेठ कहते हैं तो हम भी सेठ कहते हैं। ऐसा कहा कि रामदास सेठ, ऐसा न कहना मुझे। महाराज! आपके पास हम सेठ कहाँ? ऐसा कहते थे। स्त्रियाँ सब जैन श्वेताम्बर। घर में सब स्त्रियाँ बेटे की बहू, उसकी बहू सब श्वेताम्बर जैन और लड़के आदि सब वैष्णव। पचास करोड़ और बहुत करोड़ की आमदनी है, दो-चार-पाँच करोड़ की तो। एक तो यहाँ है न? श्वेताम्बर यहाँ जामनगर में। जामनगर में। जामनगर में एक है न? अपने रामजीभाई का बेटा नौकर है न? आये थे, व्याख्यान में आये थे। क्या नाम इसका?

मुमुक्षु : .... कम्पनी ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कम्पनी... नाम जगजीवनभाई। साढ़े तीन करोड़ की एक साल की आमदनी। धूल। आमदनी हो साढ़े तीन करोड़ की। और अभी बढ़ानेवाले हैं। एक साल की पाँच करोड़ की आमदनी बढ़ानेवाले हैं व्यापार। धूल में है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तेरी क्षयोपशम संवर, निर्जरा हुई, उसका आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा! कठिन बात, बापू! जैनधर्म... कोई अभी तो गड़बड़... गड़बड़... बस यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... व्रत करो, तप करो, अपवास करो, करना... करना... करना... करना... वह मरना। मैं करूँ, (ऐसा) राग का कर्ता होता है, वह तो स्वरूप का मृत्यु (होता) है। आहाहा! स्वरूप तो ज्ञाता-दृष्टा पंचम पारिणामिकस्वभाव है, उसको राग का कर्तापना सौंपना, वह सारा चैतन्य को विकारी बनाना है। विकारी बनाना है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की वाणी साक्षात् परमात्मा महाविदेह में करते हैं। महाविदेह में करते हैं, यह वाणी यहाँ आयी है। आहाहा!

(अब ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं—) अब टीकाकार के दो श्लोक हैं। ५८ श्लोक।

(आर्या)

अंचितपंचमगतये पंचमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः।
संचितपंचाचाराः किंचनाभावप्रपंचपरिहीणाः ॥५८॥

श्लोकार्थ - (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप)... शुद्ध चैतन्य की पर्याय, निर्मल वीतरागी पर्याय, वह **पाँच आचारों से...** पाँच वीतरागी पर्याय के आचरण से **युक्त और किंचित भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित...** आहाहा! विकल्प का भी परिग्रह नहीं। शरीर का तो नहीं। आहाहा! **ऐसे विद्वान...** उसको विद्वान कहते हैं। आहाहा! बाकी सब पढ़े लिखे... आहाहा! एक विद्वान समयसार में आता है कि विद्वान निश्चय को—भूतार्थ को छोड़कर व्यवहार का आश्रय करता है, वह मिथ्यादृष्टि विद्वान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया न? श्लोक है न? क्या कहते हैं? विद्वान कहा न? विद्वान होकर निश्चय के आश्रय की बात छोड़कर व्यवहार के कर्तव्य में पड़ा है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि संसार में भटकनेवाला है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस काल में होंगे भगवान के समय में, कुन्दकुन्दाचार्य के समय में। तब तो लिखा है उन्होंने। अब यह आचार्य महाराज कहते हैं। यह आचार्य नहीं, यह तो मुनि हैं, टीकाकार पद्मप्रभमलधारि मुनि।

तो कहते हैं कि विद्वान इसको कहिये, आहाहा! कि **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिये...** आहाहा! सिद्धगति पंचम है। यह चार गति—नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव से भिन्न। सिद्ध गति की प्राप्ति करने के लिये। आहाहा! **पंचमभाव का स्मरण करते हैं।** भगवान का स्मरण करते हैं, ऐसा नहीं लिया। भगवान का स्मरण करते हैं तो वह विकल्प-राग है, बन्ध संसार का विष है। आहाहा! मोक्ष अधिकार में लिया है। वह शुभभाव जो आता है, वह विषकुम्भ है। गजब बात है, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा भाई ने?

मुमुक्षु : किसी शास्त्र में आता है कि शुभ से शुद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं आता। यह तो कथन है व्यवहार का। साधन से साध्य, ऐसा कथन है। व्यवहारनय का कथन है। कथन, जैसे घी का घड़ा कहने में कथन है। आहाहा! ऐसे कथन है। वह तो समझने की बात है, वस्तु ऐसी है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उस कथन को मानना या नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन तो समझने में कथनभेद आये बिना रहे नहीं। कितना भी अधिक हो बुद्धिवाला... ८वीं गाथा में आता है न? आत्मा को समझाना है, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जो वीतरागी पर्याय को प्राप्त, वह आत्मा। वह भेद हुआ, वह भी व्यवहार हुआ। ८वीं गाथा समयसार। समझ में आया? कि यह भेद भी नहीं। यह तो समझने के लिये भेद से कथन है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन, भाई! अरे! अनादि काल से भटकता है नरक और निगोद। निगोद का दुःख का, नरक का दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। प्रभु! तेरे एक क्षण के नरक के दुःख करोड़ भव में और करोड़ जिह्वा से न कह सके, प्रभु! तूने ऐसे दुःख सहन किये हैं। एक मिथ्याश्रद्धा के कारण से। श्रद्धा को

सुधारी नहीं है, बाकी वर्तन इतना किया, महाव्रत, अणुव्रत, ऐसा-फैसा, दान, इतना, दया इतनी, व्रत इतने, बारह-बारह महीने के अपवास... आहाहा! इन सबमें धर्म माना, मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया? यह सब नरक, निगोद का कारण है। वह आयेगा कलश में।

परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति... यहाँ मुनि को लिया है। मुनि है, वह तो सर्वथा परिग्रह रहित है। अन्दर विकल्प का परिग्रह भी है नहीं। राग का परिग्रह उसको है नहीं। पकड़ नहीं। पकड़ तो ज्ञायकस्वभाव की पकड़ है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव के अनुभव से मोक्ष को प्राप्त होता है। **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिये पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** विद्वान! आहाहा!

भगवान का स्मरण करना, वह तो छोड़ दिया, वह तो राग है। आहाहा! राग का स्मरण करना, वह भी राग है तो छोड़ दिया और पर्याय का स्मरण करना, उसमें भी राग आता है तो वह भी छोड़ दे। आहाहा! त्रिकाली द्रव्य का स्मरण करने से पंचम गति का कारण उत्पन्न होता है। आहाहा! दर्शनशुद्धि बहुत अलौकिक बात है। उसके बिना सब बातें हैं। कितने भी आचरण की क्रिया करे, वह सब एक बिना का शून्य है। एक के बिना का शून्य। लाख, करोड़ शून्य करे, परन्तु एक के बिना संख्या में न गिनने आये। ऐसे पंच महाव्रत, घोर नग्नपना, वनवास में रहना, वह श्लोक आता है उसमें, सब संसार है। आहाहा!

अपना आत्मा अन्दर राग से रहित और पर्याय से रहित है, ऐसी चीज़ का अवलम्बन न लिया और उसका आश्रय न लिया तो सब फोगट है। आहाहा! वह कहते हैं, **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** प्रभु का स्मरण नहीं करना? आहाहा! प्रभु तुम हो। मोक्षपाहुड़ में तो ऐसा कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गइ**' प्रभु! हमारा तू स्मरण करेगा तो भी तेरे राग और दुर्गति होगी। तेरी चैतन्य की गति नहीं मिलेगी तुझे। आहाहा! वह सन्तों को कहाँ जगत की पड़ी है? नागा, बादशाह से दूर। समाज समतौल रहे या नहीं? कुछ पड़ी नहीं। समाज निन्दा और विरोध करेगा या नहीं? कुछ पड़ी नहीं। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६वीं गाथा है अष्टपाहुड़। अष्टपाहुड़ है

कुन्दकुन्दाचार्य का। मोक्षपाहुड़ हों। उसमें १६वीं गाथा है। लो, यह आया पृष्ठ पलटा तो। १६वीं गाथा। '**परदव्वादो दुग्गइ**' चिह्न किया है। यह चिह्न किया है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' परद्रव्य से दुर्गति होती है। तेरा लक्ष्य जो हमारे ऊपर जायेगा, भगवान कहते हैं, तो तुझे राग होगा। वह चैतन्य की गति नहीं, दुर्गति है। गजब बात है। आहाहा!

'**सदव्वा हु सुग्गइ**' पंचम पारिणामिकभाव जो स्वद्रव्य है, उसके आश्रय से तुझे सुगति अर्थात् मुक्ति मिलेगी। है? '**इय णाऊण**' परद्रव्य से, दुर्गति, पर का लक्ष्य करने से दुर्गति (होती है), चाहे तो तीन लोक के नाथ की प्रतिमा और भगवान साक्षात् हो। परन्तु उसका लक्ष्य करेगा तो परद्रव्य है तो तुझे राग ही होगा। चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा की अपेक्षा से राग उसकी गति नहीं, वह तो दुर्गति है। अरर! १६वीं गाथा। '**इय णाऊण सदव्वे कुणइ रई**' स्वद्रव्य में प्रेम करो, अन्दर आनन्द के नाथ में जा। आहाहा! और '**विरह इयरम्मि**' इतर अर्थात् दूसरे द्रव्य और पर्याय से विरति कर, विरम जा। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! १६वीं गाथा है।

मुमुक्षु : .... बढ़ने में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आया न कि स्मरण करना अपना। भगवान का आश्रय, परद्रव्य का आश्रय करने से राग होता है। पढ़ने दो पण्डितजी को। ....

मुमुक्षु : तो परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है, यह स्पष्ट जानो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानो।

मुमुक्षु : इसलिए हे भव्य जीवों! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य हैं, उनसे विरति करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरति करो। आहाहा! मोक्षपाहुड़ १६वीं गाथा है। यहाँ तो हजारों शास्त्र देखे हैं न? करोड़ों श्लोक देखे हैं। आहाहा! श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक देखे हैं। सब पहले से दुकान में पढ़ते थे। छोटी उम्र से—१९ वर्ष की उम्र से। ७० वर्ष हुए। दुकान घर की है न पिताजी की? पालेज। भरूच और वड़ोदरा के बीच में पालेज में दुकान है। अभी दुकान है। पैसा है, ४० लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है,

दुकान चलती है पालेज। लड़का है हमारे भागीदार का। बुआ का लड़का भागीदार था, उसका लड़का है। बहुत प्रेम करते हैं बेचारे बहुत। आठ दिन रहे, सुना और जब जाने का निश्चित हुआ कि कल तो महाराज जायेंगे तो सब रोने लगे। तीनों लड़के रोने लगे। अरेरे! हमको सुनने को कहाँ मिलेगा? बापू! उस धूल में कुछ है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वर्तमान पंचम भाव का स्मरण करना। आहाहा! वर्तमान में विराजमान भगवान पूर्ण है अन्दर। आहाहा! जिसमें मोक्ष की पर्याय का भी अभाव है, जिसमें संवर, निर्जरा, धर्म की पर्याय का भी अभाव है। ऐसा धर्मी द्रव्य जो तत्त्व है, उसका स्मरण करना अर्थात् एकाग्रता होना, वही धर्म और मोक्ष का कारण है। आहाहा!

५९ श्लोक। ५९ है न?

(मालिनी)

सुकृतमपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परमतत्वाभ्यासनिष्णातचित्तः।
उभयसमयसारं सारतत्वस्वरूपमं
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः॥५९॥

श्लोकार्थ :- **समस्त सुकृत...** उसका अर्थ। **सुकृत (शुभ कर्म)...** दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा वह शुभभाव है। आहाहा! वह **समस्त सुकृत भोगियों के भोग का मूल है;...** उसमें से तो भोग मिलेगा। आहाहा! शुभभाव से तो भोग सामग्री बाहर की मिलेगी। पैसा, लक्ष्मी, अरबोंपति, धूलपति। लक्ष्मीपति कहते हैं न? नरपति। पति कहाँ से? पर का पति कहाँ से आया तू?

मुमुक्षु : तो करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना यह। अन्तर भगवान है, उसके ऊपर दृष्टि करना, वह करना है। बाकी सब थोथा है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

परमेश्वर जिनेश्वरदेव उसका यह फरमान है कि तुम सुकृत जो शुभभाव... सुकृत लिया है न? शुभभाव दया, दान, व्रत, तप, अपवास, पूजा, भक्ति, रथयात्रा, लाखों करोड़ों का दान—उसमें जो राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। वह शुभभाव भोगी के

भोग का मूल है। उसमें तो भोग मिलेगा। भोगी के भोग का मूल है। आहाहा! उसमें आत्मा के आनन्द का अनुभव नहीं मिलेगा।

मुमुक्षु : धर्मादा में पैसे दें या नहीं दें?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन देते हैं?

मुमुक्षु : सेठिया लोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठिया कौन दे? धूल में भी नहीं देते। भाव करे कदाचित् तो राग की मन्दता है। लक्ष्मी जानी है तो जानेवाली जड़ की क्रिया है। क्या दे सकते हैं पर को? अन्य द्रव्य अन्य द्रव्य की पर्याय कर सकता नहीं तीन काल में, वह तो आ गया है। समझ में आया? आहाहा! यह हाथ ऐसा होता है, वह आत्मा से नहीं। अँगुली से नोट पकड़ना और देना, वह क्रिया आत्मा की नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अभी हीरा बताया हमको। वजुभाई हैं न? बहिन श्रावण शुक्ल दूज के दिन ६६ वर्ष के होते हैं न? तो वजुभाई हैं, वह दस हजार के हीरे लाये हैं बधाई को। बहिन को बधाई के लिये दस हजार। वजुभाई हैं वहाँ बैठे हैं। मुझे बताया था हीरा। थोड़ा ६६ है। इतने छोटे-छोटे हैं छोटे-छोटे। उसकी १० हजार की कीमत है। तो बहिन को बधाई के लिये। जन्मदिन है भाद्र शुक्ल दूज और गुरुवार। बहिन को तो कुछ नहीं है। वह मुर्दे की तरह खड़े रहेंगे। दस हजार के हीरे से बधाई देंगे सुबह में। वह तो शुभभाव है शुभभाव, वह धर्म नहीं। चार लोग बधाई देनेवाले हैं। इतनी बात आ गयी है कान में। क्या?

मुमुक्षु : लोभ कम करे इतना धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कम करे इतना पुण्य है, निश्चय से यह पाप है। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहें।' योगीन्द्रदेव में आता है। आता है? योगीन्द्रदेव (का) श्लोक है। मुनिराज दिगम्बर सन्त। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी—सम्यग्दृष्टि जन पुण्य को पाप कहें।' दुनिया माने, न माने, उसके घर पर रही। दुनिया की कुछ पड़ी नहीं कि दुनिया माने या दुनिया प्रसन्न हो। वह प्रसन्न

कहाँ से होगी ? अनादि से मूर्खता सेवन की है। आहाहा! और वर्तमान भी राग से लाभ होता है तो मूर्खता सेवन करते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

समस्त... समस्त शब्द पड़ा है न ? केवल शुभभाव का एक प्रकार नहीं, शुभभाव के असंख्य प्रकार हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, नामस्मरण, गुणस्मरण प्रभु का, अपना गुण-गुणी भेद का स्मरण, अपना द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद का विकल्प, वह भी शुभभाव है। आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ जाना ? अरे! उसको चीज़ जहाँ प्रभु विराजते हैं अन्दर। 'घट घट अन्तर जिन बसे और घट घट अन्तर जैन, मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' अपने मत की मदिरा पी है, अपनी मान्यता की मदिरा पी है तो 'मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' वह अन्दर वस्तु भगवान पूर्णानन्द से भरी पड़ी है, उसका आश्रय करना, वह अज्ञानी—मूर्ख नहीं समझते। आहाहा! बनारसीदास में।

बनारसीदास पहले व्यभिचारी आदमी (शृंगाररस के कवि) थे, बाद में सम्यग्दर्शन पाया है। आहाहा! वह ऐसा कहते हैं। 'घट घट अन्तर जिन बसे।' घट घट अन्तर वीतराग बसता है आत्मा वीतराग मूर्ति, मुक्तस्वरूप ही है अन्दर। राग और कर्म का सम्बन्ध मानना वह तो व्यवहार है। परमात्मा तो अन्दर राग और कर्म से रहित भिन्न मुक्तस्वरूप विराजमान है। अबद्ध कहो या मुक्तस्वरूप कहो। आहाहा! जो कोई अबद्धस्वरूप भगवान को जाने, अनुभव करे, १४वीं गाथा में कहा है, १५वीं में कि उसको जैनशासन का अनुभव है। बाकी राग का अनुभव वह अन्यमत का (अनुभव) है, जैनशासन का अनुभव नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

सुकृत... समस्त शब्द पड़ा है न ? असंख्य प्रकार के शुभभाव...आहाहा! मैं गुणी हूँ, गुण मेरे में भरे हैं, ऐसा एक विकल्प उठाना भी शुभभाव है। आहाहा! तो शुभभाव के असंख्य प्रकार में यह भी एक शुभभाव है। गजब बात है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता की... आहाहा! वह तो भजन याद आ गया। हिम्मतभाई ने याद किया था न ? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा। पर की आश कहाँ करे प्रीतम!' हे प्रिय! नाथ! तुम पर की आशा क्यों करते हो ? नाथ! आहाहा! 'प्रभु मेरे सब बातें तुम पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम! कौन सी बात तू अधूरा ?' कौन सी बात में प्रभु तू अधूरा है ?

कि प्रभु! तू पर की आश करता है राग की, पुण्य की, यह और यह। आहाहा! वह भजन है। समझ में आया?

'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' सब बातें पूरा। आनन्द में पूर्ण, ज्ञान में पूर्ण, शान्ति में पूर्ण, वीतरागभाव से पूर्ण, स्वच्छता से पूर्ण। आहाहा! 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम! तुम किस बात अधूरा।' प्रभु! तू कौन सी बात में अधूरा है कि तुम पर की आशा करते हो। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसी बात है। वह यहाँ कहते हैं, **समस्त सुकृत (शुभ कर्म)...** णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं ऐसा करना, वह भी शुभविकल्प—राग है। आहाहा! प्रभु! वीतराग मार्ग कोई भिन्न चीज़ है। अरे! दुनिया को सुनने मिले नहीं और बाहर के आचरण में यह क्रिया की, यह क्रिया की, यह क्रिया की। आहाहा!

'क्षण क्षण भावमरणे...' श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं। ३३ वर्ष में देह छूट गया। श्रीमद् राजचन्द्र। १६ वर्ष में मोक्षमाला बनायी। १६ वर्ष देह की उम्र, हों! आत्मा की तो उम्र है नहीं। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। १६ वर्ष की उम्र में ऐसा कहा। आहाहा! 'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो।' प्रभु! राग और पुण्य के परिणाम मेरे और मेरा कर्तव्य है वह 'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे..' प्रभु! तेरा क्षण-क्षण भावमरण होता है। ज्ञाता-दृष्टा का भाव छोड़कर राग का कर्ता होता है, नाथ! तेरे जीवन की मृत्यु होता है। डॉक्टर! ऐसी बात है। आहाहा! १६वें वर्ष में। 'बहु पुण्यकेरा पुंज' है न? वह बनाया है, १६ वर्ष की उम्र में।

'बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळयो,' शुभ पुण्य से मिला। 'तोये अरे... भवचक्रको आंटो नहीं ऐकेय टळयो।' प्रभु! मनुष्यभव मिला और भव के रहित तेरी दृष्टि नहीं हुई। प्रभु! तूने जीवन में क्या किया? आहाहा! 'बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळयो। तोये अरे... भवचक्रनो आंटो नहीं ऐकेय टळयो।' वह क्या कहते हैं? उसमें गम्भीरता है। १६ वर्ष की उम्र में बहुत क्षयोपशम था। हिन्दुस्तान में ऐसा कोई धर्मी नाम से, जैसा क्षयोपशम उनका था, ऐसा किसी का नहीं था। ऐसा क्षयोपशम!

'भवचक्रको आंटो नहीं ऐकेय टळयो।' वह क्या कहते हैं? प्रभु! तूने राग की प्रेम—प्रीति में, राग की एकाग्रता में तू घूमा ऐसा... ऐसा... ऐसा... तो ऐसे मार्ग में घूमता रहेगा तो गिर जाएगा। ऐसे घूमता है न चक्रवात? चक्रवात में ऐसा जो खड़ा रहेगा तो गिर जायेगा। परन्तु ऐसे चलते चक्र में गुलांट खाकर ऐसा (उल्टा) घूमे तो खड़ा हो जायेगा। क्या कहा, समझ में आया? १६वें वर्ष में कहते हैं। 'भवचक्रनो ऐकेय आंटो न टळयो।' कि राग की एकाग्रता में राग से धर्म होगा और पर्याय के आश्रय से धर्म होगा, वह मिथ्यात्व है। संसारचक्र का एक भी चक्कर तूने नहीं टाला। गुलांट खा जा एक बार। आहाहा! यह पर्यायबुद्धि और रागबुद्धि छोड़ और त्रिकाली द्रव्य की बुद्धि कर। तो एक चक्कर में तेरे भव का अन्त आ जाएगा। आहाहा! अरे! प्रभु! क्या करे? अरबोंपति मनुष्य अभी बहुत हैं। अमेरिका में तो अरबोंपति के ढ़ेर हैं। सबको अशान्ति है। अभी कहते हैं कि अरे! इसमें कुछ शान्ति नहीं। अब क्या करे? बाद में मुम्बई में कितने साधु होते हैं। हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... मुम्बई जाते हैं न, तब साधु हरे कृष्ण... वही की वही दशा है। हरे कृष्ण... हरे कृष्ण... करता है तो विकल्प-राग है। आहाहा!

कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये। भगवान आत्मा कृष्ण उसको कहते हैं कि जो अज्ञान का कृष अर्थात् छेद करके नाश कर दे। आहाहा! कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये। निजपद रमे सो राम कहिये। अपना निज आनन्दस्वरूप में रमे, वह राम है और राग में रमे, वह हराम हैं। आहाहा! आनन्दघनजी में आता है। श्वेताम्बर में आनन्दघनजी हुए थे। उसमें श्लोक है। सब देखा है। हमने तो हजारों श्लोक श्वेताम्बर के, दिगम्बर के (देखे हैं)। उसमें यह आया है। 'कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये।' राग का नाश करे और अपने स्वभाव की प्रतीति करके अनुभव करे, दशा शुद्धि करे, वह कृष्ण है। आहाहा!

'निजपद रमे सो राम कहिये।' रामचन्द्रजी जो मोक्ष पधारे हैं तो तुम भी राम हो। परन्तु राम कैसा? निजपद आनन्द के नाथ में रमे अन्दर आनन्द में, वह 'निजपद रमे सो राम कहिये, राग में रमे सो हरामी कहिये।' आहाहा! ऐसी बात हैं, मणिभाई! सुननी मुश्किल पड़े, बापू! सब खबर है। दुनिया की खबर नहीं? आहाहा!

यहाँ तो मुनिराज कहते हैं दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। आहाहा!

समस्त सुकृत भोगियों के भोग का मूल है... आहाहा! धर्मी के धर्म का यह मूल नहीं। आहाहा! शुभभाव का कर्ता होना और शुभभाव आना, उसका फल तो भोगियों का भोग है। उसमें कोई आत्मा-बातमा नहीं मिलेगा। धूल मिलेगी बाहर से पाँच-पचास करोड़ धूल। भोगियों का भोग का मूल शुभभाव है। धर्मी के धर्म का मूल शुभभाव नहीं। आया न उसमें? आहाहा! दिगम्बर सन्तों को जगत की कुछ पड़ी नहीं। समतौल समाज रहेगा, माने या न माने, वह उसके घर रहे। मार्ग यह है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' यह प्रसिद्ध करते हैं। समाज समतौल रहे, मानो, न मानो। संख्या सत् की कोई बहुत लोग हो तो सत्य है और थोड़े माने तो सत्य नहीं है—ऐसा कोई है नहीं। सत्य को माननेवाले की संख्या की आवश्यकता नहीं। आहाहा!

सुकृत... आहाहा! मुनिराज को दरकार है दुनिया की? **सुकृत भोगियों के भोग का मूल है...** वह तो। उसमें तो बाहर की लक्ष्मी और धूल मिलेगी। आहाहा! और उस तरफ का तेरा लक्ष्य वासना में जायेगा, मात्र पापभाव है। आहाहा! लक्ष्मी मेरी है, ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है। जीव का अजीव है? अजीव का अजीव है, वह जीव का अजीव हो गया? आहाहा! और वह अजीव मिला है, वह शुभभाव से मिला है, कहते हैं। वह भोगियों के भोग का मूल है चीज़। पन्नालालजी! कब आयेंगे तुम्हारे रतनचन्दजी! कल आनेवाले हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। रतनलाल कलकत्ता। उसके भाई हैं न! चाचा के बेटे। चाचा-बाबा के भाई हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सुन तो सही प्रभु! वह शुभभाव भोगी के भोग का मूल है। वह भोग शुभभाव धर्म का तो नाश करनेवाला है। शुभभाव... परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में मोक्ष अधिकार में कहते हैं, यह शुभभाव विषकुम्भ है। प्रभु अमृत का समुद्र है। प्रभु अमृत का समुद्र है आत्मा। अमृत से भरचक भरा है। आहाहा! ऐसी बात कठिन लगे। माने, न माने, जगत स्वतन्त्र है। मार्ग परमात्मा का तो यह है। आहाहा!

परम तत्त्व के अभ्यास में निष्णान्त चित्तवाले मुनीश्वर... परम तत्त्व भगवान आत्मा परम तत्त्व। संवर, निर्जरा से भी पार तत्त्व है। ऐसा **परम तत्त्व के अभ्यास में...** परम तत्त्व के अभ्यास में। आहाहा! **निष्णान्त चित्तवाले...** निष्णान्त अर्थात् जाननेवाले—

प्रवीण। **परम तत्त्व के अभ्यास में...** प्रवीण चित्तवाले। **मुनीश्वर भव से विमुक्त होने हेतु...** भव से विमुक्त होने हेतु। **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** आहाहा! दृष्टि में से पहले छोड़ो। रुचि को छोड़ो, पहले स्थिरता करके अस्थिरता को छोड़ो। छोड़ने के दो प्रकार हैं। आहाहा! पहले दृष्टि में से शुभभाव की रुचि छोड़ो। आहाहा! शुभकर्म को छोड़ो।

और सारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को भजो। समयसार आत्मा वही सारभूत तत्त्व है। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण, वह सारतत्त्व है। उभय समयसार कारणपरमात्मा त्रिकाल और कार्यपरमात्मा सर्वज्ञ परमात्मा—दो को भजो। आहाहा! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक - ३१-०७-१९७९
गाथा-४२, प्रवचन-११

नियमसार। ४२ गाथा। सूक्ष्म पड़े, परन्तु यह विषय अन्तर्दृष्टि का है। आत्मा अन्दर कैसा है, उसका अभिप्राय कराने का कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। अन्त में आयेगा। टीकाकार कहेंगे कि यह कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। पीछे है अन्त में। वह गाथा में अन्त में है न? है या नहीं? अन्तिम पंक्ति। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है।** आहाहा! **मंगल भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो..'** तीसरे नम्बर पर है। उनका यह अभिप्राय है। जगत को अभ्यास न हो और पर के अभ्यास में लग जाये तो उसको कठिन लगेगा। आहाहा!

अनादि काल से उसने अखण्ड आत्मा ध्रुव शुद्ध चैतन्यमूर्ति के ऊपर दृष्टि कभी की ही नहीं। मुनि व्रत लिया, पंच महाव्रत, व्रत, तप, भक्ति, पूजा अनन्त बार की। यह तो सब राग संसार है। आहाहा! संसार कोई आत्मा की पर्याय से दूर नहीं रहता है। क्या कहा? संसार उसकी विकारी पर्याय से दूर नहीं है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, मकान वह संसार नहीं, वह तो परचीज़ है। आहाहा! संसार उसको भगवान कहते हैं कि अखण्ड वस्तु जो अभेद है, उसको रागवाला मानना, पुण्यवाला मानना—ऐसा जो मिथ्यात्व, वह संसार है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : बेटा-बेटी....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुत्र-पुत्री संसार के नहीं, वह तो परवस्तु है। सुमनभाई पर है। भगवानजी! पुत्र-पुत्री संसार नहीं। 'संसरणं इति संसार' यह भगवान का वचन है कि अपना शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु, वहाँ से संसरण (अर्थात्) हटकर राग की एकता मानना, वह मिथ्यात्व संसार है। आहाहा!

यहाँ तो टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ने, यह गाथा सूक्ष्म लगे, इसलिए कहा कि कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। अन्त में है। तो कुन्दकुन्दाचार्य का

अभिप्राय समझना है कि नहीं उसको? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं ऐसा कहते हैं। तो उसमें अन्त का पद है। अभी तो णमो लोए सव्व साहूणं इतना पद आया। परन्तु अन्तिम का पद है वह चारों पद को लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं। आहाहा! णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं। णमो लोए सव्व साहूणं। आहाहा!

धवल में विशेष लिया है कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। तीनों काल में विराजनेवाले साधु आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द को वेदनेवाले, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द को वेदनेवाले, उनको साधु कहते हैं। वह त्रिकालवर्ती वर्तनेवाले साधु को नमस्कार किया है। धवल में पाठ है। तो यह शब्द पाँचों पद को लागू पड़ता है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, ऐसा पाठ है। यह तो संक्षिप्त पाठ करके बोला जाता है। समझ में आया? णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। भूतकाल में अरिहन्त हो गये हैं और भविष्य में होंगे। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। आहाहा! णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। यह णमोकार का पाठ सच्चा, पूरा है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आईरियाणं। आईरियाणं... यह पद देखकर... एक स्थानकवासी साधु है सुशीलकुमार। वह ऐसा कहता है कि देखो, णमो लोए सव्व साहूणं कहा, (उसमें) जैन का साधु और पर का साधु भी लेना। यह झूठ बात है।

मुमुक्षु : विनय मिथ्यात्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विनय मिथ्यात्व है। सुशीलकुमार है। स्थानकवासी। अमेरिका भी गया था मुँहपत्ती सहित। लोगों को बाहर की पड़ी है। सब इकट्ठा हो, हो..हा.. हो..हा... धूल में भी है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं। वह कौन? कि जो जैन का साधु है, जिसको आत्मा का अतीन्द्रिय अनुभव है, प्रचुर वेदन सर्वज्ञ की आज्ञा के प्रमाण है। महाव्रत आदि का विकल्प वह कोई चारित्र नहीं, वह कोई साधुपना नहीं। आहाहा! अन्तर आनन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा का अनुभव... अभिप्राय से अनुभव करके प्रथम तो सम्यग्दर्शन होता है। पीछे अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना,

अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता का—आनन्द का भोजन करना, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उग्रपने लेना, उसका नाम जैन का साधुपना है, भाई! वह तो जैन के अतिरिक्त दूसरे (कहीं) है नहीं। वह कहे, सबको लगे। सव्व लोए ऐसा कहा है न? सव्व लोए का अर्थ? पूरे लोक में इस तरह के साधु हों तो उन सबको नमस्कार है। समझ में आया?

तो यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय बहुत सूक्ष्म लिया है। ४२ गाथा।

चउगइभवसंभमणं जाउजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति॥४२॥

नीचे (हरिगीत)।

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक जरा नहीं,
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहीं॥४२॥

किसको? यह पूर्णानन्द नाथ जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसमें यह कुछ है नहीं। इस ओर टीका है।

द्रव्यकर्म अर्थात् जड़कर्म, भावकर्म अर्थात् शुभ-अशुभ परिणाम—इसका **स्वीकार न होने से...** वस्तु भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें शुभभाव का स्वीकार न होने से... आहाहा! शुभ और अशुभभाव उसमें हैं नहीं, उसका अर्थ स्वीकार न करने से। आहाहा! ऐसी बातें। **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म...** पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, अपवास आदि के भाव, वह सब भावकर्म हैं। मैं अपवास करूँ, मैं ऐसा करूँ। उपवास, वह अलग चीज़ है। यह तो अपवास है। राग में एकाकार होकर मैं अपवास करता हूँ, इसका त्याग करता हूँ, तो यह अपवास—माठावास है।

उपवास तो उसको कहते हैं परमात्मा, पूर्णानन्द का नाथ जिसमें चार गति के भ्रमण की पर्याय भी नहीं। ऐसी चीज़ समीप में... 'उप' में (अर्थात्) समीप में अन्तर वसना, उसका नाम उपवास है, बाकी सब अपवास है। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। चतुर्गति भ्रमण, **जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।** वस्तु में परिभ्रमण नहीं। आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु शुद्ध स्वभाव का दल-पिण्ड जो सम्यग्दर्शन का विषय है, सम्यग्दर्शन वह द्रव्य के आश्रय से होता है

ऐसा जो द्रव्य चैतन्यवस्तु, उसमें चार गति के भ्रमण की अवस्था का अभाव है। आहाहा! देवगति भी उसमें है नहीं। अभी आगे मार्गणा में विशेष लेंगे पीछे। अभी यहाँ तक लिया है। पीछे तो सिद्धगति की पर्याय भी द्रव्य में नहीं, ऐसा आगे लेंगे। आहाहा!

यह तो प्रभु का मार्ग है, बापू! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की पुकार है। महाविदेह में वहाँ प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य गये थे।। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से यह संदेश लाये। प्रभु का यह संदेश है। वीर (प्रभु) का तो विरह हो गया, परमात्मा मोक्ष पधारे। चौबीस तीर्थंकर अरिहन्तपद में नहीं रहे। वह तो सिद्धपद में णमो सिद्धाणं में चले गये। सीमन्धर भगवान णमो अरिहंताणं में हैं। जिनको वाणी और शरीर आदि हैं, चार कर्म भी बाकी हैं और चार घातिकर्म का अभाव हुआ है। शरीर सहित, वाणी सहित है उसको अरिहन्त कहते हैं और वाणी और शरीर छूट जाता है, केवल आत्मा रहता है, उसको सिद्ध कहते हैं। चौबीस तीर्थंकर वर्तमान में णमो सिद्धाणं चले गये। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वर्तमान में णमो अरिहन्ताणं में विराजते हैं। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं।

भगवान ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू ऐसा महत् स्वरूप अन्दर है कि जिसकी महत्ता का पार नहीं। आहाहा! जिस में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण भरे हैं कि वह अनन्त की संख्या का अन्त नहीं। आहाहा! ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ वस्तु, उसमें चार गति के भ्रमण का अभाव है। आहाहा! जहाँ दृष्टि देने से चार गति का भ्रमण नाश होता है। आहाहा!

जैसे वृक्ष में पुष्प आता है पुष्प। परन्तु फल जब आता है तो पुष्प गिर जाता है, फूल। ऐसे भगवान आत्मा में राग और द्वेष और अज्ञानभाव है, परन्तु जब आत्मा का आनन्द का आश्रय लिया तो वह फूल खिरकर आत्मा का फल आया। आहाहा! समझ में आया? वह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है। पूर्ण स्वरूप में चार गति का भ्रमण का अभाव है, ऐसी जब दृष्टि हुई तो उसमें से सम्यग्दर्शन का फल आया। सम्यग्दर्शन का फल आया, तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष एकताबुद्धि का पुष्प था, वह खिर गया— नाश हो गया। आहाहा! **चार गतियों का भ्रमण नहीं है।**

अब कहते हैं, **नित्य-शुद्ध चिदानन्दस्वरूप कारणपरमात्मास्वरूप...** आहाहा!

नित्य रहनेवाला आत्मा अन्दर और वह भी शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु अन्दर। ऐसा कारणपरमात्मास्वरूप... ऐसा कारणपरमात्मा आत्मा। आहाहा! ऐसा स्वरूप जीव को... ऐसा स्वरूप जीव को... **नित्य-शुद्ध चिदानन्दस्वरूप कारणपरमात्मास्वरूप जीव को...** आहाहा! **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से...** प्रभु में तो विभाव-जीवदशा का ग्रहण नहीं, ऐसी वह चीज़ है। आहाहा!

जिसमें **विभाव परिणति का अभाव होने से जन्म, जरा...** नहीं। वह वस्तु में जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं। आहाहा! प्रभु तो निरोगी अनन्त आनन्द का कन्द पड़ा है। आहाहा! जन्म-जरा की दशा से रहित पूर्णानन्द का नाथ अन्दर... पूर्ण परमात्मास्वरूप जीव कहा या नहीं? परमात्मास्वरूप जीव कहा। भाषा ली है, कारणपरमात्मास्वरूप जीव... अरे! कैसे बैठे? आहाहा! अनादि से भटका, बाहर में भटकता है। राग की क्रिया मेरी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम राग विकार, यह मेरी क्रिया है, उससे मुझे लाभ होगा। मिथ्यात्व का परिभ्रमण है सब। आहाहा!

यहाँ प्रभु कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है। आता है न अन्त में? **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मास्वरूप...** चिदानन्दरूप कारणपरमात्मा-स्वरूप। आहाहा! जहाँ दृष्टि देना है, ऐसी चीज़। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि द्रव्य पर होती है, द्रव्य कैसा है? आहाहा! अभी चौथे गुणस्थान की बात है। श्रावक और मुनिपना वह दशा तो कोई अलग है। आहाहा! यह कोई अलौकिक बातें हैं। वर्तमान चलती है, वह सब गड़बड़ है। आहाहा! यहाँ तो नित्य शुद्ध चिदानन्द ज्ञानानन्दरूप... ज्ञानानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप ऐसा जीव... आहाहा! यह जीव सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा!

वह विषय कराने को यह कहते हैं। समझ में आया? कि प्रभु चिदानन्दस्वरूपरूप अन्दर परमात्मस्वरूप जीव तुम हो... तुम परमात्मस्वरूप जीव हो। यदि परमात्मस्वरूप न हो तो पर्याय में परमात्मस्वरूप आयेगा कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अरेरे! सुनने मिले नहीं सच्ची बात और जिन्दगी मजदूरी... मजदूरी... करके चली जाये। मजदूरी सारी। यह पैसेवाले बड़े मजदूर हैं। ऐई! शान्तिभाई! बड़े झबेरी हैं।

२५-२५ लोग तो काम करते हैं हीरा घिसने का। बड़ी... आहाहा! वह सब मजूदरी। मजदूर है जगत में। राग की क्रिया करके उनको लाभ होगा, बड़ा मजदूर मिथ्यात्व का है। आहाहा! यहाँ तो सन्तों को कोई जगत की पड़ी नहीं। दिगम्बर सन्तों नागा बादशाह थी आघा। जगत को बैठे न बैठे, समतोल समाज रहे या न रहे, उसकी दरकार नहीं। मार्ग यह है। धन्नालालजी! आहाहा!

ऐसे **विभाव परिणति का अभाव होने से...** भगवान में। भगवान आत्मा में जन्म नहीं। जन्मे कौन? है चिदानन्द परमात्मास्वरूप, उसमें जन्म कहाँ? उसमें **जरा...** जीर्ण अवस्था शरीर की होती है न? जरा। वह आत्मा में है नहीं। वह तो जड़ की दशा है। **मरण...** देह का छूटना और आयुष्य की योग्यता और अपनी योग्यता प्रमाण में देह में रहना और फिर देह से छूट जाना, वह मरण। वह द्रव्य में है नहीं। आहाहा! चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप जीव, उसमें यह मरण है नहीं। मरे कौन? आहाहा! जन्मे कौन? आहाहा! **रोग...** नहीं। रोग तो जड़ की पर्याय है। आत्मा में रोग है नहीं। **शोक नहीं है।**

चतुर्गति (-चार गति के) जीवों के कुल... कुल हैं। नीचे है। **कुल मिलकर एक सौ साढ़े सत्तावन लाख करोड़...** कुल। कुल क्या कहते हैं? जैसे गोबर होता है न? क्या कहते हैं भैंस का? गोबर-गोबर। गोबर में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वह भिन्न-भिन्न जाति के उत्पन्न होते हैं, वह उसका कुल कहते हैं। और गोबर की स्थिति योनि उसको योनि कहते हैं। गोबर की स्थिति है, वह योनि है, ऐसी ८४ लाख योनि है। और उसमें उत्पन्न भिन्न-भिन्न जाति का जीव... कीड़ा-कीड़ा क्या कहते हैं? कीड़ा सूक्ष्म भिन्न-भिन्न जाति के। भिन्न-भिन्न जाति है वह भिन्न-भिन्न कुल है। समझ में आया? आहाहा!

वह भिन्न-भिन्न कुल और भिन्न-भिन्न योनि प्रभु आत्मा में है नहीं। आहाहा! जिसको यह भिन्न-भिन्न योनि और भिन्न-भिन्न कुल का अभाव करना हो, तो जिसमें नहीं है, वहाँ दृष्टि देनी पड़ेगी। आहाहा! वह है नहीं। है? **कुल तथा योनि के भेद जीव में नहीं है ऐसा...** यह सब बाद में पढ़ लेना। **कुल मिलकर एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ है।** वह कुल आत्मा में नहीं। योनि ८४ लाख कहते हैं न? ८४ लाख योनि हैं। जीव को शरीर उत्पन्न होने के लायक ८४ लाख योनि है। जैसे गोबर, पानी, दूध सड़ता हो तो

जीव (उत्पन्न) होता हो तो वह सब योनिभेद हैं। योनिभेद में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की योग्यता से योनिभेद... योनिभेद ८४ लाख योनि है और उसमें उत्पन्न होनेवाले के एक सौ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ कुल है। अरेरे!

मुमुक्षु : .... पैदा होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें पैदा होता नहीं, यह कहते हैं। आहाहा! वह तो शरीर उत्पन्न होताा है। भगवान आत्मा तो उससे रहित है। आहाहा! मानता है अज्ञानी। इसलिए मान्यता छुड़ाने को तो यह बात कहते हैं। प्रभु! तुम कौन है? कहाँ है? नाथ! आहाहा! तेरी चीज तो नित्य चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप तुम आत्मा हो। उसमें योनि और कुल का तो प्रभु! अभाव है। भले कुल का एक साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ और योनि के चौरासी लाख। वह हम पढ़ते नहीं। साधारण है न!

चौरासी लाख योनिमुख है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! जिसे चौरासी लाख योनि में उत्पत्ति न करनी हो और जिसमें एक करोड़ साढ़े सत्तानवें लाख करोड़ा करोड़ कुल में उत्पन्न न होना हो, तो जिसमें है नहीं, उसकी दृष्टि करनी पड़ेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपना अभिप्राय और अपनी भावना के लिये यह बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरी भावना के लिये यह ग्रन्थ बनाया है। ऐसा कोई समयसार, प्रवचनसार में कोई शब्द नहीं। यह तो मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा!

'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाचार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।' यह कुन्दकुन्दाचार्य, आहाहा! धर्म के नायक, वह ऐसा कहते हैं, आहाहा! मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! तो कहते हैं, यह जीव में, चौरासी लाख योनि और कुल आत्मा में है नहीं। आत्मा प्रभु तो सच्चिदानन्द... कहा न? नित्य शुद्ध चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप जीव है। वहाँ दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। इस भेद पर दृष्टि देने से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा!

पीछे। **सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त...** जीव के चौदह भेद हैं। **अपर्याप्त, स्थूल एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त,**

चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त... मन बिना के। और **संज्ञी पंचेन्द्रिय...** मनवाले। **ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं।** जीव के चौदह भेद वह द्रव्य में नहीं। जीव के स्थान जीव में नहीं। आहाहा! चौदह भेद जो हैं पंचेन्द्रिय, मनवाले आदि, वह आत्मा—द्रव्य में नहीं। ऐसी द्रव्य पर दृष्टि करने से चौदह प्रकार का जीवस्थान छूट जाता है। आहाहा!

अब मार्गणास्थान। गति... गति... गति के दो अर्थ किये हैं। एक द्रव्यसंग्रह में १३वीं गाथा में चार गति भाई ली है और धवल में पाँच गति ली है। क्या कहा? कि नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। वह चार गति जीवद्रव्य में नहीं है। परन्तु उसके उपरान्त गति में सिद्धगति भी ली है धवल ग्रन्थ में। द्रव्यसंग्रह की १३वीं गाथा में चार गति तक ली है, गति के भेद में। मार्गणा(स्थान) में—गति के भेद में। धवल में तो गति का पाँच बोल लिया है।

प्रभु आत्मा त्रिकाली भगवान शुद्ध चिदानन्द प्रभु, जिसको आत्मा का स्वीकार करना है, ऐसी चीज में वह चार गति तो नहीं, परन्तु सिद्ध की पर्याय भी उसमें है नहीं। समझ में आया? यह बात सुनने को मिले नहीं (और) ऐसे के ऐसे भटकता है अनादि से। बाहर में कुछ क्रियाकाण्ड में रुक गया। व्रत किया, तपस्या की, भक्ति की, मन्दिर बनाया, हमेशा मन्दिर के दर्शन किया। हमेशा किया तो क्या है? वह तो राग है।

मुमुक्षु : क्रिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब कुछ समझने जैसा है। अभी क्या कहे बापू? अभी की क्रिया और पहले के मुनि की क्रिया... आहाहा! उसके लिये पानी का बिन्दु बनाया हो तो प्राण जाये तो भी नहीं ले। और यहाँ तो मुनि को भोजन (देना हो तो) दस सेर-अधमन पानी बनाओ, रोटी बनाओ, चौका बनाओ, मौसंबी, आम का रस। हमारे तो सब अनुभव हो गया है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... महापाप है, उसके लिये बनाया है तो। वह बात हुई थी, भाई! वह क्षुल्लक सहजानन्द है न? तो सहजानन्द वर्णी। उसको ख्याल तो आया कि

यह हमारे लिये सब बनाते हैं। और मुझे मिले जयपुर में। जयपुर में मिले। तो मैंने कहा, भाई! मैं क्या करूँ? मैं किसी का अनादर कर सकता नहीं। दो प्रश्न पूछे थे। एक यह कि राग-द्वेष को पुद्गल क्यों कहा? कि भाई निकल जाते हैं तो आत्मा के नहीं। दया, दान, व्रत, वह पुद्गल का कहा। एक बात। आहाहा! दूसरी बात क्या कही थी?

मुमुक्षु : उद्दिष्ट आहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : उद्दिष्ट आहार। जयपुर। उद्दिष्ट आहार की व्याख्या (आपकी तरफ से अनुकूल हो जाये तो)... क्या करे? मैं तो... उद्दिष्ट आहार क्षुल्लक भी अभी लेते हैं। मैं तो द्रव्यलिंगी क्षुल्लक को भी मानता नहीं हूँ। शान्ति से कहा था। अनादर करके नहीं। वस्तु का स्वरूप यह है। आहाहा! उद्देशिक लेनेवाला क्षुल्लक, वह क्षुल्लक नहीं और उसके लिये बनाया चौके का (आहार) लेनेवाला वह साधु नहीं। बापू! मैं तो ऐसा मानता हूँ, कहा। सुनते थे। खास आये थे मिलने को। मैंने कहा, किसी का पक्ष यहाँ नहीं, यहाँ तो सत्य यह है।

यहाँ यह कहते हैं कि पाँच गति आत्मा में है नहीं। आहाहा! सिद्धगति पर्याय है न? वह तो अपने आ गया। मोक्षपर्याय आत्मा में है नहीं। सुबह में। बन्ध और मोक्ष का कारण और बन्ध और मोक्ष का परिणाम दोनों ही जीवद्रव्य में नहीं। सुबह में आ गया है। यह तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। उनकी भावना के लिये बनाया है। यह क्लास आया तो कहा, सुने तो सही। आहाहा!

तो कहते हैं कि गति पाँच, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! यह द्रव्य तो ज्ञान चिदानन्दरूप नित्य शुद्ध चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप यह जीवद्रव्य है वस्तु। उसमें पाँच गति का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? बात तो ऐसी है, प्रभु! अरेरे! देह छूटकर चला जायेगा, बापू! एक ... टुकड़ा नहीं आयेगा साथ में। और राग हुआ, वह भी साथ में नहीं आयेगा। राग पहले किया तो उसका पुण्य बँध गया रजकण। वह रजकण रजकण के कारण से साथ आयेगा। क्या कहा? कि पूर्व में कुछ शुभभाव—भगवान का दर्शन किया, दान, दया, व्रतादि का भाव किया हो, तो उस भाव में तो पुण्य का रजकण बँधे। तो जब मरता है—देह छूटता है, तब तो वह भाव है नहीं। उस समय जो भाव है

कि मैं रागी हूँ या मैं पुण्यवाला हूँ... पुण्य की क्रिया से (धर्म मानना) मिथ्यात्व है। तो वह मिथ्यात्वभाव साथ में आयेगा। और पूर्व में शुभभाव किया था, उसका पुण्यबन्ध का जो रजकण है, वह रजकण साथ में आयेगा।

पद्मनन्दि पंचविंशति। मुनि हैं पद्मनन्दि आचार्य। बहुत अच्छा ग्रन्थ है। वनशास्त्र है। उसको श्रीमद् ने वनशास्त्र कहा है। वह तो व्याख्यान में सब आ गया है। पद्मनन्दि। उसमें पद्मनन्दि तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम तो राग भी नहीं, पुण्य भी नहीं, कोई पर्याय भी मेरे में नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहना था कुछ दूसरा। लक्ष्य फिर गया।

मुमुक्षु : पद्मनन्दि पंचविंशति।

पूज्य गुरुदेवश्री : पद्मनन्दि पंचविंशति नहीं। करना था कुछ दूसरा। क्षण में फिर जाये पर्याय क्षयोपशम... आहाहा!

कहते हैं कि सिद्ध की पर्याय भी अपने में नहीं। आहाहा! वहाँ ऐसा लिया है, सम्यग्दृष्टि दो-तीन होगा हिन्दुस्तान में। ऐसा लिखा है। दो-तीन लिखा है। ज्ञानार्णव में तो पीछे टोडरमल ने स्पष्टीकरण किया कि दो-तीन नहीं, परन्तु थोड़ा लेना। थोड़ा। लाखों-करोड़ों में कोई... आहाहा! यह पद्मनन्दि पंचविंशति में लिया है। आहाहा! आत्मा में यह चीज़ है ही नहीं। रागादि कोई... हमें यह कहना था बराबर। उसमें यह आया। याद आया।

कि तुम जायेगा अकेला, उसके साथ कर्म भी अपने कारण से आयेगा। ऐसी गाथा है। क्या कहा? तुम अकेला जायेगा, उसके साथ पूर्व में कोई शुभभाव किया हो। कोई... है ही नहीं। उसका परमाणु है, वह परमाणु भी अपने कारण से साथ में आयेगा, आत्मा के कारण से नहीं। यह कहना था लो। यह बात...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म पीछे-पीछे अपने कारण से जयेगा। आत्मा अपने कारण से जायेगा गति में। आहाहा!

और वहाँ तक कहा कि राग और द्वेष अभी तुम करते हो, वह भी तुम्हारे साथ आयेगा विकार। आहाहा! समझ में आया? मृत्यु समय में णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं

(बोलते हैं), वह तो राग हुआ। राग भी तेरे साथ... शुद्ध चैतन्य है तो राग भी राग के कारण से आयेगा। वह श्लोक जरा सूक्ष्म है। कर्म के निमित्त... कर्म तो कर्म के कारण से आता है साथ में, परन्तु कर्म के निमित्त में जो पुण्य-पापभाव तूने किये, वह भी उसके कारण से साथ में आता है और तेरी चीज़ तो भिन्न है। वह चीज़ जाती है अपने कारण से। नरक में श्रेणिक राजा गया तो नरकगति बाँधी थी, इसलिए गया, ऐसा नहीं। वह अपनी योग्यता से वहाँ गये हैं। कर्म, कर्म के कारण से पीछे गये हैं। आहाहा! अरेरे! ऐसी बातें! वह गति तेरे में नहीं।

इन्द्रिय... पाँच इन्द्रिय तेरे में नहीं। भाव इन्द्रिय और जड़ इन्द्रिय, वह तेरे में नहीं। यह तो नहीं, परन्तु अणीन्द्रिय भी तेरे में नहीं। पाँच इन्द्रिय से रहित जब अणीन्द्रिय परमात्मा होता है, वह अणीन्द्रिय की पर्याय भी तेरे में नहीं। द्रव्यसंग्रह में भाई! पाँच इन्द्रिय में इतना ही लिया है। इन्द्रिय में पाँच इन्द्रिय इतना। परन्तु धवल... धवल में (लिया है कि) पाँच इन्द्रिय तो नहीं, परन्तु अणीन्द्रिय पर्याय होती है, वह (पर्याय) भी तेरे में नहीं। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है न। उसमें इन्द्रियाँ तो है नहीं।

समयसार में ३१वीं गाथा में तो ऐसा कहा है कि '**जो इंदिये जिणित्ता**' उसका अर्थ ऐसा लिया है टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य ने कि यह जड़ इन्द्रिय मिट्टी, धूल है उससे तुम भिन्न हो, भाव इन्द्रिय जो एक-एक इन्द्रिय का एक-एक विषय जानने की योग्यता है उससे भी तुम भिन्न हो और दूसरा इन्द्रिय का विषय—भगवान, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देह, भगवान, भगवान की वाणी सब इन्द्रिय का विषय है तो उसको भी हम इन्द्रिय कहते हैं। अरर! वह तीनों द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय इन्द्रिय—तीनों को जीतना अर्थात् तीनों का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! ३१वीं गाथा में आया है। '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' यह ज्ञानस्वभाव पर से भिन्न पूर्णानन्द का नाथ है। भगवान की वाणी और भगवान भी इन्द्रिय का विषय है तो इन्द्रिय है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

वह तीनों को जीत ले। उसका अर्थ? तीनों के ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे। भगवान की वाणी और भगवान की ओर से भी लक्ष्य छोड़ दे। यह इन्द्रिय को जीता कहने में

आता है। अरेरे! ऐसी बातें! यशपालजी! ऐसी बात है। वस्तु लोगों को सूक्ष्म पड़े। क्रियाकाण्ड में लोग चले गये हैं। और घर में इतना कर सके नहीं और दूसरा करे तो ओहोहो! ...पर का त्याग किया थोड़ा, तो उसमें महिमा आ जाती है अज्ञानी को। परन्तु मिथ्यात्व का त्याग, वह क्या चीज़ है? आहाहा! और उसके त्याग बिना बाह्य का त्याग तो सब झूठा है। बाह्य का त्याग-ग्रहण तो प्रभु आत्मा में है ही नहीं। ऐसा आत्मा में एक गुण है। त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। ४७ शक्ति है पीछे समयसार में। तो एक शक्ति ऐसी है कि पर के ग्रहण और त्याग से तो प्रभु रहित है। मैंने घी छोड़ा, मैं यह छोडूँ, मैं स्त्री छोडूँ, मैं दुकान छोडूँ। छोडूँ क्या? ग्रहण किया ही नहीं तो छोडूँ क्या? आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! जैनमार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

कहते हैं कि शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, मकान आदि पर—उसको आत्मा ग्रहण करे और छोड़े, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। यह आत्मा का स्वभाव ही नहीं है ऐसा। आहाहा! हाँ, अपना चैतन्यस्वरूप अणीन्द्रिय जो है। वह अणीन्द्रिय की पर्याय जो हो उससे भी रहित है। ऐसी अणीन्द्रिय पर्याय की दृष्टि करने से इन्द्रिय की पर्यय सारी जीत सकते नहीं। आहाहा! समझ में आया? अन्दर तो कितना अभिप्राय आता है, परन्तु बाहर भूल जाये तुरन्त। ... लक्ष्य में आ जाता है। आहाहा!

इन्द्रिय से रहित और अणीन्द्रिय से भी रहित। है अणीन्द्रिय आत्मा, परन्तु अणीन्द्रिय की पर्याय से रहित है। आहाहा! भगवान आत्मा तो अणीन्द्रियस्वरूप प्रभु, त्रिकाल अणीन्द्रिय स्वरूप है। आहाहा! उसमें जो अणीन्द्रिय पर्याय प्रगट होती है परमात्मा को, उस अणीन्द्रिय पर्याय का द्रव्य में अभाव है। ऐसा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन, बापू! यह कोई अलौकिक चीज़ है। वह साधारण माने कि हम देव-गुरु-शास्त्र मानते हैं, नव तत्त्व को मानते हैं तो सम्यग्दृष्टि है, यह बात सब झूठ है। समझ में आया?

गृहस्थ के लिये ऐसा लिया है कि नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है। कलश। समझ में आया? कलशटीका है या नहीं? है? देखो! **अनादि सम्बन्ध को छोड़कर संसार अवस्था में जीवद्रव्य नव तत्त्वरूप परिणमा है।** उसमें संवर, निर्जरा न लेना। द्रव्य

संवर, द्रव्य निर्जरा (लेना)। **वह तो विभाव परिणति है। इसलिए नव तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** अरर्र!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्व।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यात्व है। भेद हैं न नौ? भिन्न-भिन्न है न? एकरूप चैतन्य का अनुभव करके नौ तत्त्व का अनुभव हो, वह दूसरी चीज़ है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' में तो वही लिया है। एकरूप चिदानन्द का अनुभव में वह सात तत्त्व नहीं है, उसका ज्ञान हो जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि अनादि नौ तत्त्व का वेदन और नौ तत्त्व का परिणमन मिथ्यात्व है। कलशटीका है यह। अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं। अरेरे! कहाँ समझने की और सुनने की दरकार है! अनादि से ऐसे ही चला जायेगा। आहाहा! सत्यवस्तु का शरण नहीं मिले और असत्य के शरण में चला जायेगा, कहीं नरक और निगोद में पता नहीं लगेगा। समझ में आया? आहाहा!

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम मुनि है, ऐसा माने तो निगोद में जायेगा। सूत्रपाहुड़। यह सूत्रपाहुड़ में है।

मुमुक्षु : उनके माननेवालों का क्या होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। कुसाधु है, उसको साधु माने, वह मिथ्यादृष्टि है। और मिथ्यात्व को लेकर नरक में, निगोद में जायेगा। सूत्रपाहुड़ है न? सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ की १८वीं गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य। '**जहजायरूवसरिसो तिलतुसमेत्तं ण गिहदि**' तिल के छिलके जितना भी जो कुछ भी ग्रहण करे '**जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण णिग्गोदम्।**' १८वीं गाथा है। सूत्रपाहुड़, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने लिखा है। समयसार है, ऐसा अष्टपाहुड़ है। यह सारे पाँच पुस्तक हैं। पौने चार लाख का खर्च है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ की टीका यह सब सारा... परमागम शास्त्र हैं।

तो कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर हम साधु हैं, ऐसा माने और राग का भाव है, वह मेरा है ऐसा माने निगोदं गच्छई—निगोद में जायेगा। और उसको माननेवाला

भी निगोद में जायेगा। करण, करावन और अनुमोदन—तीन बोल। जो करते हैं मिथ्यात्व, कराते हैं मिथ्यात्व और जो मिथ्यात्व करते हैं, उसका अनुमोदन करते हैं... अर्थ में है हों तीनों। समझ में आया? १८ में। करण, करावन और अनुमोदन—तीनों मिथ्यात्व से निगोद में जायेगा। जो एक शरीर में अनन्त जीव... आहाहा! गजब बात है। एक भी विपरीत श्रद्धा, (विपरीत) श्रद्धा-मिथ्यात्व का अंश शल्य निगोद का कारण है। समझ में आया? अरेरे! ऐसी बात सुननी कठिन लगे। यहाँ यह कहा।

इन्द्रिय से रहित... इन्द्रिय से रहित का अर्थ भगवान और भगवान की वाणी से भी रहित। ऐसा आत्मा चिदानन्दरूप नित्य-शुद्ध परमात्मस्वरूप ऐसे जीवद्रव्य में यह इन्द्रिय और अणेन्द्रिय पर्याय है नहीं। **काय...** औदारिक, वैक्रियक, मिश्र आदि पाँच शरीर और मिश्रित... पन्द्रह योग है न? चार औदारिक, चार वैक्रियक आदि पन्द्रह योग है। वह बाद में लेंगे। **काया...** नहीं है। अपने में काया भी है नहीं। औदारिक, कार्मण वह काया आतमा में है नहीं। आहाहा!

जो आत्मा में हो तो निकले नहीं। उसको है ही नहीं। आहाहा! औदारिकशरीर आत्मा में है नहीं, देव का वैक्रियिकशरीर आत्मा में है ही नहीं, तैजस, कार्मणशरीर है वह आत्मा में है नहीं। आठों कर्म की प्रकृति, आहाहा! विष का वृक्ष है, ऐसा कहा है। विषवृक्ष। समयसार में पीछे। १४८ कर्म की प्रकृति विष का वृक्ष है, भगवान अमृत का वृक्ष है। आहाहा! वह १४८ प्रकृति में से, कोई तीर्थंकर प्रकृति बँधी, वह ठीक है—ऐसा समकिती नहीं मानता। समकिती ही तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, दूसरे कोई बाँधते नहीं। परन्तु वह भाव जो तीर्थंकरगोत्र बँधने का आया, उसको हेय मानते हैं, उसको दुःखरूप मानते हैं। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात कहाँ!

वह काय और अकाय, ऐसा लेना। सिद्ध है, वह अकाय है। वह अकाय भी आत्मा में है नहीं। अकायपर्याय है न? काय है, वह शरीरादि है और अकाय है, वह शरीररहित पर्याय है। वह पाँचों आत्मा में नहीं है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। आहाहा! उनके अभिप्राय से विरुद्ध कुछ भी थोड़ा, अधिक, विपरीत, कम, अधिक और विपरीत माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! बहुत कठिन काम, बापू!

योग... पन्द्रह योग है। वह योग का आत्मा में अभाव है। कम्पन्न-कम्पन्न।

कम्पन्न में पन्द्रह प्रकार है, उसका आत्मा में अभाव है और अयोग की पर्याय का भी आत्मा में अभाव है। धवल में लिया है। है ? उसमें आया है। देखो! यह चिट्ठी डाली है। आहाहा! क्या कहा ? कि योग तो नहीं... मन, वचन, काया का योग तो नहीं, परन्तु योगरहित—कम्पन्नरहित अयोग गुणस्थान है, वह भी आत्मा में नहीं। क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा! ऐसा सूत्रकार भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है। ऐसा टीकाकर कहते हैं। आहाहा! अरेरे! सत्य बात सुनने में आये नहीं, वह कब विचार करे ? कब रुचि करे ? कब परिणमन करे ? आहाहा! अरेरे! देह चला जायेगा। मृत्यु समीप में दिन चले जाते हैं। आहाहा! दुनिया की सिफारिश कुछ काम नहीं करेगी कि दुनिया हमको मानते हैं, इसलिए हम धर्मी हैं। दुनिया तो पागल है किसी को भी माने धर्मी। मन्दिर बनाना, भक्ति करना, तो धर्मी है, ऐसा माने पागल लोगों। समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि योग और अयोग—दोनों आत्मा में है नहीं। **वेद...** स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद—तीन वेद। और अवेद। वेदरहित अवेददशा, वह भी आत्मा में नहीं। समझ में आया ? अवेदपना तो पर्याय है। वेद भी विकारी पर्याय है और अवेद भी अविकारी पर्याय है। वह पर्याय का त्रिकाली भगवान नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप जीव में अभाव है। ऐसी बात!

कषाय... भगवान आत्मा जो शुद्ध चिदानन्दरूप परमात्मस्वरूप जीव, उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय है नहीं, परन्तु अकषाय(पना) भी उसमें है नहीं। कषायरहित अकषाय पर्याय होती है, वह अकषाय पर्याय भी आत्मा में है नहीं। है अन्दर या नहीं ? यह धवल में पाठ है। समझ में आया ? यह धवल हे न ? देखो! वह आया। नजर में यह आया। कषाय मार्गणा का अनुवाद से क्रोध, मान, माया, लोभ, कषाय और कषायरहित जीव होते हैं, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम कषाय है और कषायरहित होकर अकषाय पर्याय होती है ११, १२ (गुणस्थान) में। वह पर्याय कषाय और अकषाय दोनों पर्यायों का द्रव्य में अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....कषाय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कषाय। पुरुषार्थसिद्धि में तो वहाँ तक अमृतचन्द्राचार्य ने कहा

कि पर की दया का भाव राग है और आत्मा की हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार जिन्होंने समयसार की टीका की। क्योंकि पर की दया पाल सकता नहीं और पर ऊपर लक्ष्य जाता है तो राग है। यह राग आत्मा के स्वरूप की हिंसा है। अरर! ऐसी बात! है या नहीं?

कहते थे एक कि देखो उसका नाम कानजी है तो कान पकड़कर जी कराते हैं। दलील देकर... कान से कहते हैं, जी—हाँ कराने को। भाई! यह तो वीतराग की बात है, बापू! हम तो दलाल हैं। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है, भगवान! आहाहा!

कषाय... आत्मा में है नहीं। दया, दान, व्रत के परिणाम भी आत्मा में तो है ही नहीं। परन्तु कषायरहित अकषाय दशा हो जाये वह पर्याय है, तो अकषायपर्याय भी आत्मा में है नहीं। उसको आत्मा कहते हैं और उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! अरे! अभी तो पहली समकित की बात है। आहाहा! **ज्ञान...** पाँच ज्ञान हैं न, पाँच ज्ञान? मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल—पाँच। और तीन अज्ञान। मति, श्रुत, विभंग तीन अज्ञान। आठ। ज्ञान के आठ बोल हैं। आठों बोल का भगवान आत्मा में अभाव है। अरेरे! ऐसी बातें! जीव इसको कहिये—आत्मा इसको कहिये कि पाँच ज्ञान की पर्याय और तीन अज्ञान की पर्याय से रहित है। उसको वास्तव में आत्मा कहने में आता है और वह आत्मा की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। ज्ञान में आठ लेना—पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान। केवलज्ञान भी पर्याय है न? वह द्रव्य में है... वह तो आ गया सुबह में।

संयम,... चारित्र के पाँच भेद हैं न? सामायिक, छेदोपस्थापना (आदि) पाँच और संयमासंयम श्रावक की दशा छठवीं और असंयम सातवीं। सातों (भेद) संयम में आ जाता है। संयम और असंयम और संयमासंयम—वह सब पर्याय द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसा है वीतरागमार्ग। अरे! प्रभु! कठिन काम है। लोग बाहर में अटक गये हैं न? और बाहर से बाह्य त्याग से मनाया है। अन्तर के मिथ्यात्व के त्याग बिना सब त्याग झूठ है। आहाहा! तो मिथ्यात्व का त्याग कब होता है? ऐसी पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं, ऐसा द्रव्य का अनुभव करना। ऐसा द्रव्य में अनुभव आनन्द का अनुभव करना, तब

सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसा है। संयम तक आया न? संयम। संयम के पाँच भेद, संयमासंयम का छठवाँ भेद और असंयम का सातवाँ भेद। वह सात संयम लेना।

मुमुक्षु : वह आत्मा में नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा में नहीं।

दर्शन,... चक्षुदर्शन, अचक्षु... समझ में आया? यह दर्शन (अर्थात्) समकित नहीं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन—वह चार पर्याय का द्रव्य में अभाव है। समझ में आया? केवलदर्शन आ गया न? बाद में अदर्शन यहाँ नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है, जिसके ऊपर दृष्टि करने से सम्यक्त्व होता है। सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी ऐसा सम्यग्दर्शन का जो विषय भगवान पूर्णानन्द चिद्रूप परमात्मा है, उसमें चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल—चार दर्शन का अभाव है। आहाहा!

लेश्या,... छह लेश्या हैं न? छह लेश्या। कृष्ण, नील, कापोत, पद्म, तेजो, शुक्ललेश्या। छह लेश्या भगवान आत्मा में नहीं। लेश्या तो नहीं, परन्तु अलेश्या भी आत्मा में नहीं। अलेश्या, वह पर्याय है। भगवान को अलेश्या होती है। आहाहा! समझ में आया? शुक्ल, पद्म, तेजो जो शुभभाव की लेश्या है। और अलेश्या—लेश्यारहित अलेश्या परमात्मा हुए। वह तो पर्याय है। तो लेश्या और अलेश्या—सातों पर्याय आत्मा में नहीं। अरेरे! यह कब सुना था? अरे! क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मार्ग तो शास्त्र में चला आया है। यह शास्त्र कोई नया है? पुराना अनादि का चलता है, ऐसी वाणी है। आहाहा! वह लेश्या, अलेश्या... यह तो ठीक, परन्तु भव्यत्व और अभव्यत्व भी आत्मा में नहीं। है? भव्यत्व, अभव्यत्व आत्मा में नहीं। यह जरा विचार करना पड़ेगा। विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १०, बुधवार, दिनांक - ०१-०८-१९७९
गाथा-४२, प्रवचन-१२

यह नियमसार, गाथा ४२। मार्गणा अधिकार चलता है। क्या कहते हैं? सूक्ष्म विषय है भगवान! यह आत्मा जो है, वह चौदह मार्गणा से भिन्न है। चौदह मार्गणा है सही, पर्यायदृष्टि में यह चौदह हैं, उनके भेद भी हैं। परन्तु जिसको अन्तर दृष्टि करना है उसको यह मार्गणा से भिन्न जानना पड़ेगा। आहाहा! यहाँ तक आया था हमारे।

भव्यत्व... भव्य, अभव्यपना पर्याय की योग्यता से है, परन्तु त्रिकाल में नहीं। त्रिकाल द्रव्य जो है, उसमें भव्य, अभव्य की योग्यता नहीं। आहाहा! कल बात आ गयी। **सम्यक्त्व...** सम्यग्दर्शन पर्याय है और सम्यग्दर्शन का भेद सम्यक्, मिथ्यात्व पर्याय है, क्षयोपशम समकित और मिथ्यात्व की मिश्र प्रकृति यह सब पर्याय में है। परन्तु वस्तु जो त्रिकाली चैतन्य जिसमें नजर करना है, जिसको स्वीकार करना है, यह चीज़ में समकित आदि की भेद पर्याय उसमें हैं नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन यह अपूर्व चीज़ है। कोई क्रियाकाण्ड बाहर से करने से मिलती है, वह चीज़ नहीं कि भाई! व्रत ले लिया, तप ले लिया, ब्रह्मचर्य ले लिया, तो सम्यग्दर्शन हो जायेगा—यह बात अत्यन्त मिथ्यात्व है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन पाने की योग्यता, वह त्रिकाली भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु के आश्रय से, अन्तर पर्याय को उसके सन्मुख करने से...

पर्याय जो है... शरीर, वाणी, मन तो कहीं रह गये। राग की क्रिया भी पर रह गयी, अपनी पर्याय जो ज्ञान की जानने की पर्याय है, वह पर्याय परसन्मुख है, उसको स्वसन्मुख करना। आहाहा! विषय कठिन बहुत है। यह अनन्त काल में किया नहीं। बाकी तो सब बाह्य वेश धारण करके भिन्न-भिन्न नाम धराये कि हम ब्रह्मचारी हैं, हम त्यागी हैं, हम यति की क्रिया करते हैं, यति हैं। आहाहा! वह समयसार में आता है। लिंग बाह्य धारण करके, बारह व्रत और पंच महाव्रत आदि धारण करके हम यति और त्यागी हुए, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! क्योंकि अपने द्रव्य में रागादि की क्रिया का तो पर्याय में अभाव है। आहाहा! और वह पर्याय में भी सम्यग्दर्शनादि का भेद... सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य है, परन्तु सम्यग्दर्शनादि का भेद वह द्रव्य में नहीं।

आहाहा! मिथ्यादर्शन, असंयमपना वह तो वस्तु में है ही नहीं, परन्तु सम्यग्दर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, आहाहा! और सम्यग्दर्शन से विरुद्ध मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन में उपशम, क्षयोपशम क्षायिक और सम्यग्दर्शन से विरुद्ध मिश्र प्रकृति मिश्रभाव और समकितमोहनीय आदि भाव, आहाहा! वह वस्तु में नहीं। जिसमें दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसमें यह सम्यग्दर्शन की पर्याय उसमें नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। कम हो गया लगता है। समझ में आया?

सम्यक्त्व... है? समकित के प्रकार सब लेने सारे—सम्यक्त्व से विरुद्ध मिथ्यात्व, छह प्रकृति, समकितमोहनीय आदि सब पर्याय में है। परन्तु जो पर्याय स्व-सन्मुख झुके, वह झुकना चीज में है ही नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय त्रिकाल को अनुभवे... अपना स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करे समकिती। आहाहा! फिर भी वह अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव की पर्याय वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! कठिन बात, बापू! जन्म-मरण से रहित होने का क्रम सम्यग्दर्शन तो अलौकिक चीज़ है। लोगों ने अभी त्याग किया, यह किया, व्रत लिये, कपड़े बदल डाले... करके, तो हो गये त्यागी। आहाहा!

मिथ्यात्व के त्याग बिना बाह्य त्याग का निमित्तपना भी झूठा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक बात तो यह है कि बाह्य चीज़ का ग्रहण त्याग से तो रहित प्रभु है। उसको ऐसा मानना कि मैंने इतना छोड़ दिया, मैंने छोड़ दिया, वह तो मिथ्यात्व की पुष्टि है। अरर! ऐसी बात है। समझ में आया? आत्मा सिवा स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कपड़े, जवाहरात, पैसे को मैंने छोड़ दिया, दुकान का धन्धा मैंने छोड़ दिया, लड़के, लड़की को छोड़ दिया तो हम त्यागी हैं। तो कहते हैं कि स्त्री को छोड़ दिया, वह मान्यता मिथ्यात्व है। क्योंकि पर के ग्रहण-त्याग से रहित उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? पर का ग्रहण और त्याग, उससे तो रहित आत्मा का स्वभाव है। उसका ग्रहण, उसका मैं त्याग करता हूँ। त्याग से तो रहित है, उसके ग्रहण-त्याग से तो रहित है। उसका मैं त्याग करूँ... आहाहा!

एक कलश में आया है भाई, नहीं? '**आदान-उज्झन**'। अन्तिम कलश, नहीं? ऐसे कि जो '**आदान-उज्झन**' का अर्थ वहाँ ऐसा लिया '**आदान-उज्झन**'... आहाहा!

'**आदान-उज्झन**'... परमाणुमात्र का ग्रहण और त्याग, वह आत्मा की चीज़ में अनादि से है नहीं। है नहीं, उसका मैं त्याग करूँ, वह तो ग्रहण किया था, ऐसी मान्यता हुई। पर को मैंने ग्रहण किया था तो मैं छोड़ूँ। आहाहा!

यहाँ तो उससे आगे जाकर... अन्तिम कलश में है कुछ। '**आदान-उज्झन**'... ऐसे ग्रहण करनेयोग्य स्वरूप था, वह ग्रहण कर लिया और राग का त्याग करना था तो हो गया। समयसार में अन्त में है। यह तो नियमसार है। नियमसार में अन्त में कलश है। आहाहा! अपना स्वरूप जो सम्यग्दर्शन में ग्रहण करना था और स्वरूप की स्थिरता होकर स्वरूप में लीनता करना था तो ऐसे सारी चीज़ ग्रहण हो गयी। अपनी चीज़ ग्रहण हो गयी। आहाहा! और राग और द्वेष... अपनी चीज़ का ग्रहण किया तो राग और द्वेष का त्याग हो गया... त्याग हो गया। त्याग में करता हूँ, वह भी उसमें नहीं। आहाहा!

वह ३४ में गाथा में आता है न? ३४। कि पर का मैं त्याग करता हूँ, राग का त्याग करता हूँ, वह आत्मा में नाममात्र कथन है। परमार्थ से आत्मा राग का त्याग करता है, वह चीज़ वस्तु में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमार्थ से तो वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसको जब दृष्टि में ग्रहण किया, तब मिथ्यात्व और राग की उत्पत्ति न हुई, उसको मिथ्यात्व और राग का त्याग किया, ऐसा नाममात्र कथन है। आहाहा! पर का त्याग, राग का त्याग यह भी परमार्थ से आत्मा में नहीं। आहाहा! गजब बात है! पर का त्याग-ग्रहण से तो रहित उसका गुण है। आहाहा! मार्गणास्थान में सूक्ष्मता है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में और सम्यक्चारित्र में अपना त्रिकाली स्वरूप ग्रहण किया और मिथ्यात्व और राग का त्याग हुआ। पर का तो त्याग-ग्रहण आत्मा में है नहीं। समझ में आया? समयसार है? है या नहीं? वह श्लोक है पीछे '**आदान-उज्झन**' यह नियमसार में है? नियमसार में है? पता नहीं। यह तो नियमसार है न? नियमसार में पीछे होगा। '**आदान-उज्झन**'... रहित है, ऐसा शब्द है। कहाँ निकले ... इसमें होगा, हों।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना?

मुमुक्षु : समयसार २३६।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, २३६। बड़ा समुद्र है। ख्याल में भाव रहे। पृष्ठ ख्याल में रहे? इतना क्षयोपशम नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : २३५।...देखो! अर्थ में है या नहीं? '**आदान-उज्झन**' है न? '**आदान-उज्झन-शून्यम्**'... आहाहा! अर्थ में तो '**आदान-उज्झन**'... पहली पंक्ति है। '**आदान-उज्झन**'... आदान... क्या कहते हैं? कि आत्मा में परद्रव्य का तो त्याग-ग्रहण... उसमें गुण ऐसा है कि परद्रव्य के त्याग-ग्रहण से तो शून्य है। अब एक '**आदान-उज्झन**' यह आया। २३५ कलश है समयसार का। समयसार का २३५। समयसार २३५। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! कि... रजकण जो... पैसे, शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान ग्रहण किया है नहीं और छोड़ना है नहीं। यह वस्तु तो त्याग-ग्रहण से तो रहित है। आहाहा! परन्तु उसमें जो रागादि है और मिथ्यात्वादि भाव है, पर्याय में है। अपने स्वरूप का ग्रहण करने से राग और मिथ्यात्व आदि का त्याग हो जाता है, परन्तु उस त्याग का कर्ता आत्मा को कहना, वह नाममात्र है। यह '**आदान-उज्झन**' दूसरी चीज़ है। यह '**आदान-उज्झन**' में यह कहते हैं कि स्वरूप का ग्रहण जहाँ हुआ, चिदानन्द परमात्मस्वरूप का आदर अन्दर हुआ, तो राग का त्याग हो गया। '**उज्झन**' राग का त्याग हो गया। राग का त्याग करना, यह भी है नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! तथापि राग पर्याय में है, है वह पर्यायनय का विषय ज्ञान करने को है। तथापि वह स्वरूप का ग्रहण जहाँ हुआ तो वह राग है, उसका व्यय हो जाता है। व्यय हो जाता है, उसका अर्थ त्याग किया, वह नाममात्र कथन है। उसको यहाँ '**आदान-उज्झन**' कहने में आता है। वह '**आदान-उज्झन**' पर का नहीं। आहाहा!

पर का तो... त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति है। अरेरे! ऐसी बातें! समझ में आया? परन्तु अपने आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसको ग्रहण किया और रागादि का त्याग वह '**आदान-उज्झन**' पर्याय में ऐसा हो जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! '**आदान-उज्झन**' शून्यत्व है न? शक्ति ४७ में। यह '**आदान-उज्झन**' दूसरी चीज है। यह '**आदान-उज्झन**' है शक्ति में, वह तो परद्रव्य का ग्रहण-त्याग से रहित। यह तो

उसका गुण ही है। यह तो पर्याय में जब स्व का ग्रहण हुआ तो राग का त्याग हो गया, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! समयसार। ख्याल में आया तो आ गयी बात। है न?

२३५। '**आदान-उज्झन-शून्यम्**' (पर) को ग्रहण करना और त्याग करना उससे आत्मा शून्य है। आहाहा! क्या कहते हैं? कि पर के ग्रहण-त्याग से तो शून्य है, परन्तु स्वरूप का ग्रहण और राग का त्याग-वीतरागता हो गयी, तो पर का ग्रहण और पर का त्याग से शून्य हो गया। आहाहा! समझ में आया? अपने राग का त्याग हो! पर के त्याग-ग्रहण की बात नहीं। राग का त्याग (हुआ), स्वरूप का ग्रहण हुआ तो राग सम्बन्धी एकताबुद्धि और राग का त्याग हुआ, ऐसा उसकी पर्याय में स्वभाव है। द्रव्य में स्वभाव तो त्रिकाल है। आहाहा! पर्याय का स्वभाव ऐसा है कि जब स्वरूप का ग्रहण किया और राग का त्याग हो गया। ऐसा पर्याय का स्वभाव है। तो ग्रहण किया यह तो द्रव्यस्वभाव। आहाहा! परन्तु ग्रहण करनेवाली जो पर्याय है, वह पर्याय में पूर्ण जहाँ ग्रहण हो गया और राग का त्याग हुआ तो वह पर्याय शून्य हो गयी। स्व को ग्रहण करना, राग का त्याग सब शून्य हो गया। पूर्ण दशा हो गयी। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, भाई! थोड़ी। समझ में आया?

यहाँ समकित मार्गणा चलती है (स्थान में)। सम्यग्दर्शन की पर्याय और उसके साथ मिश्र प्रकृति आदि और मिथ्यात्व आदि, वह पर्याय में है। समकित आदि पर्याय में है... समकित पर्याय में है, परन्तु वह द्रव्य में उस पर्याय की शून्यता है। आहाहा! अरेरे! व्यवहार का विषय है। नहीं है, ऐसा नहीं। पर्याय समकित की पर्याय वह व्यवहारनय का... पर्यायमात्र व्यवहारनय का विषय है। केवलज्ञान हो, वह भी पर्यायनय का विषय है। वह व्यवहारनय का विषय है नहीं, ऐसा नहीं। है, परन्तु वह त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में समकित और केवलज्ञान की पर्याय का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सम्यग्दर्शन से द्रव्य को ज्ञान में ज्ञेय बनाकर प्रतीति हुई, वह प्रतीति अर्थात् अन्दर ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा ज्ञान में आया। स्वसन्मुख हुआ तो ज्ञान में ज्ञेय की पर्याय—द्रव्य की पर्याय ज्ञेय... द्रव्य जो है पर्याय में आ गया। क्या आया? उसकी शक्ति है, वह आ गयी। द्रव्य पर्याय में नहीं आता। आहाहा! अब ऐसी बात। कहाँ फुरसत है? उसको फुरसत नहीं यह निर्णय करने की। यहाँ यह कहते हैं कि सम्यग्दर्शन आदि की

मार्गणा... अर्थात् क्या? मार्गणा अर्थात् शोधना। कि यह जीव समकिती है, यह पंचम गुणस्थान में है, यह छठवें में है—ऐसी मार्गणा, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पर्याय में है, परन्तु वह पर्याय का भेद द्रव्य में नहीं। यह समकित की व्याख्या हुई।

अब **संज्ञित्व...** संज्ञीपना और असंज्ञीपना पर्याय में है। मनवाला और मनरहित—असंज्ञी। संज्ञी—मनवाला, असंज्ञी—मनरहित वह पर्याय में है। परन्तु वह मार्गणा अर्थात् शोधना कि यह जीव संज्ञी है, यह जीव असंज्ञी है। तो यह पर्याय को शोधना वह पर्याय में है, परन्तु उस पर्याय की शोधक दशा द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसी बात। है? पीछे **आहार...** आहार और अनाहार, ऐसी (दशा) पर्याय में है। आहार का लेना और आहार का छोड़ना, (ऐसा विकल्प) पर्याय में है। परन्तु आहार और अनाहार दोनों चीज़ द्रव्यस्वभाव में नहीं। आहार का विकल्प और अनाहार की दशा—वह दोनों द्रव्यस्वभाव में नहीं। पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया?

उमास्वामी ने तो वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में लिया है। यह कुन्दकुन्दाचार्य के शिष्य हैं। उसमें तो यह बात ली है कि मिथ्यात्व, राग-द्वेष, वह जीवतत्त्व है। आहाहा! यह ज्ञानप्रधान कथन है। दूसरे अध्याय में।

मुमुक्षु : पाँचों भाव निज तत्त्व कहा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : पाँचों भाव को... पण्डितजी नहीं है। स्वतत्त्व कहा है। समझ में आया? इसमें होगा। है?

मुमुक्षु : दूसरे अध्याय में पहला सूत्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पता है परन्तु यह यही है या नहीं। दूसरे अध्याय में पहली। **'औपशमिकज्ञायिकौ भावौ मिश्रश्चजीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च।'** उदयभाव के मिथ्यात्व और राग-द्वेष, पुण्य-पाप वह जीवतत्त्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी पर्याय है न? यह उमास्वामी की शैली अनुसार टोडरमलजी ने लिया है। समझ में आया? नौ तत्त्व की श्रद्धा तो उमास्वामी में आया है।

तो वह नौ तत्त्व की श्रद्धा... किया। परन्तु एक परमार्थ त्रिकाली की श्रद्धा, वह दर्शन का विषय में लिया समयसार में। आहाहा! वह दर्शनप्रधान बात है, यह ज्ञानप्रधान बात है। है तो दोनों सत्य। आहाहा! ऐसी बात है। सेठ! '**औदयिक स्वतत्वम्**' उदयभाव— मिथ्यात्व का भाव, राग-द्वेष का भाव, वह स्वतत्त्व है। वह परतत्त्व में है नहीं। आहाहा! वही शैली में टोडररमल ने लिया है। बात कही थी सातवें अध्याय में कि राग और द्वेष निश्चय से जीव का है। वह इस अपेक्षा से लिया है। परन्तु कर्म का कहना, वह व्यवहार है। वहाँ ऐसा लेना। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : और जब दृष्टि की बात चलती हो और द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेना, (ऐसा) दृष्टिप्रधान कथन जब चले, तब तो ऐसा कहने में आता है कि राग और द्वेष, वह जीव का व्याप्य नहीं। वस्तु स्वभाव व्यापक है। प्रसरता है—विस्तार होता है। वह विस्तार स्वरूप का विस्तार कहो, तो विस्तार में तो निर्मलपर्याय का व्याप्तिपना विस्तार होता है। स्वरूप में निर्मल पर्याय के अतिरिक्त राग का विस्तार होता है, वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यह सब कहाँ? समझ में आया?

मुमुक्षु : दो विरुद्ध में कथन....

पूज्य गुरुदेवश्री : आज किसी का प्रश्न आया है, भाई! गरीब आदमी का प्रश्न आया है। मुझे यहाँ का आत्मधर्म पढ़कर श्रद्धा हुई है कि जैनधर्म सच्चा है। परन्तु मुझे तीन शंका है, ऐसा लिखते हैं। एक शंका तो यह है कि आकाश अनन्त है और उसका आकार तो है आकाश में। सूक्ष्म बात है। आकाश का अन्त नहीं तो भी उसमें प्रदेशगुण के कारण से आकार है। तो उसने प्रश्न किया कि अन्त नहीं, उसमें आकार कहाँ से आया? प्रत्येक द्रव्य में प्रदेशत्व नाम का गुण है, उस कारण से उस द्रव्य का आकार व्यंजनपर्याय आकार है। आत्मा में भी आकार है। समझ में आया? यह तो ठीक कि इतने में है, वह समझे। परन्तु आकाश व्यापक, (जिसका) कोई पार नहीं... पार नहीं। उसमें प्रदेशत्वगुण के कारण से आकार कहाँ से रहे? हमको बड़ी शंका है।

अरे! प्रभु! यह वस्तु ऐसी है। और यह... सूक्ष्म बात है, हों! आकाश का अन्तिम

प्रदेश का भाग आकार, ऐसा नहीं। प्रत्येक प्रदेश में प्रदेशत्वगुण के कारण से प्रत्येक प्रदेश से लेकर सारा द्रव्य का आकार है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। यह तो प्रश्न जरा आया था कल। पण्डितजी! यह आत्मा है। आत्मा के प्रदेश हैं। तो अरूपी का आकार ऊपर का केवल आकार है ऐसा नहीं। वह अरूपी के प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक प्रदेश का आकार है। ऐई! धन्नालालजी! ...यह तो बहुत वर्ष पहले बहुत प्रश्न हो गये हैं। परन्तु यह तो एक गरीब आदमी का प्रश्न है। आहाहा!

भगवान आत्मा असंख्यप्रदेशी है। उसमें प्रदेशगुण के कारण से आकार है। तो आकार अर्थात् असंख्य प्रदेश के ऊपर ही केवल आकार है, ऐसा नहीं। क्या कहा, समझ में आया? छह सामान्य गुण आते हैं न? अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व—छह। तो उसमें प्रदेशत्वगुण के कारण छहों द्रव्य में आकार है। भाई! यह विषय अलौकिक है। यह आकार की व्याख्या ऐसी नहीं कि यह जीव है, उसके असंख्य प्रदेश के ऊपर आकार है। ऐसा नहीं। प्रत्येक प्रदेश का आकार है। हिम्मतभाई! ऐसी बात! ऐसे आकाश में जो आकार है प्रदेशत्वगुण के कारण से, वह ऊपर... है इतने में नहीं। प्रत्येक प्रदेश से लेकर अनन्त प्रदेश में उसका आकार व्यापक है। अरेरे!

मुमुक्षु : प्रत्येक प्रदेश का आकार अलग है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रदेशत्वगुण है या नहीं? तो प्रदेशत्वगुण असंख्य प्रदेश से ऊपर ही आकर है, ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात आ गयी है, भाई! यह तो एक का प्रश्न आया है इसलिए, वरना यह बात तो हमारे कई बार हो गयी है। आहाहा! प्रभु! यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू! आहाहा!

भगवान आत्मा... प्रदेशत्वगुण है उसमें। तो उसके कारण से उसमें आकार है। यह कोई जड़ का आकार नहीं। निरंजन निराकार ऐसा कहकर पर का आकार नहीं (ऐसा कहा)। परन्तु स्व के आकार बिना वस्तु होती नहीं। आहा! और वह आकार, ऊपर ही आत्मा का एक आकार है, ऐसा नहीं। यह बात कोई गजब बात है। प्रदेश में प्रत्येक प्रदेश से लेकर सारा आकाश में भी आकार है। यह तो कभी सुना नहीं, ऐसी बात है। आहाहा! यहाँ तो यह बात की चर्चा बहुत हो गयी है। परन्तु यह तो प्रश्न आया है। मेरे को श्रद्धा हो गयी जैनधर्म की। यह अलौकिक बात है। परन्तु ऐसी बात सुनी, पढ़ी

आत्मधर्म में, तो बात तो बैठी है। बात तो सच्ची है। परन्तु मुझे तीन शंका है कि यह आकाश में आकार कहते हैं जैन लोग, तो आकार कहाँ से आया? प्रभु! यह सूक्ष्म बात है।

सारे आत्मा ऊपर प्रत्येक प्रदेश में व्यंजनपर्याय है। हिम्मतभाई! दूसरा प्रश्न उसमें यह है कि यह जीव जितने मुक्ति पावे तो यहाँ संसार की राशि घटे, तो नये उत्पन्न होते हैं न संसार में? वरना संसार की राशि घट जाये। वह उसको खबर नहीं। संसारराशि घटती है तो अनन्तवें भाग में घटे। द्रव्य की—जीवद्रव्य की संख्या इतनी है कि एक शरीर में जो अनन्त जीव हैं, उससे अनन्तवें भाग में मोक्ष गये हैं और त्रिकाल में भी जब जायेंगे, तब एक शरीर में (रहे अनन्त जीव के) अनन्तवें भाग में जायेंगे। आहाहा! एक शरीर में जितने जीव हैं, उसके असंख्यवें भाग में कभी मोक्ष नहीं जायेंगे। ऐई! पण्डितजी! यह तो प्रभु का मार्ग है, बापू! आहाहा! अरेरे!

असंख्य औदारिकशरीर... एक अंगुल के असंख्यवें भाग में असंख्य तो औदारिकशरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्त जीव हैं। ऐसे सारे लोक में भरे हैं ठसाठस। यहाँ भी, अँगुल के असंख्यवें भाग में यहाँ भी अनन्त जीव हैं। शरीर असंख्य हैं, जीव अनन्त हैं अँगुल के असंख्यवें भाग में। ऐसे सारा लोक... आहाहा! उसमें से मोक्ष जायेंगे... मोक्ष गये और जायेंगे, वे एक शरीर में (रहे अनन्त जीव के) अनन्तवें भाग में जायेंगे। आहाहा! समझ में आया? वे अनन्तवें भाग में जायेंगे, फिर भी यहाँ कम होता नहीं। यह तो अनन्तगुना... अनन्तगुना... हैं उसमें इतना कम हो, उसकी क्या गिनती? यह सारा लोक भरा है असंख्य निगोद शरीर से। भगवान विराजते हैं, वहाँ भी निगोद भरा है। तो एक-एक निगोद शरीर में अनन्त जीव हैं। ऐसे असंख्य शरीर (एक) अँगुल में। ऐसे सारे लोक में निगोद के जीव सारे लोक प्रमाण से ठासठास कर भरे हैं। ज्ञानचन्दजी! यहाँ कोई पैसे... मिले ऐसा नहीं है। क्यों भाई! यह सुनना मुश्किल पड़े ऐसा है। यह तो वीतराग मार्ग है, बापू! क्या कहें?

इतने असंख्य निगोद के शरीर से भरा लोकालोक। अँगुल के असंख्यवें भाग में असंख्य प्रदेश में अनन्त जीव एक-एक शरीर में और एक-एक शरीर, जीव अनन्त। अनन्त में एक-एक जीव के साथ दो-दो शरीर। यह अँगुल के असंख्यवें भाग में इतना

है। सारा लोक प्रमाण भरा है। उसमें से मुक्ति गये... उसने पूछा कि छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति पाते हैं तो (जीव) घट जायेंगे। तो इतना तो यहाँ नया संसार... नये उत्पन्न होंगे है या नहीं? यह झूठी बात है। इतने अनन्तवें भाग में कम हो जरा, तो भी अनन्त-अनन्तगुना वहाँ पड़ा ही है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त, उसमें भी अनन्त हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त हैं अनन्त। आहाहा!

एक-एक निगोद में अनन्त जीव और एक-एक जीव... आकाश के प्रदेश का माप नहीं। उसके प्रदेश की संख्या से अनन्तगुने एक जीव में गुण हैं। ऐसे एक परमाणु में भी इतने ही गुण जड़ हैं। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह कोई भगवान ने बनाया नहीं है। तो दूसरा प्रश्न यह था और तीसरा प्रश्न है उसका कि अभव्य ने क्या ऐसा पाप किया कि अभव्य हुआ? ऐसा प्रश्न है। भव्य, अभव्य तो प्रभु! उसकी पर्याय में योग्यता है। यह भव्य, अभव्य... आयेगा न? वह तो पर्याय की योग्यता है। दोनों का द्रव्यस्वभाव तो शुद्ध पूर्णानन्द सिद्ध समान है। भव्य और अभव्य—दोनों का स्वभाव सिद्ध समान सदा पद है। ज्ञानी जब जानते हैं तब ऐसा मानते हैं कि सब जीव 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मैं तो सिद्ध समान हूँ, पर्याय में ऐसे अनुभव में आता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि इतने जीव अभव्य-भव्य क्यों?

भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय से... यह सब भेद है नहीं। बाद में कहते हैं कि यह कहा किसने? कि **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का (श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) अभिप्राय है।** समझ में आया? उसकी... देना। **इस प्रकार (आचार्यदेव) अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६वें श्लोक द्वारा) कहा है**—समयसार में।

(मालिनी)

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इममुपरि तरंतं चारुविश्वस्य साक्षात्
कलयतु परमात्मानामात्मन्यनंतम्॥

अन्त में तो ऐसा कहा, भाई! कि इस समयसार में, शुद्ध चैतन्यमात्र आत्मा है, वह कथन पूरे समयसार में किया है। अन्तिम श्लोक है न? अन्तिम श्लोक है न? अलम्... अलम्... पूर्ण हो। वहाँ है। समयसार में हों! समयसार में है न अन्तिम का? ... है न? कितना है? स्याद्वाद के पहले, हों! यह आया २४६ कलश। '**इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्।**' बस। यह समयसार में... २४६ कलश। आहाहा!

इतीदमात्मनस्तत्त्वं ज्ञानमात्रमवस्थितम्।
अखण्डमेकमचलं स्वसंवेद्यमबाधितम्॥२४६॥

आहाहा! २४४। '**अलमलमतिजल्पै**' उसमें आया न? **यहाँ मात्र इतना ही कहना है कि इस एकमात्र परमार्थ का ही निरन्तर अनुभव करो; क्योंकि निजरस के प्रसार से पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा) उससे उच्च वास्तव में दूसरा कुछ भी नहीं है...** ज्ञानमात्र आत्मा, ऐसा कहा है। इसमें आया है। केवल शुद्ध ज्ञानमात्र आत्मा, पूरे समयसार में कहना है तो यह कहना है। पर्याय भी नहीं और राग भी नहीं और परविषय... आहाहा! केवल भगवान शुद्ध ज्ञानमात्र प्रभु बस। वह ज्ञानमात्र में... स्याद्वाद में पीछे लिया है। वह ज्ञानमात्र में एकान्त नहीं हो जाता है? कि ज्ञानमात्र में साथ में अनन्त गुण आ गये।

ज्ञानमात्र कहते हैं कि है, ऐसा कहते हैं (उसमें) अस्तित्वगुण आ गया, वस्तुत्वगुण आ गया, प्रमेयत्वगुण आ गया—सब गुण आ गये उसमें। एक ज्ञानमात्र कहने से एकान्त हो जाये, ऐसा नहीं है। ... यहाँ यह कहते हैं।

श्लोकार्थ—चित्शक्ति से रहित... लो! प्रभु ज्ञानशक्ति, ज्ञानसामर्थ्य है उसमें। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य की पुकार है। प्रभु! तुम चित्शक्ति, ज्ञानशक्ति... बस। ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप (उसमें) अनन्त अविनाभावी साथ में हैं। **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा! दूसरा भाव है, पर्यायनय का विषय है। द्रव्य ही माने, पर्याय न माने तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह... चौदह... पर्याय को न मानना... वहाँ तो यहाँ तक कहा है... सूक्ष्म बात आयी है। पर्याय को न माने, वह छह द्रव्य को मानता नहीं। क्योंकि पर्याय तो छह द्रव्य को जानती है। अपने द्रव्य को तो एक ओर रखो, परन्तु पर्याय छह द्रव्य को जानती है। तो जिसने पर्याय को नहीं माना, उसने छह

द्रव्य को नहीं माना। ऐसा अर्थ है कलशटीका में। बात पहले हो गयी है। समझ में आया? क्या कहा? कि मात्र द्रव्य को ही माने और पर्याय को न माने, पर्याय में छह द्रव्य जाननेयोग्य हैं तो छह द्रव्य को ही नहीं माना।

मुमुक्षु : जाननेवाले को नहीं जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेवाले की पर्याय को नहीं माना तो छह द्रव्य को माना नहीं। आहाहा! कलशटीका में है। समझ में आया? वहाँ से ...की गड़बड़ उठी है उसमें से। कि जिसने पर्याय को नहीं माना... पर्याय दृष्टि का विषय नहीं। पर्यायदृष्टि... पर्याय दृष्टि—विषय करती है द्रव्य को। पर्याय विषय करती है, पर्याय है। वह पर्याय छहों द्रव्य में पर्याय है तो भगवान में भी पर्याय तो है, अस्तिरूप है। झूठी नहीं। परन्तु उस पर्याय में, आहाहा! जो जाननेयोग्य छह द्रव्य हैं, जो पर्याय न माने तो उसने छह द्रव्य को नहीं माना। आहाहा! केवल आत्मद्रव्य माना, वह पर्याय में... पर्याय में। आहाहा! क्या कहते हैं?

कि जो पर्याय है अपनी एक समय की, वह पर्याय नहीं है—ऐसा माने, है ही नहीं, झूठी है, तो उस पर्याय में छह द्रव्य को जानने की योग्यता... छह द्रव्य जानती है पर्याय, जो वह पर्याय न माने तो उसने छह द्रव्य को नहीं माना। आहाहा! कठिन बात है, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! सर्वज्ञ परमात्मा... वह यहाँ कहते हैं। **चित्शक्ति से रहित...** परन्तु वह चित्शक्ति से रहित कही वस्तु, परन्तु चित्शक्ति से रहित जो चीज़ है, वह अन्दर पर्याय में तो है। आहाहा! समझ में आया?

चित्शक्ति से रहित... वह जानता है कौन? चित्शक्ति से रहित मैं हूँ, वह जानता है कौन? कि पर्याय। आहाहा! पर्याय जानती है कि यह चित्शक्ति से रहित मैं हूँ। द्रव्य तो जानता नहीं, द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! समझ में आया? अनेकान्त मार्ग सूक्ष्म बहुत है, भाई! **चित्शक्ति से रहित अन्य सकलभावों को...** भाव की—पर्याय की अस्ति कही। चित्शक्ति से रहित जो भाव वह है तो सही। परन्तु उस भाव को मूल से उखाड़कर... दृष्टि में चित्शक्ति लेने से, चित्शक्ति से रहित जितने भाव हैं, (उन्हें) **मूल से छोड़कर...** उनका सर्वथा लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! ऐसा है। क्या है? आहाहा!

चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके... चित्शक्ति ज्ञानसामर्थ्य, जीवत्वशक्ति आदि सामर्थ्य पूर्ण वस्तु का स्वरूप है। उससे रहित भाव को छोड़कर, **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन...** आहाहा! क्या कहा? **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा...** उसमें **अति स्फुटरूप से अवगाहन...** अन्दर प्रवेशकर। आहाहा! समुद्र में जैसे डुबकी मारते हैं अन्दर, अवगाहन करते हैं अवगाहन, ऐसा चित्शक्ति रहित... ऐसा आत्मा... चित्शक्ति से रहित... चित्शक्ति से रहित जो चीज़ है, उसे छोड़कर चित्शक्ति में अवगाहन कर। चित्शक्ति से रहित पृथक्भाव जो है, उसको छोड़कर चित्शक्तिस्वरूप आत्मा में अवगाहन कर। आहाहा! है? अवगाहन करनेवाली पर्याय है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

चित्शक्तिमात्र... लिया न? चित्शक्तिमात्र कहने से दूसरे गुण नहीं हैं, ऐसा नहीं। परन्तु चित्शक्तिमात्र ऐसा कहने से, चित्शक्ति में आनन्दशक्ति से विपरीत जो रागादि पर्याय है, उससे रहित चित्शक्तिमात्र, ऐसा कहना है। चित्शक्तिमात्र ही लिया है। तो यहाँ तो एकान्त हो जाये। कोई कहे, चित्शक्ति मात्र केवल ज्ञानगुण है अन्दर? चित्शक्तिमात्र का अर्थ ही यह है कि चित्शक्ति के साथ में जितने अनन्त गुण ध्रुव हैं, वह चित्शक्तिमात्र में आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा कहाँ निर्णय करे? दुनिया को बाहर में मजा पड़े। उसमें दो, पाँच, दस करोड़ रुपये हो जाये और स्त्री, पुत्र कुछ ठीक हों तो आहाहा! लुट गया बेचारा वहाँ। आहाहा!

सिद्धान्त में उसको वराँका कहा है। वराँका अर्थात् भिखारी। अपनी चीज़ की लक्ष्मी की तो खबर नहीं और बाहर की लक्ष्मी को माँगे कि मुझे दो... मुझे दो... मुझे दो... मेरे में... यह लाओ... यह लाओ... यह लाओ... बड़ा भिखारी है, ऐसा कहते हैं। ऐई! यहाँ तो दरबार आये थे। करोड़ों की आमदनी है न? भावनगर दरबार। एक करोड़ की आमदनी है। दरबार भावनगर... आये थे। दरबार आते हैं और ... आते हैं, सब आते हैं। दरबार श्रीकृष्णकुमार आये थे। तो उसको कहा, दरबार! एक महीने में लाख माँगे वह छोटा भिखारी है और पाँच लाख माँगे, करोड़ माँगे वह बड़ा भिखारी है। एक करोड़ की उपज है उसकी। पालीताणा से आये थे। मानस्तम्भ का जब ... था न तब आये थे। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? नरम व्यक्ति था। परन्तु हमारे कहाँ पैसेवाले को... करना है कि राजा आये तो मक्खन लगाये, उसको अनुकूल हो ? दरबार ! ऐसा कहा, करोड़ माँगे... एक लाख, पाँच लाख, करोड़ माँगे, वह बड़ा भिखारी है। ऐई ! दरबार ! कहे, हाँ महाराज ! आहाहा !

मुमुक्षु : वह कहाँ माँगता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह माँगकर लाये नहीं, परन्तु करोड़ आये तो राजा होता है या नहीं ? प्रसन्नता होती है या नहीं ? तो भिखारी है वह। परचीज़ मेरी (माने), वह तो भिखारी होता है, प्रसन्न होता है, वह तो अज्ञानी है, मूढ़ है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि अपनी **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से प्रगटरूप से प्रत्यक्ष अवगाहन करके...** प्रत्यक्ष अन्दर अवगाहन करके। आहाहा ! **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान...** तैरता हुआ। ऊपर तैरता ऐसा लिया है न ? **'चाररुविश्वस्य साक्षात् कलयतु'...** ऊपर तैरता है। **विश्व के ऊपर...** सारी दुनिया— विकल्प और छह द्रव्य, उससे ऊपर तैरते हैं अर्थात् भिन्न ही है। भिन्न हुआ तो ऊपर तैरते हैं, अन्दर में प्रवेश नहीं करता। पर्याय से, राग से और पर से अत्यन्त पर से भिन्न तैरता है। आहाहा !

केवल (एक) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो। यह अन्त में सार कहा। ऐसा भगवान राग और पर—सारे विश्व से ऊपर तैरता है, भिन्न है। उसमें प्रवेश नहीं। ऐसा आत्मा का अन्तर्मुख होकर अनुभव करो। यह चीज़ है सारे बारह अंग में। विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक - ०२-०८-१९७९
श्लोक-६०, ६१, प्रवचन-१३

नियमसार। ४२ (गाथा) का कलश है न? समयसार का कलश है। है? दूसरा कलश है। **चित्शक्ति से रहित...** के बाद में। यह श्लोक आ गया है। है? कौन:सा पृष्ठ? ८९। ८९ पृष्ठ। कलश।

(अनुष्टुभ)

चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वासारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी॥

श्लोकार्थ—चैतन्यशक्ति से व्याप्त... सूक्ष्म विषय है भगवान! यह आत्मा जो है चैतन्यशक्ति ज्ञायक आनन्दस्वरूप प्रभु है। चैतन्यशक्ति ली है। चैतन्यस्वभाव कहो, चैतन्यशक्ति कहो, चैतन्य गुण कहो, चैतन्य का चैतन्यपना कहो। आहाहा! भाव और भाववान। भगवान आत्मा भाववान और चैतन्यपना वह भाव-गुण है। वह **चैतन्यशक्ति से व्याप्त...** इतने में रहा हुआ। चैतन्यशक्ति में व्याप्त। आहाहा! जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो प्रथम धर्म की शुरुआत, तो इसका विषय क्या? आहाहा!

तो कहा, **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है...** आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो नहीं, पुण्य-पाप का भाव भी जिसमें नहीं, जिसमें एक समय की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! ऐसा चैतन्यशक्ति से व्याप्त अर्थात् चैतन्यशक्ति से सम्पन्न... आहाहा! ऐसा सर्वस्व-सार है। **ऐसा यह जीव... ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है...** आहाहा! सम्यग्दर्शन पाने की चीज़, जो सम्यग्दर्शन का विषय... चैतन्यशक्तिमात्र इतना जीव वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा!... ऐसा है भगवान! आहाहा! चक्रवर्ती! भरत चक्रवर्ती उसका नाम है। नाम है भरत चक्रवर्ती। बहुत प्रेम है। आहाहा! यह चीज़ बापू!

मुमुक्षु : भरत चक्रवर्ती आदिनाथ भगवान के समवसरण में थे, वैसे आप भी भगवान हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है न? ...का आत्मधर्म है न? सारा... आहाहा!

कहते हैं कि जिसको भव का अन्त लाना हो... चौरासी लाख योनि में अवतार... एक-एक योनि में प्रभु! अनन्त बार अवतार किया। कल कहा था न? वादिराजमुनि। कोढ़ था शरीर में। मुनि भावलिंगी सन्त। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में प्रचुर स्वसंवेदन, वह मुनिपना! आहाहा! उस मुनि को कोढ़ था। वह प्रभु के समक्ष प्रार्थना करते थे। प्रभु! मैं शरीर के दुःख को याद करता हूँ, प्रभु! आहाहा! मैं पर की... नहीं। मैं अनन्त भव में पूर्व भव के नरक-निगोद के... मुनि हैं, भावलिंगी सन्त है। प्रभु को प्रार्थना करते हैं। चन्दुभाई! वह कोढ़... किया था न कि मेरे महाराज को कोढ़ निकला। कोढ़ था। परन्तु श्रावक ने ऐसा कह दिया राजा को कि हमारे मुनि के कोढ़ नहीं। श्रावक आया। प्रभु! मैंने दरबार को ऐसा कहा कि आपको कोढ़ नहीं। शान्ति रखो, बापू! शान्ति रखो।

भगवान के मार्ग में अच्छा होगा। कोढ़ तो है। श्रावक को कोढ़ नहीं है, ऐसा दरबार को कहा। और यहाँ आकर ऐसा कहा कि अरे! आपको कोढ़ है मुझे ख्याल था। मेरे मुनि को कोढ़ ऐसा हम सुन न सके। आहाहा! तो मैंने दरबार को तो ऐसा कहा। भाई! शान्ति रखो, प्रभु! भगवान का प्रताप, आत्मा का प्रताप ऐसा है कोई। प्रार्थना करते-करते... आहाहा! प्रभु! मैं नरक और निगोद का दुःख याद करता हूँ तो आयुध लगता है, छुरा लगता है। मुनि है, भावलिंगी सन्त है, परमेष्ठी पद में है। आहाहा! परन्तु विकल्प ऐसा आया और बात तो यह थी कि यह कोढ़ है, वह कोढ़ मिट जायेगा। प्रभु को प्रार्थना, प्रभु! आप जहाँ अवतरते हैं, वहाँ नगर में सोने के दरवाजे और रत्न के कंगूरे... प्रभु! आप जहाँ गर्भ में आते हो तो वहाँ इन्द्र आकर साफ करते हैं। प्रभु! मैं तो आपकी प्रार्थना करता हूँ। मैंने अनन्त काल में दुःख भोगे, वह याद करता हूँ तो चोट लगती है, आयुध लगता है। उसका अर्थ है कि अनन्त काल में जो दुःख हुआ, वह दुःख (अब) नहीं होगा। समझ में आया? एक-दो भव में केवलज्ञान लेकर मोक्ष हो जायेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... यह पद्मप्रभमलधारि मुनि कहते हैं। आहाहा! **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सासर...** सारा ज्ञान, अनन्त शान्ति, वीतरागता, आहाहा! ऐसा भरा पड़ा है प्रभु चैतन्य वह जीव है। शरीर, वाणी, कर्म यह तो नहीं, परन्तु पुण्य-पाप के परिणाम वह जीव नहीं। वह तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय भी व्यवहार जीव

है। निश्चय जीव यह है। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा! ऐसी चैतन्यशक्ति से व्याप्त पूर्णानन्द प्रभु, जिसका सर्वस्व... सर्व+स्व—अपना सार है। आहाहा! **ऐसा यह जीव...** ऐसा यह जीव **इतना ही मात्र है...** यहाँ तो स्त्री, बच्चे, पुत्र, धूल, हमारे हैं... हमारे हैं... मार डाला जीव को। समझ में आया? मार डाला का क्या अर्थ? कि अपनी चैतन्यशक्ति सम्पन्न पूर्णानन्द का नाथ, उसमें, पर्याय भी द्रव्य में नहीं। दया, दान, व्रतादि का विकल्प तो नहीं, तो यह संयोगीचीज़ मेरी है, ऐसी मान्यता में चैतन्य का—ज्ञाता-दृष्टा चैतन्य सर्वस्व उसका—उसने अनादर किया। आहाहा! कठिन बात, बापू! जैनधर्म का सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का विषय अलौकिक चीज़ है, भाई! आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना बाहर में दिखाव जितना करे कि इतना मैं त्यागी हूँ, मैंने भोग छोड़ा है, वह सब मिथ्यात्व का पोषण है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

जीव इतना ही मात्र है... ऐसा लिखा है न? **ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है...** पर्याय है, राग है, परन्तु वह जीव नहीं। आहाहा! यह तो पहले आ गया न? पहली ३८वीं गाथा में। शुरु वहाँ से किया। निश्चय आत्मा, वास्तव में आत्मा पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप चैतन्य अखण्डानन्द, वही वास्तव में आत्मा है। निश्चय आत्मा। आहाहा! जिसमें पर्याय का अभाव है। पर्याय है सही, परन्तु जिसमें पर्याय का अभाव है, ऐसा ध्रुव चिदानन्द मेरा प्रभु, आहाहा! वही वास्तव में आत्मा है और उस आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। बाकी लाख क्रियाकाण्ड करे, मर जाये, सूख जाये, परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं होगा, मिथ्यात्व का पोषण होगा। आहाहा!

ऐसा यह जीव... ऐसा यह जीव क्या? **चैतन्यशक्ति से व्याप्त...** रहा हुआ **जिसका सर्वस्व-सार है, ऐसा यह...** आत्मा। आहाहा! **इतना ही मात्र है...** और 'ही' लिया। **इतना ही मात्र है...** परमार्थ से आत्मा भगवान पूर्णानन्द का नाथ चैतन्यशक्ति का स्वभाव का पिण्ड है, जिसमें केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हो, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह ज्ञानगुण है, ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड चैतन्यशक्ति सम्पन्न प्रभु है। आहाहा! ओहोहो! उसको मूल चीज़ क्या है...? और मूल चीज़ पर उसका लक्ष्य ही नहीं अनादि से। यह त्याग किया, यह किया, यह छोड़ा, कपड़े छोड़े, मार डाला। समझ में आया?

यहाँ तो कहे कि **ऐसा यह जीव...** भाषा देखो! अमृतचन्द्राचार्य की। **इतना ही...**

इतना ही मात्र... आहाहा! **चित्शक्ति से शून्य...** चाहे तो भगवान की भक्ति, विनय, त्याग राग आदि शुभ हो, वह सब चैतन्यशक्ति से शून्य है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण, भक्ति, मन्दिर बनाना, उसमें शुभभाव है। लक्ष्मीचन्दभाई! ऐई! जेठालालभाई! देखो! यह बड़े सेठिया है। मन्दिर बनाया न १५ लाख, २० लाख का। नैरोबी। सेठ आये हैं यहाँ विनती करने को। करोड़पति हैं दोनों। धूल-धूल। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं वहाँ। हैरान होने का रास्ता है।

प्रभु! आत्मा में लक्ष्मी तो नहीं, परन्तु लक्ष्मी का प्रेम-राग, वह भी नहीं और तीन लोक के नाथ की भक्ति का राग, वह भी नहीं और उस राग का ज्ञान करनेवाली एक समय की पर्याय, वह भी उसमें नहीं। आहाहा! इसको दृष्टि में लेना... राग के विकल्प से हटकर जो वर्तमान पर्याय राग सन्मुख है, स्वभाव से विमुख है, उस पर्याय को राग से विमुख कर स्वभाव के सन्मुख करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। धर्म की पहली सीढ़ी अभी तो हों! पंचम गुणस्थान की दशा तो कोई अलौकिक बात है। प्रतिमा। यह कहा, लोग लेकर बैठ गये हैं, वह प्रतिमा-फ्रतिमा है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **इस चित्शक्ति से शून्य...** आहाहा! अरे! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्रज्ञान करना, पढ़ने का विकल्प, आहाहा! वहाँ चैतन्यशक्ति से शून्य चीज़ है। यह विकल्प जो है, वह चैतन्यशक्ति से शून्य है। ऐसी बातें हैं, प्रभु! तो है क्या? **शून्य जो यह भाव है...** देखा! है, अस्ति है। चैतन्यशक्ति से शून्य ऐसा दया, दान, रागादि भाव हैं, परन्तु वह चैतन्यशक्ति से शून्य हैं। आहाहा! तो फिर हम उसको पुद्गल कहते हैं। आहाहा!

यह भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं। अरेरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव पुद्गल है।

मुमुक्षु : पुद्गल है तो स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहते हैं? वर्ण, गन्ध, रस, रूप भले न हो, परन्तु चैतन्य

से शून्य है; इसलिए पुद्गल कहते हैं। वह तो प्रश्न आता है, नया नहीं है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला भी पुद्गल और एक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बिना की पर्याय, वह भी पुद्गल। समझ में आया? और तीसरे कलश में कहेंगे कि विकल्प है, वह तो घोर संसार का मूल है। आहाहा! शुभराग आया... है, हो, परन्तु कहते हैं कि यह तो घोर संसार का मूल है। भगवान आत्मा तो मुक्ति का मूल है। आहाहा! है का अर्थ यह कि है। यह भाव है, ऐसा तो कहा। परन्तु है, वह क्या है? भगवान चैतन्यशक्ति सम्पन्न प्रभु है, यह (विकार) चैतन्यशक्ति से शून्य है। है, तो है क्या? चैतन्यशक्ति से शून्य है, इसलिए पुद्गल है। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का भाव पुद्गल है, ऐसा कहते हैं। और यहाँ कहते हैं कि व्यवहार करते-करते धर्म होगा। मिथ्यात्व होगा। आहाहा! अनन्त संसार करनेवाला मिथ्यात्व। मिथ्यात्व के गर्भ में अनन्त संसार पड़ा है। आहाहा! **इस चित्शक्ति से शून्य जो यह भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।** भगवान अमृतचन्द्राचार्य। वस्तु का स्वरूप दृष्टि का विषय बताते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं और विषय करना—यह है ऐसा निर्णय—वह पर्याय है। परन्तु वह पर्याय वस्तु में नहीं। आहाहा! तब ऐसा कहा कि जो पर्याय है, उसे यहाँ पुद्गल कहा। तो पुद्गल से निर्णय होता है? पुद्गल कहा तो उसकी पर्याय अन्दर में सन्मुख गई। उस पर्याय में आत्मा जानने में आया और वह पर्याय चैतन्य हुई। आहाहा! चैतन्य की पर्याय यह हुई। समझ में आया? सम्यग्दर्शन पर्याय चैतन्य की पर्याय है। रगाादि पर्याय संसार की—घोर संसार की पर्याय है। है सही। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आज यहाँ लोग आये हैं। ... लिखा है न, भाई! हजार के ऊपर लोग हुए। बीचोंबीच भर गया। अभी तो बहिन का (जन्म) दिन आयेगा तब... वह गुरुवार है। ... पर यहाँ दिव्यध्वनि...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो... है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुन तो सही प्रभु! तू कितना कितना और कितना है? कि तू है एक। परन्तु एक कैसा है? कि चैतन्यशक्ति, आनन्दशक्ति... चैतन्यशक्ति के साथ अनन्त शक्ति भाववान, वह भाववान जो जीव है इतना ही जीव है। अनन्त चैतन्यशक्ति, अनन्त

आनन्दशक्ति, अनन्त वीतरागशक्ति, अनन्त स्वच्छत्वशक्ति, अनन्त जीवत्वशक्ति—ऐसी अनन्त शक्ति जो चैतन्यमय है, वह जीव है। इतना ही जीव है। ऐसा यह जीव है। इतना ही जीव है। आहाहा! तो ... है। तो ... है। आहाहा! समझ में आया? है या नहीं अन्दर?

और (४२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं)— वह श्लोक तो अमृतचन्द्राचार्य का था समयसार का। अब यह श्लोक मुनिराज कहते हैं। ...है न?

(मालिनी)

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा
व्रजति न च विकल्पं संसृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः
परपरिणतिदूरं याति चिन्मात्रमेषः ॥६०॥

आहाहा! **श्लोकार्थ—सतत्रूप से अखण्ड ज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा...** आहाहा! दो बात कहते हैं। अखण्ड—सतत्रूप से अखण्ड प्रभु है। निरन्तर अखण्ड वर्तमान अखण्ड परमात्मा स्वयं है। आहाहा! **सतत्रूप से अखण्ड ज्ञान की...** वहाँ तक सिद्ध किया। क्या कहा? वहाँ तक तो चीज़ कही ध्रुव-द्रव्य। आहाहा! अब यह **सद्भावनावाला आत्मा...** वह पर्याय कही। अलौकिक बातें हैं, बापू! धर्म, दिगम्बर धर्म अर्थात् पक्ष नहीं। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप है। कहते हैं **सतत्रूप से अखण्ड ज्ञान की...** प्रभु तो अखण्ड—सतत्—निरन्तर अखण्ड एकरूप है। आहाहा! वर्तमान में भी अखण्ड एकरूप है। त्रिकाली कहना, वह पीछे। वर्तमान में अखण्ड एकरूप विद्यमान वस्तु है। आहाहा!

सतत्रूप से अखण्ड ज्ञान... अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् आत्मा। अनन्त गुणसम्पन्न ज्ञान (वान) आत्मा। उसकी सद्भावना, यह वस्तु की एकाग्रता। आहाहा! सद्भावना वह पर्याय है। पहले कहा था कि इसके अतिरिक्त सर्व पुद्गल है और यहाँ कहते हैं अखण्ड ज्ञेय सततं अखण्ड भगवान आत्मा, उसकी अन्दर एकाग्रतारूपी भावना, वह भावना उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकरूप है। समझ में आया? और वस्तु है, वह

पारिणामिकस्वभाव है। आहाहा! वस्तु है सहज परमस्वभावभाव भगवान, ज्ञायकभाव का पिण्ड प्रभु, उसकी भावना... सद्भावना—सत् है, उसकी भावना। जैसा पूर्ण सत् है, उसकी एकाग्रतारूपी भावना। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

सद्भावनावाला आत्मा... सद्भावनावाला आत्मा... एक ओर आत्मा पर्याय बिना का कहा। समझ में आया? यहाँ कहा, सद्भाववाला आत्मा... आहाहा! जिसने त्रिकाली ज्ञायकभाव की एकाग्रता की स्वसन्मुख करके, ऐसी सद्भावनावाला आत्मा।

मुमुक्षु : यहाँ क्षायिकज्ञान से भी रहित बोलते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह क्षायिकज्ञान... सद्भाववाला क्षायिक, उपशम और क्षयोपशमज्ञान है। पर्यायवाला। पर्यायवाला कहते हैं। यह तो प्रभु का मार्ग, बापू! आहाहा! समझ में आया?

सतत्रूप से अखण्ड ज्ञान... अर्थात् आत्मा, उसकी सद्भावनावाला। उसकी सद्भावना अन्तर सन्मुख होकर... आहाहा! पर्याय से विमुक्त होकर, स्वभाव से सन्मुख होकर जो भावना हुई। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग स्याद्वाद कौन-सी अपेक्षा से है...? **सद्भावनावाला आत्मा (अर्थात् मैं अखण्ड ज्ञान हूँ, ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा)** आहाहा! जैसे भगवान निरन्तर अखण्ड आत्मा है, उस ओर की एकाग्रता की भावना जिसको निरन्तर वर्तती है, समकिती को। आहाहा!

जैसे वस्तु निरन्तर ज्ञान चैतन्यस्वरूप भगवान, चैतन्यशक्ति सर्वस्व जिसका सार अखण्ड एकरूप निरन्तर है, जिसकी सन्मुख होकर जो सद्भावना पर्याय प्रगट हुई, वह सद्भावनावाला आत्मा... आहाहा! है या नहीं अन्दर? यह तो प्रभु की वाणी है, बापू! दिगम्बर सन्तों की वाणी अर्थात् सर्वज्ञ की वाणी है। केवली के अनुसार वाणी है। आहाहा! यह तो गृहस्थ ने लिखा है न...? परमार्थ वचनिका में लालचन्दभाई! परमार्थवचनिका। बनारसीदास। केवली अनुसार... आहाहा! अरे... परन्तु आप गृहस्थ हो न? परन्तु सम्यग्दर्शन तो तिर्यंच का और सिद्ध का समान है। समझ में आया? आहाहा!

तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन में... आहाहा! वह सद्भावना हुई, आहाहा! वह पर्याय है। यह सद्-भावना, वह मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग अखण्ड ज्ञायकभाव

की एकाग्रता से उत्पन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ की वाणी यह है बापू! ... जगत को... आहाहा! ... छह खण्ड के नाथ चक्रवर्ती और इन्द्रों जिनके पास सुनने को कुत्ते का बच्चा—पिल्ला जैसे बैठे। गलुडिया को क्या कहते हैं? पिल्ला-पिल्ला। आहाहा! और राग और पुण्य... जगत में जगत... जंगल में से चले आये सिंह, केसरी सिंह, शेर और काले नाग, २५-२५ हाथ के लम्बे काले नाग जंगल में से चले आये प्रभु की वाणी सुनने को। आहाहा! बापू! वह वाणी कैसी होगी! आहाहा!

कि जो वाणी (सुनने) सर्प बैठा हो और साथ में चूहा भी हो। परन्तु नजर भी नहीं, खबर भी नहीं कि यह चूहा है या नहीं? आहाहा! इतना सुनने में एकाग्र होते हैं। आहाहा! बिल्ली और सिंह साथ में बैठे हो। बिल्ली को खबर नहीं कि यह सिंह है, सिंह को खबर नहीं कि बिल्ली मेरे बाजू में बैठी है। डर नहीं है। ऐसी सभा करोड़ मनुष्यों, करोड़ों तिर्यंचों, करोड़ों देव... आहाहा! नारकी तो आ सके नहीं। तिर्यंच, मनुष्य, (देव)... आहाहा! यह वाणी यह है।

कहते हैं कि प्रभु! एक बार सुन तो सही, नाथ! तेरी महिमा की—माहात्म्य की तुझे खबर नहीं। तेरी महत्ता इतनी है कि सिद्ध की पर्याय भी इसके सामने कुछ गिनने में आये नहीं। ऐसा अन्दर भगवान चित्शक्ति सम्पन्न भगवान महान, महत्ता महान, महिमा महान। आहाहा! ऐसी चीज़ में जिसने दृष्टि दी, उसकी जिसने भावना प्रगट की। आहाहा! वह सद्भावनावाला आत्मा... देखो! वाला तो कहा यहाँ।

अर्थात् मैं अखण्ड ज्ञान हूँ ऐसी सच्ची... एकाग्रता जिसमें निरन्तर वर्तती है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो उसको कहिये चौथा गुणस्थान। आहाहा! अभी तो चौथा है, पाँचवें की तो बात नहीं। जिसको निरन्तर... सच्ची भावना निरन्तर वर्तती है। आहाहा! भेदज्ञान करना पड़ता नहीं उसको। करना यह है। त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध प्रभु का आश्रय लेना एक ही बात है। बाकी पर्याय है, राग है, हो। है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। जिसका आश्रय करना है, वह त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु है। उसका आश्रय करके जो भावना उत्पन्न हुई, वह सद्भावनावाला आत्मा **घोर विकल्प को नहीं पाता...** आहाहा! ज्ञानचन्दजी!

जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी घोर संसार है। समकिती को भावना में अन्दर है, निरन्तर है। भले विकल्प हो, परन्तु वह तो निरन्तर अन्तर भावनावाला है। आहाहा! समझ में आया? सतत् निरन्तर अखण्डानन्द प्रभु की भावना तो निरन्तर उसमें चलती है। आहाहा! इसको घोर संसार का कारण विकल्प नहीं होता। विकल्प को प्राप्त नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहा? विकल्प होते हैं, परन्तु विकल्प को प्राप्त नहीं होता। उसका ज्ञाता-दृष्टा रहकर अपनी भावना ध्रुव पर पड़ी है। आहाहा! अरे! साधारण मनुष्य ने सुनी न हो और धर्मी हम हो गये। अरे रे! अनन्त काल से उसने अपना बिगाड़ा है। सुधारने के रास्ते में स्थान मिले, उसकी दरकार नहीं। आहाहा!

संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता... विकल्प आता है तो भी स्वभाव की एकाग्रता की भावना में विकल्प की एकता उसमें है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **किन्तु निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता हुआ...** सद्भाव... अन्दर में वस्तु निर्विकल्प समाधि की भावना। आहाहा! निर्विकल्प समाधि, शान्ति, वीतरागता। निर्विकल्प वीतरागता को प्राप्त करता हुआ। आहाहा! **परपरिणति से दूर...** यह परिणति नहीं। अन्तर द्रव्यसन्मुख होकर सद्भावना हुई, वह निर्विकल्प समाधिरूपी पर्याय हुई। समझ में आया? ऐसी बातें। वह परपरिणति से दूर...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है। ठीक। यहाँ तो देखा है उसको। आहाहा!

घोर विकल्प को नहीं पाता,... आहाहा! **किन्तु निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता हुआ परपरिणति से दूर...** परपरिणति है सही, परन्तु दूर है। भगवान के समीप और परपरिणति से दूर। आहाहा! अरे! ऐसी बातें। आहाहा! अरे! सुनने को मिले नहीं, उसको कब विचार में लेकर अन्दर में रखे? समझ में आया? आहाहा! निर्विकल्प शान्ति को, वीतरागता को प्राप्त करता हुआ, परपरिणति से दूर... आहाहा! विकल्प की परिणति जो घोर संसार का कारण है, उससे तो दूर परिणति अन्दर में है। आहाहा! स्वभाव के सन्मुख अर्थात् समीपता की परिणति है और विकल्प की परिणति से दूर परिणति है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। लोगों को ऐसा लगे यह तो एकान्त निश्चय... निश्चय... निश्चय... निश्चय... है। व्यवहार से भी होता है, ऐसा अनेकान्त तो आता नहीं, ऐसा

कहते हैं। व्यवहार हो, परन्तु उससे होता है, ऐसी बिल्कुल बात नहीं। आहाहा! व्यवहार है बीच में। सम्यग्दर्शन में एकाग्रता हुई, निर्विकल्प उसकी परिणति हुई, (साथ में) विकल्प है, परन्तु विकल्प की एकता को प्राप्त नहीं होता। उससे दूर परिणति है। परपरिणति से दूर परिणति है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

पाठ यह लिया न? **घोर विकल्प को नहीं पाता किन्तु निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करता हुआ...** निर्विकल्प परिणति कहो या निर्विकल्प समाधि कहोम। वह **परपरिणति को दूर...** आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग। **अनुपम, अनघ चिन्मात्र को...** अनुपम-जिसको कोई उपमा नहीं, ऐसा नाथ प्रभु अन्दर। आहाहा! जैसे बर्फ की ५०-५० मण की पाट होती है मुम्बई में। बर्फ की ठण्डी... ठण्डी... ठण्डी... ठण्डी... ठण्डी... ५०-५० मण की। हमने तो बहुत बार देखी है न! ऐसे यह भगवान शीतल, शान्ति-अविकारी शान्ति का पिण्ड है। आहाहा! समाधि कहा है न? तो समाधि आयी कहाँ से? यह अविकारी शान्ति है, उसमें से समाधि आयी। आहाहा! समझ में आया? शान्ति... शान्ति... शान्ति... अविकारी परिणाम। आहाहा! वह शान्ति के कारण समाधि को प्राप्त करता हुआ, ऐसे। **समाधि को प्राप्त करता हुआ...** विकल्प को प्राप्त करता हुआ नहीं। आहाहा!

परपरिणति से दूर प्रभु अनुपम, अनघ चिन्मात्र... आहाहा! अनघ है न? **दोषरहित, निष्पाप, मलरहित।** वास्तव में तो अनघ अर्थात् पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। उससे रहित। अनघ। अघ। अघ अर्थात् पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव। आहाहा! कहा न योगीन्द्रदेव ने? 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव। उनका दोहरा है। दिगम्बर सन्त। 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी तो पुण्य को पाप कहे।' अनघ में पाप और पुण्य दोनों आये। आहाहा! अनघ अर्थात् पुण्य और पाप से रहित। अनघ है न?

अनुपम, अनघ चिन्मात्र को (चैतन्यमात्र आत्मा को) प्राप्त होता है। अर्थात् मोक्ष। पूर्ण दशा को यह भावना से, पूर्ण दशा को—सिद्धपद को प्राप्त होता है। आहाहा! एक कलश में कितना भरा है! ऐसी बात कहाँ है? बापू! दिगम्बर के अतिरिक्त—दिगम्बर सन्त के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा! इसलिए दूसरे को दुःख लगे। आहाहा! पद्मनन्दिपंचविंशति में कहा है... पद्मनन्दि मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं। एकाध भव

करके मोक्ष जानेवाले हैं। वह ब्रह्मचर्य के रूप का वर्णन किया। ब्रह्मचर्य, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना वह ब्रह्मचर्य नहीं।

ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु, उसमें चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य। उसकी परिभाषा की। पद्मनन्दि पंचविंशति में २६वाँ अधिकार है। नाम तो पद्मनन्दि पंचविंशति है। २६वाँ अधिकार ब्रह्मचर्य का है। बहुत अधिकार लिया है। पीछे कहा मुनिराज ने। आहाहा! हे युवाओं! तुम बाहर के विषय के रस के प्रेमी हो, यह बात तुमको न रुचे तो माफ करना। हमारे पास क्या आशा रखोगे? मुनिराज ऐसा कहते हैं। ऐई... धन्नालालजी! कठिन बात लगे, प्रभु! ऐसी स्त्री को देखकर रस आये, उसके विषय में रस आये, उसमें मैं कहता हूँ कि यह तो पाप है, अधर्म है और अन्तर के आनन्द में, ब्रह्म अर्थात् आनन्द में चरना अर्थात् रमना, वह ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह भी ब्रह्मचर्य नहीं। यह भी एक शुभभाव है। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार ऐसा शरीर से ब्रह्मचर्य पाला है। परन्तु ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप उसमें चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य है। प्रभु! तूने कभी किया नहीं। परन्तु जिनको उस विषय का रस है, ऐसे युवाओ! ऐसा कहा है। हे युवाओ! यह मेरी बात आपको न रुचे, मैं तो मुनि हूँ, माफ करना। हमारे पास क्या उपदेश है? आहाहा!

मुमुक्षु : माफी माँगकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान छोड़ दिया। ऐसा कहा, मैं ऐसा कहता हूँ और तुमको न रुचे तो माफ करना प्रभु! क्या करें? हमारे पास में तो यह है। आहाहा! समझ में आया? हलवाई की दुकान पर क्या अफीम मिलेगी? कंदोई समझे? क्या कहते हैं? हलवाई। यह मावा है। वहाँ मावा मिलता है। तो अफीम का मावा वहाँ मिले? दूध का मावा मिले। आहाहा!

इसी प्रकार यहाँ मुनिराज ऐसा कहते हैं, प्रभु! हमारे पास तो आनन्द के मावा की बात है। ब्रह्मचर्य की बात है, प्रभु! तुझे न रुचे, न पसन्द आये तो माफ करना। हमारे पास तुम लेने आये हो, परन्तु हमारे पास और कुछ है नहीं। राग तो विष है। अरर्र! पंच महाव्रत के परिणाम विष हैं। आहाहा! पंच महाव्रत में चौथा व्रत आ गया या नहीं? चौथा (ब्रह्मचर्य) व्रत आया या नहीं पाँच में? वह विष है। व्रत, व्रत चौथा वह राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... ब्रह्मचर्य का उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ब्रह्मचर्य का उपदेश। वह नहीं। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द का नाथ प्रभु प्रज्ञा ब्रह्मस्वरूप, ज्ञान और आनन्दस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु। उसकी दृष्टि करके ध्येय बनाकर उसमें रमना, आनन्द का भोजन करना। आहाहा! उसका नाम ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मचर्य मुक्ति का कारण है। बाकी शरीर से स्त्री का सेवन न किया, बालब्रह्मचारी है; इसलिए ब्रह्मचर्य है सच्चा। वह सच्चा ब्रह्मचर्य है ही नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी नहीं उसको। व्यवहाराभास कहने में आता है। निश्चय हो तो व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! ब्रह्म अर्थात् आनन्द में रमना हो तो पंच महाव्रत के परिणाम में चौथे व्रत को राग कहने में आता है, व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अरेरे! गर्व उतर जाये ऐसा है। यह मैंने किया, यह मैंने किया। आहाहा! प्रभु! क्या किया तूने? विष पिया। राग किया, यह किया, वह तो विष पिया प्रभु! अमृत के सागर में से थोड़ा अमृत लेकर पिया नहीं तूने। आहाहा!

परपरिणति से दूर, अनुपम, अनघ चिन्मात्र को प्राप्त होता है। केवल आत्मा ज्ञानमात्र। अखण्ड ज्ञानमात्र के सद्भावना से विकल्प की घोर पर्याय को नहीं प्राप्त होकर, चिन्मात्र पर्याय पूर्ण आत्मा को प्राप्त होता है। आहाहा! होता है पर्याय को प्राप्त। द्रव्य तो द्रव्य है। वह सद्भावना से पूर्ण पर्याय को प्राप्त होता है। आहाहा!

दूसरा श्लोक। मुनिराज का है।

(स्रग्धरा)

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चितांघ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वांतविध्वंसदक्षं
एते संतो भवाब्धेरपरतटममी यांति सच्छीलपोताः ॥६१॥

आहाहा! क्या कहते हैं? तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ परमात्मा

जिनकी **भक्ति से नमित देवेन्द्र मुकुट की सुन्दर रत्नमाला...** इन्द्र जिनको नमस्कार करते हैं तो रत्नमाला... झुकते हैं तो रत्नमाला साथ में झुकती है। आहाहा! इन्द्र एकावतारी—एकभवतारी। सौधर्म इन्द्र एकभवतारी—एक भव के बाद मोक्ष जाना है मनुष्य होकर। उसकी इन्द्राणी को एक भव के बाद मोक्ष जाना है। आहाहा! वह जब प्रभु को वन्दन करते हैं, कहते हैं।

भक्ति से नमित... ऐसा हों! ऐसे ही झुक गये, ऐसा नहीं। **भक्ति से नमित देवेन्द्र मुकुट की सुन्दर रत्नमाला...** ऊपर जो मुकुट है, उसमें रत्न की माला लटकती है। आहाहा! उस **रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं...** उस रत्नमाला से प्रभु को पूजते हैं अर्थात् नमते हैं। झुकते हैं, वह पूजते हैं। **ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा...** भगवान **तीर्थाधिनाथ द्वारा यह सन्त...** आहाहा! मुनि की मुख्यता से बात कही है।

सन्त जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक... भगवान का यह उपदेश है। आहाहा! राग करना और राग का भोगना, वह भगवान का उपदेश है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा यह सन्त जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर...** आहाहा! वीतराग का यह उपदेश है। पुण्य करो तो ऐसा होगा, यह उपदेश ही नहीं। आहाहा! **दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर ऐसा इस प्रकार का उपदेश समझकर...** व्याख्या क्या की? उपदेश में क्या आता है? आहाहा! यह उपदेश। परमात्मा त्रिलोकनाथ को इन्द्र झुकते हैं रत्नमाला... एक-एक रत्न की कीमत क्या? आहाहा! भगवान का उपदेश क्या है? आहाहा!

उनके उपदेश द्वारा... उपदेश कैसा? कि **दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर...** अर्थात् वीतरागीपर्याय। आहाहा! वीतराग भगवान वीतरागीपर्याय प्रगट करने को कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि चारों अनुयोग का सार... पंचास्तिकाय की १७२ गाथा में (कहा कि) चारों अनुयोग भगवान के श्रीमुख से निकले, परन्तु सार क्या? तात्पर्य क्या? वीतरागता। आहाहा! भगवान का उपदेश उसका तात्पर्य वीतरागता। आहाहा! वह आत्मावलोकन में है गाथा। मुनियों मुहु... मुहु... बारम्बार वीतरागपने का उपदेश देते हैं—ऐसा पाठ है। समझ में आया? तो भगवान का उपदेश यह है। आहाहा!

इस प्रकार का... इस प्रकार क्या? **दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने**

में चतुर ऐसा... जो उपदेश... चतुर ऐसा उपदेश... आहाहा! राग करो और दया करते-करते धर्म हो जायेगा। व्यवहार करते... वह भगवान का उपदेश है नहीं। आहाहा! समझ में आया? बापू! यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा! आहाहा! तीर्थाधिनाथ महावीर परमात्मा का उपदेश क्या है? कि **जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक...** जन्म का नाशक, अवतार लेना स्वर्गादि में, उसका नाशक। आहाहा! जरा का नाशक—शरीर की अवस्था। मृत्यु का नाशक—देह छूटना, दूसरा अवतार लेना—ऐसी मृत्यु, उसका नाशक। आहाहा! जन्म और मृत्यु का नाशक। जरा तो बीच में है। आहाहा! भव में जन्मना और भव का नाश होना, उससे रहित भगवान का उपदेश है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त)... पूर्व में कहा ऐसा उपदेश... यह उपदेश ऐसा है, ऐसा समझकर। वह उपदेश में राग करना, राग से लाभ, ऐसा उपदेश है नहीं। तो उसको समझकर... आहाहा! वीतरागवाणी में से यह निकालना। वीतरागपना प्राप्त हो, यह निकालना। समझन में यह लेना कि भगवान ने राग कहा है और राग से लाभ होगा, वह भगवान के उपदेश में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ऐसा कहते हैं कि **दुष्ट पापसमूहरूपी...** पाप अर्थात् पुण्य और पाप दोनों। **अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर...** भगवान का उपदेश। आहाहा! **ऐसा इस प्रकार का उपदेश...** जिसमें जन्म-जरा-मरण का और पाप-पुण्य का नाश हो—ऐसा भगवान का उपदेश है। यह ... वीतरागता उत्पन्न हो, ऐसा भगवान का उपदेश है। ऐसी बात है। ऐसे भगवान को उपदेश को छोड़कर और ऐसा उपदेश देना कि व्रत करो, तपस्या करो, व्रत करो, दान करो, दया करो। **दान, शील, तप भावना। धर्म के चार प्रकार।** श्वेताम्बर में बहुत चलता है। धर्म के चार प्रकार हैं—दान, शील, तप, भावना। आता है न? सब खबर है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि भगवान का यह उपदेश है ही नहीं। दान पर को देना, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, आहाहा! यह तो सब शुभभाव है। आहाहा! समझ में आया? वह शुभभाव का... शुभभाव, जन्म-मृत्यु का कारण अघ को नाश करनेवाला भगवान का उपदेश... आहाहा! सारे सिद्धान्त में से वीतरागता उत्पन्न हो, वह निकालना। राग से

लाभ होना, ऐसा छोड़ देना। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! मुनियों की गाथा अलौकिक है। आहाहा!

जिसका उपदेश समझकर... भगवान का उपदेश ऐसा है, ऐसा समझना। दूसरा उपदेश भगवान का ऐसा नहीं। व्यवहार करते निश्चय होगा; दया, दान, व्रत पालते-पालते तुझे समकित होगा। बहुत परीषह, उपसर्ग सहन करते-करते तुझे... एक आया था बुद्धिसागर साधु। यहाँ आया था। ... एक तो दो बार आया था। क्षुल्लक हो गया। वहाँ आया था। .... कौन सा गाँव? झमकलाल (का)।

मुमुक्षु : .... कुरावड।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुरावड... कुरावड... बालब्रह्मचारी है न? (झमकलालजी), उसका गाँव कुरावड, आया था। क्षुल्लक हो गया तो इतना अहंकार हो गया। बस ऐसा करते-करते क्षयोपशम समकित हो जायेगा। ऐसा परीषह सहन करते-करते हो जायेगा। साधु इतना-इतना परीषह सहन करे तो निश्चय समकित होगा। अरे! प्रभु! शान्त हो। उसका मस्तिष्क घूम गया है। मस्तिष्क घूम गया है, ऐसा सुना है। अस्थिरता। युवा आदमी है युवा। बहुत युवा। आहाहा! इतना-इतना परीषह सहन करे और तुम कहो कि समकित नहीं? साधु नहीं? अरे! प्रभु! सुन तो सही! आहाहा! वह सब पंच महाव्रतादि का साधन वह तो क्लेश है। राग है तो क्लेश है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में है न? क्लेश। श्लोक है। आहाहा! प्रभु! मार्ग कठिन है, भाई!

दुष्ट पापसमूहरूपी अन्धकार का ध्वंस करने में चतुर ऐसा इस प्रकार का उपदेश समझकर, सत्शीलरूपी नौका द्वारा... क्योंकि उपदेश में यह कहा है। सत्शीलरूपी नौका... अपने शुद्धस्वरूप की परिणति निर्मलधारा, वह सत्स्वरूपी नौका। सत्शीलरूपी नौका—सत् भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता—शुद्ध परिणति, वह सत्शीलरूपी नौका। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, वह सत्शीलरूपी नौका नहीं। आहाहा! **सत्शीलरूपी नौका द्वारा भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** भवरूपी अब्धि—समुद्र। आहाहा! यह समाधि द्वारा और सत्शील की नौका द्वारा... नौका से समुद्र से पार उतरते हैं न? तो सत्शीलरूपी नौका द्वारा संसारसमुद्र को पार करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक - ०३-०८-१९७९
गाथा - ४९, प्रवचन-१४

४९। नियमसार, (गाथा) ४९। थोड़ दिन (बाकी) हैं न यह शिक्षण शिविर के। इसलिए यह जरा सार ४९-५०। सार है। गाथा। '**एदे सव्वे भावा**' '**एदे**' अर्थात् क्या? कि जो चार भाव हैं उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक पर्याय में। तो उदयभाव में, भगवान की पूजा, प्रतिमा की पूजा, भगवान का दर्शन साक्षात् समवसरण, सब राग-शुभभाव उदयभाव में आता है। आहाहा! तो यह उदयभाव है। ऐसे उपशम, क्षयोपशम (आदि) चार पर्याय में हैं। यह कहते हैं, देखो!

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्धसहावा सुद्धणया संसिदी जीवा॥४९॥

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये,
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

भले भव में लीन हो, परन्तु वस्तु सिद्ध समान है। आहाहा!

टीका :— यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन है। आहाहा! (व्यवहार) हेय है, परन्तु व्यवहार से व्यवहार उपादेय। उपादेय का अर्थ व्यवहारनय से जो विषय है, वह जाननेयोग्य बराबर है। जानना छोड़ दे तो दृष्टि विपरीत हो जाती है। आहाहा! समझ में आया? **निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन है।** नीचे अर्थ है। नीचे नोट। **प्रमाणभूत ज्ञान में...** नोट में... **शुद्धात्मद्रव्य का...** प्रमाणभूत ज्ञान जो है द्रव्य और पर्याय दोनों को जाननेवाला। आहाहा!

शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का... शुद्धात्मद्रव्य और उसकी पर्याय, चाहे तो उदय की हो, क्षायिक हो आदि पर्याय। उदय में शुभरागादि अनेक प्रकार का नौ देव को वन्दन, स्तुति। आहाहा! जिनभगवन्त की स्तुति आती है शास्त्र में। और शास्त्र में पाठ है कि जिनभवन है। अष्टपाहुड़ में है। जिनभवन है, मन्दिर है। शाश्वत तो है ही, परन्तु प्रतिमा... वह पाठ है अष्टपाहुड़ में। जिनमन्दिर है, जिनप्रतिमा है और जिनभवन

में सन्त रहते हैं। ऐसा आया है अष्टपाहुड़ में। समझ में आया? तो व्यवहारनय से वह चीज़ है। तो व्यवहारनय से उपादेय उसका अर्थ? कि व्यवहारनय से जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य छोड़ दे कि है ही नहीं, तो एकान्त मिथ्यात्व हो जायेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

नीचे। **शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों को...** निश्चय और व्यवहार आया न ऊपर? **दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।** दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। **स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान है...** आहाहा! आत्मा में राग है। आहाहा! अर्थात् उन चारों पर्याय को विभावपर्याय कहने में आता है। विशेष है न? आहाहा! कथंचित् विद्यमान है पर्याय की अपेक्षा से। त्रिकाल की अपेक्षा से पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं। आश्रय तो, त्रिलोकनाथ द्रव्यस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। परन्तु वह आश्रय करनेवाला पर्याय को बराबर जानता है। १४वीं गाथा में है समयसार में। अबद्धस्पृष्ट कहा है न? ज्ञान में, लक्ष्य में लेना है कि पर्याय है, बद्ध है, रागादि। उसका ज्ञान लक्ष्य करके निषेध करना। १४ गाथा में समयसार में। अर्थ में। समझ में आया?

है, देव, गुरु, शास्त्र, जिनभवन, जिनप्रतिमा, जिनदेव, जिनवाणी सब उसमें आ गया—यह सब है और वह व्यवहार से पूज्य भी है। आहाहा! परन्तु हे वह पुण्यबन्ध का कारण। पुण्यबन्ध का कारण है, उस कारण से उसका ज्ञान करना ही नहीं, व्यवहार है ही नहीं—ऐसा नहीं। और व्यवहार है तो व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग अलौकिक है। जैनदर्शन के अतिरिक्त कहीं ऐसी चीज़ है नहीं। आहाहा!

स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान है। अपनी पर्याय में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र का विनय, पंच महाव्रत के परिणाम आदि उसकी पर्याय में विद्यमान राग है और राग का उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वह भी पर्याय में है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! वीतरागमार्ग तीन लोक के नाथ एक अक्षर... सूत्रपाहुड़ में तो ऐसा कहा अष्टपाहुड़ में। सिद्धान्त में से जो एक अक्षर जो विपरीत बोले, माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! है, ऐसा बराबर जानना। इसमें कहा न अध्यात्म पंचसंग्रह में? कि व्यवहार निषेध है, परन्तु बहुत निषेध करने जाता है तो व्यवहार से व्यवहावर पूज्य है।

वह पद्मनन्दि में आया है। पद्मनन्दि में आया है कि व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। पद्मनन्दि में पाठ है, श्लोक है मूल पाठ है। आहाहा! ऐसी बात है।

यह कहते हैं, **ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो...** जिसके ज्ञान में रागादि, प्रभु की भक्ति आदि, पूजा आदि और जिनभवन में वृत्ति आदि में उसका लक्ष्य जाये, ऐसी चीज़ ही न हो, उसका जिसे ज्ञान भी न हो... उससे मोक्ष होता है और धर्म होता है, ऐसा प्रश्न नहीं। परन्तु है। धर्म नहीं होता, इसलिए है नहीं, (ऐसा नहीं)। आहाहा! **जिसके ज्ञान में न हो ऐसा स्वीकार...** व्यवहारनय के विषय का जिसके ज्ञान में स्वीकार न हो कि पर्याय है ही नहीं, राग, दया, दान, व्रतादि का विकल्प व्यवहार, वह है ही नहीं और देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग है ही नहीं और राग के विषय भगवान की मूर्ति-प्रतिमा, जिनभवन वह है ही नहीं। ऐसा माननेवाला सम्यग्ज्ञान से रहित मिथ्यादृष्टि है। अरे रे! ऐसी बातें हैं। समझ में आया?

एक ओर कहे कि अपनी निर्मल पर्याय का आश्रय करने से भी राग होता है। यह तो निश्चय की यथार्थ वस्तु है। परन्तु वह निश्चय के यथार्थ में, पर्याय में भक्ति आदि, पंच महाव्रतादि का विकल्प उठता है, वह व्यवहारनय से जाननेयोग्य है। जाननेयोग्य है ही नहीं, (ऐसा माने तो) वह मिथ्याज्ञान हो जाये। आहाहा! और है तो उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! गजब बात है, भाई! आहाहा! क्यों लक्ष्मीचन्दभाई! आपने ३० लाख का मन्दिर बनाया ३० लाख का। तो उसमें धर्म होता है, ऐसा नहीं। परन्तु उसमें जो शुभभाव है, उसका विषय नहीं है, ऐसा नहीं। ३० लाख का बनाया, नैरोबी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : १५ का ३० हो गया। उसने बात कही। अपने को कहाँ खबर है? वह तो प्रमुख है न वहाँ? उसका भाई करोड़पति है। दोनों हैं। बहुत पैसे करोड़पति है। प्रमुख है, शान्त है, यहाँ का प्रेम है। और वहाँ वाँचन हमेशा से चलता है ३० साल से। नैरोबी। यहाँ के शास्त्र का वाँचन चलता है। प्रतिमा ले गये यहाँ से। पंच कल्याणक (किया)। प्लेन में नैरोबी प्रतिमा ले गये। मन्दिर है, मकान है। ढाई लाख का मकान है

न। वहाँ वाँचन चलता है। ढाई लाख का मकान है। मन्दिर तो नया बनाया है ३० लाख का। उसके लिये प्रार्थना करने को आये हैं, वहाँ ले जाने को। तो हमारे सेठ हैं, वह भी कहते हैं कि हमें भी जाना है वहाँ। वहाँ आनेवाले हैं। आहाहा! रतनलालजी! सबसे ज्यादा पैसे उसके पास हैं। रतनलालजी! पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। यहाँ सभा में बैठे हैं, उसमें से सबसे ज्यादा पैसा है। पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। आज आया न! परन्तु वह रुपये आत्मा के हैं, ऐसा नहीं। और उस रूपये खर्च करने का (भाव) मन्दिर आदि में होता है, तो वह शुभभाव होता है।

मुमुक्षु : ....मनुष्य का तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्य का नहीं। मनुष्यपना अपना नहीं न! यह शरीर तो जड़ है। यह कोई मनुष्यपना नहीं है। अन्दर मनुष्यगति (की योग्यता) जो है, वह मनुष्यपना। वह भी आत्मा के स्वभाव में नहीं। आहाहा! परन्तु वह गति है, ऐसा ज्ञान भी न करे। अन्दर नहीं, इसलिए व्यवहार का ज्ञान गति का न करे तो वह ज्ञान झूठा है। आहाहा! कान्तिभाई! यह सब पैसेवाले हैं बड़े-बड़े झवेरी। २०-२५ लोग तो काम करते हैं वहाँ जवाहरात में। हीरा-हीरा। ... आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... करने। यह तो पैसे जहाँ जानेवाला है, वहाँ जायेगा। आत्मा पैसा दे सके, वह बात तीन काल में है नहीं। उसमें भाव होता है शुभ, वह बात होती है।

मुमुक्षु : पैसे कमाता हो, तब भाव होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कमाता है? धूल? राग है, मैं कमाऊँ वह तो राग होता है। और पैसे मिलते हैं तो व्यवहार से कहने में आता है। सातावेदनीय के उदय से। परन्तु वह उदय निमित्त है तो पैसा आया, ऐसा भी नहीं। आहाहा! पैसे तो पैसे के कारण आये हैं। परन्तु द्रव्य है वह। वह द्रव्य की पर्याय क्षेत्रान्तर होकर जहाँ जानेवाली है उसकी पर्याय का कर्ता वह परमाणु है। कठिन बात, भाई! आहाहा! वीतरागमार्ग।

मुमुक्षु : कठिन बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार रहे ही नहीं। बात सच है। यहाँ तो शुभभाव है, इतना

जानना। बाकी शुभभाव है, वह संसार है। परन्तु जाननेयोग्य है, ऐसा न जाने और है ही नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो, उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। क्या कहा? कि मन्दिर, मन्दिर की प्रतिमा, देव, भगवान की वाणी, यह देव है—उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो शुभभाव होगा। परन्तु वह शुभभाव है ही नहीं और मन्दिर आदि है ही नहीं—ऐसा ज्ञान करेगा तो उसको शुद्धात्मद्रव्य का ज्ञान है ही नहीं। कहो, धन्नालालजी! अटपटी बात आई। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेयोग्य है, ऐसा बताया है। जाननेयोग्य है, ऐसा ज्ञान में न जाने, तो मिथ्याज्ञान है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों ओर से ऐसा है। आहाहा! जाननेयोग्य यह विषय है। भगवान की प्रतिमा, जिनभवन, वीतराग की वाणी भी पूज्य है। वाणी तो जड़ है। परन्तु व्यवहारनय से शुभभाव आता है तो लक्ष्य जाता है इतना। ऐसे भगवान की प्रतिमा पर भी, शुभभाव आता है तो वहाँ लक्ष्य जाता है। तो वह शुभभाव और उस पर लक्ष्य जाना, उसका ज्ञान भी न करे कि ऐसा कोई है ही नहीं, तो शुद्धात्मद्रव्य की श्रद्धा भी उसकी सच्ची नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। बाकी तो ४९ गाथा। है?

जिसकी पर्याय में राग की मन्दता और उदयभाव आदि है ही नहीं पर्याय में। ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो कि है, पर्याय में राग है, भक्ति का राग है, इतना। परन्तु उस राग से आत्मा का कल्याण होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो **स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो...** कि मेरी पर्याय में राग है और राग का विषय वह है। राग का विषय... राग दशा है, तो उसकी दिशा पर सन्मुख जाती है। वीतरागीपर्याय दशा है, उसकी दिशा स्वसन्मुख जाती है। अरर! यह क्या है?

आत्मा में जो वीतरागीपर्याय उत्पन्न होती है, उस दशा की दिशा द्रव्य (की ओर) है और जो रागदशा उत्पन्न होती है, चाहे तो शुभ या अशुभ, उस दशा की दिशा

पर (की ओर) है। क्योंकि उसका लक्ष्य पर के ऊपर है। परन्तु यह है। आहाहा! जो इतना न हो तो केवलज्ञान हो जाये। समझ में आया? और है, ऐसा न जाने तो शुद्धात्मद्रव्य का भी ज्ञान सच्चा नहीं। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! ... गये या नहीं तुम्हारे? अच्छा।

देखो! **इसलिए व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है...** है? आहाहा! **इसलिए व्यवहारनय के विषयों का...** व्यवहारनय का विषय, देव-गुरु-शास्त्र व्यवहारनय के विषय हैं। आहाहा! वह **विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है...** उपादेय का अर्थ यह। उपादेय ऊपर कहा न, व्यवहारनय को। तो उपादेय का अर्थ उसका ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है, जाननेयोग्य है। उपादेय का अर्थ आदरणीय है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है... एक तो पर्याय व्यवहारनय का विषय है और यह पर्याय में रागादि है, उसका विषय पर है। तो एक पर की चीज़ भी है। ज्ञान में पर जानने में आता है, वह वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय है, परन्तु ज्ञान की पर्याय में जो निमित्त सामने है, वह भी विषय है। आहाहा! ऐसे व्यवहार के विषय को जो न जाने। आहाहा! है? उसका **विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसी विविक्षा से ही यहाँ...** विविक्षा अर्थात् कथन। **यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...** ऐसे कथन की अपेक्षा से व्यवहारनय को उपादेय अर्थात् आदरणीय कहा है। इस अपेक्षा से। उसको ज्ञान में जाननेयोग्य है। आहाहा!

व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (-आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य हैं ही... अरे! समझ में आया? बहुत कठिन। **ऐसा समझाने के लिये ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।** ५० में हेय कहा। पर्यायमात्र... राग का विषय और पर्याय, वह परद्रव्य है। परभाव है तो हेय है। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय भी परद्रव्य है, परभाव है, हेय है। इसी तरह भगवान का दर्शन आदि का भाव शुभ है। है। परन्तु निश्चय में हेय है। हेय है, इसलिए नहीं है, तो किसका ज्ञान किया? हेय का भी ज्ञान तो है या नहीं? समझ में आया? वह ज्ञान भी झूठा हो तो उसको शुद्ध आत्मा की श्रद्धा भी झूठी है। आहाहा! कठिन बात है, बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। आहाहा!

एकभवतारी इन्द्र जब स्वर्ग में उपजते हैं... उपजते हैं। क्योंकि उसको माता-पिता है नहीं। फूल की शैय्या है। शैय्या में एकदम ३२ साल के जवान जैसा शरीर उत्पन्न हो जाता है। वहाँ से समकिती ज्ञानी आत्मज्ञानसहित गये, जब हुए वहाँ एकदम उसको विकल्प उठे, अरे...! देवो! भगवान की प्रतिमा का दर्शन करने को तैयारी करो। आहाहा! देव हाथी बनते हैं। देव हाथी बनते हैं तो सवारी करते हैं इन्द्र। आहाहा! पुण्यवंत है न देव?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाथी। साधारण देव है, वह हाथी बनता है, घोड़ा बनता है, उसके ऊपर सवारी करते हैं। परन्तु हुक्म करते हैं। सम्यग्दृष्टि है और जहाँ स्वर्ग में उत्पन्न हुआ... परमात्मा के मन्दिर का दर्शन करना है तो चलो। तैयारी करते हैं लाखों, करोड़ों देव हाथी, घोड़ा बनकर। आहाहा! परन्तु वह है शुभभाव। और वह नहीं है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! और है तो वह धर्म है, ऐसा है नहीं। ऐसी बात है। बहुत मार्ग, बापू! ऐसा। वीतराग तीन लोक के नाथ महाविदेह में तो विराजते हैं, उनकी यह ध्वनि है। आहाहा!

व्यवहारनय का आश्रय (-आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य हैं ही, ऐसा समझाने के लिये ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा। वहाँ तो व्यवहारनय जाननेयोग्य है, ऐसा उपादेय कहा, तो ५० में तो हेय कहते हैं। जाननेयोग्य है, इतना कहना है। उपादेय का अर्थ आदरणीय है—ऐसा नहीं। व्यवहारनय का विषय है, वह जाननेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण... भगवान त्रिकाली परमात्मा का आश्रय, ग्रहण **पर्यायों के आश्रय का त्याग हो...** पर्याय है, ऐसा जानना है, परन्तु आश्रय करने का त्याग है। आहाहा! ऐसी अटपटी बातें हैं। पंचसंग्रह में तो ऐसा कहा है कि तुम बहुत व्यवहार का निषेध करेगा तो साक्षात् तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, उसकी भक्ति भी एक राग है, व्यवहार है, यह कोई धर्म नहीं। आहाहा! वह भी निषेध हो जायेगा। अनन्त बार समवसरण में गया, महाविदेहक्षेत्र में विहरमान

तीर्थंकर की स्थिति कायम है। तीर्थंकर का विरह महाविदेह में होता नहीं। सदा तीर्थंकर होते हैं। तो महाविदेह में भी अनन्त बार उपजा है। अनन्त पुद्गलपरावर्तन। एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाये, अनन्त भव जायें। आहाहा! ऐसा-ऐसा अनन्त बार तो महाविदेह में जन्म लिया है। और जन्म लेकर भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है और भगवान का दर्शन किया है और मणिरत्न के दीपक, हीरे के थाल और कल्पवृक्ष का फूल, जय नारायण, जय प्रभु, ऐसी आरती भी अनन्त बार उतारी है। शुभभाव पर लक्ष्य गया, परन्तु स्वभाव की दृष्टि की नहीं। समझ में आया?

समवसरण में गया, दर्शन किया, इससे धर्म है—ऐसा नहीं। तो धर्म नहीं है तो वह चीज़ है ही नहीं—ऐसा नहीं। ऐसी बात है। ...लालजी! समझ में आता है या नहीं बराबर? आहाहा!

जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य का तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है... आहाहा! समझ में आया? एक तरफ क्षायिकभाव को छोड़नेयोग्य कहे और एक तरफ भगवान की प्रतिमा और भगवान की पूजा, भक्ति का भाव होता है, परन्तु समकिती को कर्तृत्वबुद्धि में करनेयोग्य है ऐसा नहीं। परन्तु आता है, होता है तो कर्ता भी कहने में आता है। परिणमन उसका है न? परिणमन की अपेक्षा से कर्ता कहने में आता है। परन्तु करनेयोग्य है, उस अपेक्षा से हेय है। ऐसी बातें। वीतरागमार्ग अनेकान्त स्याद्वाद (मय) है। स्याद्वाद को समझना, वह अनन्त काल से कभी सुना नहीं। कभी किया ही नहीं। आहाहा! गधा मजदूरी की सारी। गधा मजदूरी समझते हो? यह गधा मजदूरी करते हैं न गधे। यह गधा मजदूरी है लौकिक की सब। आहाहा! और वह भी आत्मज्ञान बिना यह भी शुभराग जाननेयोग्य है। परन्तु भान बिना मात्र मजदूरी है। आहाहा! स्व के भान बिना व्यवहार का ज्ञान भी सच्चा होता नहीं। आहाहा! है न?

जीव को द्रव्य का तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है, ऐसा समझना... चाहिए। क्या? कि त्रिकाली भगवान शुद्धात्मद्रव्य आश्रय करनेयोग्य है, सन्मुख होनेयोग्य तो

यही चीज़ है। पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। समझ में आया? पर्याय का आश्रय त्याग हो, पर्याय का आश्रय त्याग हो, द्रव्य का आश्रय ग्रहण हो। आहाहा! तो उसी जीव को द्रव्य का और पर्याय का ज्ञान सम्यक् है, ऐसा समझना; **अन्य को नहीं।** आहाहा!

यहाँ **पहले जो विभावपर्यायें विद्यमान नहीं हैं ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** आहाहा! पर्याय नहीं है, वह त्रिकाल में नहीं, ऐसा कहा। पर्याय तो विद्यमान है। नहीं है, ऐसा कहा तो द्रव्य में नहीं ऐसा कहा, परन्तु पर्याय में पर्याय है। आहाहा! है? विभावपर्याय नहीं है ऐसास कहा था।

ऐसी प्रतिपादित की गई है वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। जाननेयोग्य व्यवहारनय का विषय है। नय है न? नय है, वह विषयी है और उसका विषय है, वह परपदार्थ है। अपनी ज्ञान की पर्याय की अपेक्षा से। आहाहा! नय है, वह जाननेयोग्य विषयी है और उसका विषय व्यवहार, पर्याय आदि; निश्चय, त्रिकाली है। है तो नय पर्यायज्ञान। परन्तु उस ज्ञान में दो प्रकार हैं। एक त्रिकाली ऊपर लक्ष्य जाता है और व्यवहार जाननेयोग्य की ओर जाता है। जाननेयोग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत निश्चय-निश्चय की बात सुनकर व्यवहार नहीं है और व्यवहार करते-करते निश्चय हो जायेगा—(ऐसा माने तो) सब झूठ है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : तलवार की धार पर चलना।

पूज्य गुरुदेवश्री : तलवार की धार पर। आनन्दघनजी कहते हैं। 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली, चौदमा जिनतणी चरणसेवा।' आनन्दघनजी श्वेताम्बर में हो गये। 'धार तलवार की...' यह तो हमारे पण्डितजी ने तलवार कहा न। 'धार तलवार की सोह्यली...' तलवार की धार पर चलना कठिन। 'धार तलवार की सोह्यली, दोह्यली जिनतणी चरणसेवा।' जिन की आज्ञा को यथार्थ मानना, वह महामुश्किल है। तलवार पर चलना आसान है। आहाहा! जिसको ऐसी लब्धि हो तो वह तलवार पर भी चलता है। और लब्धि न हो तो भी ऐसे सूक्ष्मपने चले। वह तो आसान है। परन्तु 'दोह्यली जिनतणी

चरणसेवा।' आहाहा! 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली चौदमा जिनतणी चरण सेवा।' आहाहा!

'धार पर नाचता देख बाजीगरा...' यह सब तो ७८ में देखा है। वींछिया में सब देखा था बाहर। गाँव के बाहर। 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली चौदमा जिनतणी चरण सेवा।' उसकी आज्ञा यथार्थ क्या है उसकी... कठिन है। 'धार पर नाचता देख बाजीगरा।' बाजीगर है वह धार पर नाचता है। वह धार पर नाचता है। 'धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।' दो अर्थ हैं। 'सेवना धार पर रहे न देवा।' देव सेवना धार पर रह सके नहीं और अज्ञानी 'सेवना धार पर रहे न देवा।' १०८ पद है। तीर्थंकर की स्तुति है। १०८ पद है न। सब देखा है सारा। ७८ के वर्ष। अपवास जब करते थे, तब सुबह में व्याख्यान देकर जंगल में चले जाते थे। ७८ के वर्ष। वींछिया। बाहर वृक्ष बहुत हैं नदी के पास। वहाँ चले जाते थे। सुबह साढ़े नौ बजे से शाम को पाँच। पानी-बानी पीते नहीं थे, अपवास करते थे। तब यह आनन्दघनजी का सब देखा था। आहाहा!

वह ऐसा कहते हैं कि 'धार पर नाचता देख बाजीगरा।' धार पर नाचना तो बाजीगर... देखता है। आहाहा! एक है न के.लाल. कौन वह? कांन्तिलाल है। जादूगर है। बहुत (बड़ा) जादूगर। यहाँ आता है हमारे पास। मैं बड़ा जादूगर हूँ। बहुत उल्लास। एक बार ... जापान में देखा, अमुक दिन में तीन लाख... बड़ा जादूगर। स्त्री को काट डाले और देखे लोग। काट डाले और बुलाये, अरे... बहिन चलो। वहाँ वह आये। कितनी उम्र है? अभी आया था नहीं अपने यहाँ मुम्बई में? पहले आया था राजकोट। बाहर बड़ा एक रात्रि में पाँच हजार की आमदनी। कायमी आमदनी बड़ी है। आया था हमारे पास। जैन है श्वेताम्बर है। उसकी बहिन की लड़की यहाँ पर ब्रह्मचारी है।

तो आया, कहा, महाराज! यह हमारा ढोंग है सब। लाखों पैदा करते हैं। एक-एक रात्रि के पाँच-पाँच हजार। इतनी विचिक्षणता है। यहाँ भी बताते थे। ... हमारे पण्डितजी। हाथ की चालाकी। गाँठ बाँधे ऊपर और ऊपर से तो धागा काट डाला और धागा काटकर पूरा धागा बताये। तो वह आया। महाराज! हमारा सब ढोंग है। मर जाओगे, कहा, इस पुण्य को लेकर। पुण्य को लेकर यह पैसे-बैसे मिलता है, मर जाओगे।

आत्मसिद्धि देना उसको। आत्मसिद्धि पढ़ता है। श्रीमद् की आत्मसिद्धि है न? यहाँ बहुत पाँच-छह हजार छप गयी है। कहा, पढ़ना। मर जायेगा इसमें। पाँच-पाँच हजार की आमदनी एक रात में। उसमें तेरे क्या आया? महापाप है। हमारे कहाँ किसी को पड़ी है? सेठिया हो तो क्या? नरम व्यक्ति है। महाराज! बापू! यह हित का मार्ग है। यह सब करके मर जायेगा। दस-बीस लाख पैदा किया, पचास लाख-करोड़, दो-पाँच करोड़, उसमें तेरे आत्मा में क्या आया? वह पैसा मेरा है, वह मिथ्याभ्रम मिथ्यात्व है। आहाहा! जड़ मेरा है, जीव का जड़ है... जड़ का जड़ नहीं और जीव का जड़ है, यह (मान्यता) मिथ्या दृष्टि है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि व्यवहार से व्यवहार है, ऐसा यथार्थ ज्ञान हो, उसको शुद्धात्मा द्रव्य का यथार्थ ज्ञान हो। व्यवहार का ज्ञान भी नहीं और व्यवहार को उड़ा दे तो उसको शुद्धात्मद्रव्य का ज्ञान हो सकता नहीं। यहाँ अन्दर मूल पाठ में। **पहले जो विभावपर्याय विद्यमान नहीं है, ऐसी प्रतिपादित की गयी है, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** राग विद्यमान है, शुभराग विद्यमान है, मिथ्यात्व भी पर्याय में विद्यमान है। आहाहा!

और जो (व्यवहारनय के कथन से) चार विभावभावरूप परिणत होने से... आहाहा! देखो! चार विभावभाव... केवल राग नहीं। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भी विभावभाव है। पर्याय है न? विशेषभाव है न? आहाहा! त्रिकाली भगवान नहीं है वह। आहाहा! **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** क्या कहते हैं? संसार में भी चार पर्याय विद्यमान हैं। आहाहा! **वे शुद्धनय के कथन से शुद्धगुण पर्याय द्वारा सिद्ध भगवन्त समान हैं...** आहाहा! विभाव परिणति—पर्याय संसार में भी विद्यमान है। फिर भी वह जीव **शुद्धनय के कथन से शुद्धगुण पर्याय द्वारा सिद्ध भगवन्त समान हैं...** दृष्टि की अपेक्षा से तो सिद्ध समान भगवान है। निश्चय की अपेक्षा से शुद्ध भगवान समान है। व्यवहार की अपेक्षा से चार भाव विद्यमान हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है सूक्ष्म, बापू! संसार की लाखों और करोड़ों किताबें पलटे धूल की। यह भगवान की पुस्तक क्या कहती है, उसकी खबर नहीं।

एक नय को बताने के लिये दूसरी नय का निषेध कर दे। जाननेयोग्य है। उसका निषेध है, आश्रय करने की अपेक्षा से निषेध है। परन्तु वह है ही नहीं, उस अपेक्षा से निषेध नहीं। विद्यमान है। **सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुणपर्यायों द्वारा...** संसारी को पर्याय में चार भाव हैं। विद्यमान हैं। तथापि **सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुणपर्यायों द्वारा सिद्ध भगवन्त समान हैं...** आहाहा! वस्तु जो है, वह तो सिद्ध भगवान समान है। पर्याय में चार भाव है। पर्याय वह विद्यमान है। आहाहा! ऐसी अटपटी बातें। हैं?

(अर्थात् जो जीव व्यवहार के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से... उदयादि भाववाला **संसारी हैं।** आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाला होने से सिद्ध सदृश हैं।)** शुद्ध पर्याय ली है। प्रगट है न? फिर भी सिद्ध के जैसे गुणपर्याय ऐसे ही होते हैं। पर्याय प्रगट नहीं, परन्तु शक्तिरूप से है। आहाहा! समझ में आया? सिद्ध को प्रगट पर्याय है, ऐसा प्रगट संसारी को नहीं। परन्तु शक्तिरूप से अन्दर है। गुण और गुण की पर्याय निर्मल वह शक्तिरूप है, उसमें यह जीव सिद्ध समान है। आहाहा!

'सर्व जीव हैं सिद्धसम' श्रीमद् में आता है। 'सर्व जीव हैं सिद्धसम, जो समझे ते थाय।' जो अन्तर्मुख होकर समझकर आनन्द का वेदन करे, अन्तर का आश्रय करके आनन्द का वेदन करे, वह समझे वह मुक्त होगा। बाकी सिद्ध समान है, ऐसे समझे बिना अन्दर आश्रय ले तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती नहीं। आहाहा! क्षण में पर्याय है, क्षण में पर्याय हेय है। बापू! मार्ग ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप ऐसा है। भगवान ने किया नहीं, भगवान ने तो जैसा जाना ऐसा कहा। किया नहीं, भगवान ने कुछ किया नहीं पर का। आहाहा! वह तो वीतरागभावरूप परिणमन हो गया। सर्वज्ञ वीतराग पर्यायरूप हो गये। तो भी कहते हैं कि निश्चय शुद्धज्ञान की अपेक्षा से वह वीतराग परिणतिरूप परिणमा, वह भी व्यवहार है। पर्याय है तो व्यवहार है श्रुतज्ञान में। उन्हें (-भगवान को) कुछ व्यवहार है नहीं। क्योंकि नय है, वह तो श्रुतज्ञान का भेद है न? केवलज्ञान को सद्भूतव्यवहारनय कहा,

परन्तु वह किसको? श्रुतज्ञानी को। छद्मस्थ है, श्रुतज्ञान है, आत्मा के अवलम्बन से सम्यक् आनन्द दशा प्रगट हुई है, वह सम्यग्ज्ञानी को। आहाहा! समझ में आया? वह सद्भूतव्यवहारनय... केवलज्ञान है, वह सद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! क्योंकि सद्भूत अर्थात् पर्याय है। परन्तु भेदरूप है तो व्यवहार है। सद्भूतव्यवहार। ऐसा कौन जानता है? नयवाला। नय किसको होती है? सम्यग्दृष्टि को श्रुतज्ञान होने से श्रुतज्ञान में नय होता है। समझ में आया? आहाहा!

यह बात बहुत साल पहले ८३ के वर्ष हो गयी। ... ८३। कितने वर्ष हुए? १७+२२+३०=५२ हुए। तो ५२ वर्ष पहले ऐसा प्रश्न उठा। स्थानकवासी में थे, उस समय। सेठ था दामनगर। दस लाख रुपये तब ६० साल, ७० साल पहले। उस समय पैसेवाले बहुत नहीं थे। दस लाख रुपये, ४० हजार की आमदनी, एक गाँव दस हजार का। ऐसी बात सुनकर एकान्त में ऐसा कहा कि प्रतिमा की। पूजन का भाव मिथ्यादृष्टि हो तब होता है, सम्यग्दृष्टि होने के बाद प्रतिमा का पूजन नहीं होता। ऐसा कहा उसने। यह तो ५२ साल पहले की बात है। तो उसके साथ तो हम बात नहीं करते थे। क्योंकि वह मुझ से डरे। कि जो मैंने कहा उसमें सम्मत नहीं होऊँगा तो सम्प्रदाय छोड़ देंगे। मैं यहाँ आ गया हूँ इसलिए यह सम्प्रदाय को मानूँ (ऐसा है नहीं)। समझ में आया?

सुनो! कहा। उसको नहीं, परन्तु दूसरे को कहा। वह बात तो वहाँ हो गयी। कि जब सम्यग्दर्शन होता है, आत्मा के अवलम्बन से अनुभव होता है, तब श्रुतज्ञान होता है और श्रुतज्ञान का भेद नय है। निश्चय और व्यवहार वह श्रुतज्ञान के भेद हैं। श्रुतज्ञान भाव अवयवी है, नय अवयव है। तो श्रुतज्ञानवाले को व्यवहारनय है और उसको ही, व्यवहारनय का विषय भगवान की स्थापना उसके ही बराबर है। मिथ्यादृष्टि को प्रतिमा है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? यह तो ५२ साल पहले... भाई! इसमें मैं आ गया; इसलिए मैं यह मानूँ, ऐसा नहीं। यहाँ तो सत्य हो उसको मानेंगे। डरते थे। सामने मना न करे। सुने कि महाराज ऐसा कहते थे। सामने कुछ न कह सके। क्योंकि हमें जो कहने को जाये तो हम सम्प्रदाय छोड़ देंगे। मुँहपत्ती छोड़कर चले जायेंगे।

मुमुक्षु : ....कब छोड़ी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पीछे। यह तो उस समय डर लगता था लोगों को...

यहाँ कहा कि तुम ऐसा कहते हो कि मिथ्यादृष्टि है, तब तक प्रतिमा की पूजा है। मैं तो ऐसा कहता हूँ कि सम्यग्दृष्टि हुए पीछे ही प्रतिमा की पूजा सच्ची है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि को भावश्रुतज्ञान हुआ और भावश्रुतज्ञान का अवयव वह व्यवहारनय है। निश्चय और व्यवहार वह श्रुतज्ञान के अन्तर्भेद हैं। तो व्यवहारनय उसको है। तो व्यवहारनय का विषय प्रतिमा भी उसको है। यह तो पर साल पहले की बात हैं। हम यहाँ आ गये इसलिए... हमें तो अन्तर से न्याय जो लगेगा, वह मानेंगे। भाव में भासन होगा, वह मानेंगे, कहा।

तो भगवान की प्रतिमा और जिनभवन की पूजा (आदि) व्यवहार सम्यग्दृष्टि को ही सच्चा है। व्यवहाररूप से उसको ही सच्चा आता है। क्योंकि नय का भेद व्यवहार है। निश्चय-व्यवहारनय। और ज्ञेय का भेद प्रतिमा है। निक्षेप चार हैं न? नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। स्थापनानिक्षेप, वह ज्ञेय का भेद है और यह व्यवहारनय श्रुतज्ञान का भेद है। तो उसको यथार्थ में, भगवान की प्रतिमा मानना यथार्थ में उसको है। मनुभाई! हम किसी से बँधे हुए नहीं। कोई सेठिये-बेठिये तुम दस लाख वाले... दस लाख तब ६० वर्ष पहले। इतने वर्ष पहले दस लाख। तब तो इतने पैसे कहाँ थे? उस समय के एक लाख और अब के २५ लाख... उस समय के एक लाख और इस समय के २५ लाख समान हैं। जेठालालभाई! उस समय के चार लाख और अबके करोड़। भाव सबके बढ़ गये न? ढाई रुपये मण चावल था। चावल... चावल... ढाई, सवा दो।

आखिर में, जब दीक्षा लेने का भाव था, उससे पहले मुम्बई माल लेने को गये। ६८ के माघ कृष्ण में। ६८ के माघ महीने में तो चार सौ मण चावल लिया था। उस उम्र में २२ साल की उम्र। घर का धन्धा था तो हम जाते थे। चार सौ मण चावल पहले लिया। चार सौ मण तब तो सवा दो रुपये मण था। एक सेर। परन्तु पैसे बढ़ गये हैं न? भाव के सामने पैसे की कीमत घट गयी है। बाजरा, चावल के भाव बढ़ गये हैं तो पैसे की कीमत घट गयी। आहाहा! तब तो एक पाई बच्चा लेकर जाता था तो गोली देते थे। शक्कर की गोली आती है न। एक पाई की गोली देते थे। अभी तो चार पैसे में भी न मिले। उस समय पैसे कहाँ थे?

कहा कि जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक भावश्रुतज्ञान नहीं और भावश्रुतज्ञान नहीं, तब तक प्रतिमा का पूजन नहीं (होता)। उसको व्यवहार नहीं आता। परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ, भावश्रुतज्ञान हुआ, उसको व्यवहारनय हुआ, तो ज्ञेय का भेद— स्थापना, प्रतिमा की पूजा उसको ही होती है। है शुभभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : ....पूजन करते हैं, वह सम्यग्दृष्टि हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा है नहीं। यह बात झूठी है। प्रतिमा की पूजा करे, भवन बनाये, इसलिए सम्यग्दृष्टि है, यह झूठ है। ऐई! यह सेठिये रहे। ३० लाख का मन्दिर बनाया है, इसलिए समकिती है? समझ में आया? परन्तु वह बना सकता ही नहीं निश्चय से। वह तो परमाणु की पर्याय जब बनने की थी, तब बनी है। उसमें सेठिया का भाव शुभ है, वह निमित्त कहने में आता है। परन्तु शुभभाव से मन्दिर बने, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! ऐसी बात! वह प्रतिमा को स्थापने की क्रिया आत्मा कर सकता है, भगवान की प्रतिमा... उसको शुभभाव है। क्रिया होती है, वह जड़ से होती है। आहाहा! ऐसा कौन माने?

फिर भी राग और राग का विषय, वह व्यवहारनय का विषय जाननेयोग्य है। ना कहे कि ऐसा है नहीं, तो शुद्धात्मद्रव्य का ऐसा ज्ञान उसको है ही नहीं। मणिभाई! ऐसा है बापू! अरे रे! परमात्मा, तीर्थंकर परमात्मा का विरह हो गया। हम तो वहाँ थे। प्रभु का विरह हुआ और यहाँ आ गये हैं। आहाहा! साक्षात् तीन लोक के नाथ (के पास) समवसरण में जाते थे हम। आहाहा! अन्त में स्थिति बराबर रही नहीं। भरतक्षेत्र में आ गये हैं। आहाहा! उपादान की तैयारी हो तो निमित्त ऐसा आता है। आहाहा!

क्या कहा? कि संसारीजीव विभावपर्यायवाला पर्याय से है। **वे सब शुद्धनय के कथन से...** निश्चयनय का कथन जब आता है, तब तो वह शुद्ध गुणपर्याय होने सिद्ध सदृश है। द्रव्य की दृष्टि करने से सिद्ध सदृश है। पर्याय में चार भाव हैं, वह संसार अवस्था है, ऐसा कहते हैं। तेरहवें गुणस्थान में केवली हैं और चौदहवें गुणस्थान में अयोगी हैं, फिर भी प्रभु ने तो ऐसा कहा कि वह असिद्ध है। सिद्ध तो देह छूटकर जब चारों कर्मों का नाश होगा, तब सिद्ध (कहलायेंगे)। अभी असिद्ध हैं। ऐई! आहाहा! अर्थात् वहाँ संसारी है, ऐसा कहना है हमारे तो। अभी तो तेरहवें और चौदहवें में संसारी

है। इतनी पर्याय मलिन है न? आहाहा! मिथ्यात्व संसार राग, वह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह असिद्ध हैं। चौदह गुणस्थान में है, अभी चार कर्मों का नाश नहीं हुआ, इतनी अपनी योग्यता से विकार है। तब तो चौदह गुणस्थान में असिद्ध कहा। चौदहवाँ गुणस्थान छूट जाता है, तब सिद्ध होता है। तो पहले से चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध हैं... असिद्ध हैं—सिद्ध नहीं। वह कहते हैं यहाँ। आहाहा!

शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश्य हैं। संसारी को भले पर्याय प्रगट नहीं हुई, परन्तु शक्ति में सिद्धसमान है और भगवान को भी पर्याय प्रगट हुई तो उसकी पर्याय में अशुद्धता है, यह श्रुतज्ञानी को जाननेयोग्य है। केवलज्ञानी तो जानते ही हैं, उनको तो प्रमाणज्ञान हो गया। परन्तु श्रुतज्ञानी को जानना कि केवली को तो अभी अशुद्ध कहने में आया है। व्यवहार से है। आहाहा! नय तो केवलज्ञान में नहीं है न? नय तो श्रुतज्ञान में है। अभी साधक श्रुतज्ञानी हैं, वह व्यवहारनय से **केवली हैं...** ऐसा जानते हैं। उनको (नय से) जानना नहीं रहा, वह तो पूर्ण हो गये। उनको प्रमाणज्ञान है। आहाहा! केवलज्ञान को छद्मस्थ समकिती ऐसा जानता है कि केवलज्ञान की पर्याय सद्भूतव्यवहारनय से है, निश्चय से नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न! उसमें है तो सद्भूत है। आहाहा! रागादि और परादि का तो अभाव है, परन्तु राग का भी अभाव है त्रिकाल की अपेक्षा से। परन्तु पर्याय में राग है। आहाहा! जब तक संसारी को राग है, तब तक उसको जाननेयोग्य बराबर जानना। तब शुद्धात्मद्रव्य का ज्ञान सच्चा होता है। आहाहा! केवल शुद्धात्मद्रव्य का ज्ञान सच्चा हो और पर्याय में राग है, पर्याय है, चार भाव है, उसको न जाने तो व्यवहारनय का ज्ञान नहीं, वह तो ज्ञान सच्चा नहीं। आहाहा! पण्डितजी! ऐसी बात है। ४९। अभी तो ५० में अलौकिक आयेगी बात।

मुमुक्षु : व्यवहार का ज्ञान कराने....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नय है या नहीं? नय है तो विषयी है। विषयी का विषय

है या नहीं? ११वीं गाथा में तो ऐसा कहा कि '**ववहारोऽभूदत्थो**' वह तो गौण करके, पर्याय को गौण करके असत् कहा है। गौण करके... पर्याय नहीं है तो वेदान्तवाद— मिथ्याभाव हो जाये। गौण करके दृष्टि मुख्य में लगाने को मुख्य निश्चय है और पर्याय गौण करके व्यवहार कहकर 'नहीं है'—ऐसा कहा। आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है। '**व्यवहारोऽभूदत्थो**' कहा। दूसरे पद में ऐसा कहा '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**' भूतार्थ वस्तु ही शुद्धनय है। नय और नय के विषय के भेद छोड़ दिया वहाँ। चन्दुभाई! '**भूदत्थो देसिदो**' त्रिकाली भूतार्थ भगवान वह शुद्धनय है। '**भूदत्थो देसिदो**' भूतार्थ को भगवान ने शुद्धनय कहा। तो नय और नय के विषय वहाँ एक हो गये। आहाहा! ऐसी बातें हैं। पीछे तीसरे पद में लिया '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' आहाहा! एक पद में अभूतार्थ को असत्यार्थ कहा गौण करके। दूसरे पद में त्रिकाल को शुद्धनय कहा, वह अभेद करके। चौथे में '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। वहाँ भेद कर दिया। भूतार्थ का आश्रय करने से। भूतार्थ शुद्धनय है, तो यहाँ कहते हैं कि भूतार्थ का आश्रय करना। शुद्धनय जो है भूतार्थ त्रिकाल, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धनय वस्तु है उसको यहाँ... पहली भूतार्थ वस्तु को शुद्धनय कहा। बाद में छोड़ दिया। पीछे कहा कि भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। तो शुद्धनय का आश्रय करने से... शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदी जीवो**' एक-एक पद यह तो समयसार... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य का शास्त्र अजब बातें, गजब बातें! बापू! ऐसी बात है नहीं कहीं। आहाहा! यह यहाँ कहा। अब उसका दृष्टान्त देकर कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक - ०४-०८-१९७९
गाथा - ४९, ५०, श्लोक-७३, प्रवचन-१५

नियमसार, ४९ गाथा। कोष्ठक आ गया? कोष्ठक है न अन्तिम में? ४९ की टीका, उसका कोष्ठक।

टीका। **जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं...** आहाहा! जिसको उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक—चार भाव हैं। आहाहा! तब तक संसारी है। चौदहवें गुणस्थान तक उदयभाव है तो वह संसारी है। आहाहा! असिद्ध आया न उदयभाव में? २१ बोल में असिद्धभाव। बात सूक्ष्म है, भाई! संसारी का अर्थ कुछ भी पर्याय में विकल्प कि आत्मा की प्रतिकूल दशा हों, वहाँ तक असिद्ध अर्थात् संसारी कहने में आता है। आहाहा! तो केवली भगवान भी संसारी हैं, ऐसा कहते हैं। अरर्र! क्योंकि उनको भी असिद्धभाव है, उदयभाव है योग का। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि से लेकर चौदहवें गुणसीान तक जब जिस गुणस्थान में वर्तता है, वह असिद्ध है, सिद्ध नहीं। आहाहा! है? **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश है।** यह भी अन्तर में तो वस्तु... पर्याय में है, असिद्धपना, उदयभावपना मिथ्यादृष्टि से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक। आहाहा! उदयभाव है, फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर में... आत्मा शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय से शुद्ध है, पर्याय से अर्थात् गुण के भेद से शुद्ध है। ऐसे शुद्धनय से जब अन्तर विचार करे तो परमात्मा पर्याय में भले असिद्ध हो, तो भी वस्तु है, वह तो परमात्मस्वरूप है। उसका अनुभव करना, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करना, यह अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में अभी राग बाकी है, उदय बाकी है तो उसको असिद्ध कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बातें हैं, भाई!

शुद्धनय के बल से शुद्धगुण ने शुद्धपर्यायवाला। शुद्धपर्याय तो उसको (पूर्ण) निर्मलता प्रगट है नहीं, पर्याय में अल्प (शुद्धता) प्रगट है। आहाहा! उससे सिद्ध सदृश है। पर्याय में भले उदयभाव गति का, राग का... गति का उदय है न? केवली को मनुष्यगति का उदय है। क्या? केवली को मनुष्यगति का उदय है। वह जीव की पर्याय है। समझ में आया? यह गति का उदय है, तब तक अभी संसार असिद्धदशा कहने में

आती है, परन्तु अन्दर शुद्धनय से देखो तो भगवान सिद्ध समान सदा है। आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! यह तो कहा था न थोड़ा, नहीं? रात्रि को कहा था। 'प्रभु! मेरे तुम सब बातें पूरा।' पर्याय में भले (अल्पता) हो, परन्तु वस्तुरूप से सम्यग्दर्शन का जो विषय उस रूप से 'प्रभु! मेरे तुम सब बातें पूरा।' प्रभु! तुम पूर्ण बात में पूरा हो न, नाथ! आहाहा! 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम। पर की आश करे कहाँ प्रीतम। कई बातें तुम प्रभु अधूरा। कई बातें नाथ तू अधूरा? प्रभु! मेरे तुम बातें सब पूरा।' आहाहा!

दृष्टि के विषय में तो द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण, परिपूर्ण ध्रुव। आहाहा! पर्याय में भले (अल्पता) हो, तो यह ज्ञान करनेयोग्य है—जाननेयोग्य है। परन्तु वस्तुरूप देखो तो आदरणीय तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव, परिपूर्ण अनन्त गुण... अनन्त गुण परिपूर्ण हैं। गुण में कुछ घिस गया है या कमी हुई है (ऐसा है नहीं)। आहाहा! वह निगोद में भी पर्याय मत देखो, छोड़ दो पर्याय को, तो वस्तु है तो सिद्ध सदृश वस्तु है। आहाहा! अनन्त गुण में कुछ भी कमी होती नहीं, घसारा होता नहीं। आहाहा! घसारा समझते हो? आहाहा! ऐसे शुद्धनय से सिद्धसमान है। ऐसी दृष्टि से स्वभाव का अनुभव करनेयोग्य है। बाकी सब बात ठीक है। आहाहा!

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसुरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

'**व्यवहरणनयः**' व्यवहार शब्द नहीं लिया है। '**व्यवहरणनयः**' '**रणनयः**' भेद पाड़ता है ऐसा विषय करनेवाला नय। आहाहा! यह तो समयसार का श्लोक है। '**व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्याः-**' निश्चयपद में व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? रागादि या गति आदि है। निचली दशा में रागादि है, ऊपर की दशा में गति आदि है। आहाहा! वह पर्याय अपनी है। परन्तु वह पर्यायनय से देखने से ऐसा है। आहाहा!

(मालिनी)

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्याः-
मिह निहितपदानां हंत हस्तावलम्बः।

तदपि परममर्थं चिच्चमत्कारमात्रं
परविरहितमन्तः पश्यतां नैष किंचित्॥

आहाहा! सूक्ष्म बात है भगवान! कहते हैं, **श्लोकार्थ—यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है, ऐसे जीवों को...** इसकी पर्याय समझना है, गुण समझना है, द्रव्य समझना है तो वह समझने की पर्याय में व्यवहार आता है। अरेरे! आचार्य कहते हैं... आहाहा! व्यवहारनय का विषय हो, परन्तु अनुभव में वह व्यवहारनय का विषय आता नहीं। आहाहा!

अरे रे! ऐसा कहा है न? खेद बताते हैं। आहाहा! मुनिराज को पर्याय में आनन्द की बाढ़ आती है। आनन्द की बाढ़ आती है। बाढ़ आती है। तो भी कहते हैं कि मेरी पर्याय में तो कमी है, वह तो मैं जानता हूँ, परन्तु मेरी चीज़ जो है उसमें, कोई पर्याय में कमी है तो वस्तु में कमी है या गुण में कमी है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसे व्यवहारनय प्रथम भूमिका में अर्थात् जानना है, ऐसी भूमिका में... पैर रखा है अर्थात् वहाँ लक्ष्य है अभी। **जीवों को अरे रे! हस्तावलम्बरूप...** भले हो। जानने में विकल्प आता है तो हो। आहाहा!

एक श्लोक! ४२वीं गाथा में कहा न? समयसार। कि पर्याय तो ठीक, व्यवहार तो ठीक, वह तो निषेध करते आये हैं, परन्तु है उसको। जो आत्मा अखण्ड है, अभेद है, परिपूर्ण है, ऐसा विकल्प उठा तो हो तब तक इससे क्या? इससे तुझे लाभ क्या? आहाहा! परिपूर्ण परमात्मा हूँ, शुद्ध चैतन्यघन हूँ, अनन्त गुण (रूप) परिपूर्ण से भरा पड़ा मेरा द्रव्य है, ऐसा मैं अबद्ध और शुद्ध हूँ।—ऐसे विकल्प उठते हैं राग, तब तक आत्मा का अनुभव नहीं। आहाहा! समझ में आया? तो उस विकल्प को छोड़कर... तेथी क्या? उससे क्या? यहाँ तक आया, उससे तुझे लाभ क्या हुआ? आहाहा!

वह विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प वस्तु जो है, उसका निर्विकल्प पर्याय में वेदन हो, अनुभव (हो), तब तेरे आत्मा को लाभ हुआ। आहाहा! पर्याय में... आत्मा की जैसी ताकत है, परिपूर्ण जितना सामर्थ्य है, वह पर्याय में उसके ज्ञान में आ गया, अनुभव में आ गया। वह चीज़ है, वह अनुभव की पर्याय में नहीं आती। अनुभव है,

वह पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह पर्याय के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर अनुभव किया, तब तो द्रव्य के ऊपर दृष्टि है, तब आनन्द का अनुभव हो, तब आत्मा की प्राप्ति हुई, तब तुझे शान्ति की प्राप्ति हुई, तब तुझे मोक्ष के मार्ग की प्राप्ति का लाभ हुआ। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, भाई! साधारण प्राणी को ऐसा लगे... बापू! मार्ग तो यह है। आहाहा! अनुभव में निर्विकल्पता आयेगी, तब वह अनुभव द्रव्य का है। अशुद्धता का लक्ष्य छूटकर शुद्धता के अनुभव में शुद्धता का परिणमन हो और अशुद्धता का परिणमन न हो, वह निर्विकल्प अनुभव उसमें आत्मा की प्राप्ति है। आहाहा!

आत्मा की सत्ता—होनेपना, वह पर्याय में जब निर्विकल्प का अनुभव करते हैं, तब आता है। बहुत मार्ग भिन्न, भाई! क्रियाकाण्ड तो कहीं रह गयी। हो, भले पर्याय में हो। भक्ति, पूजा आदि भाव हो, परन्तु वह सब विकल्प और बन्ध का कारण है। आहाहा! वह आये बिना रहे नहीं समकिती को भी। परन्तु वह हेयबुद्धि से आता है। यह उपादेय तो केवल त्रिलोकनाथ... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर प्रभु... निर्विकल्पदशा में अतीन्द्रिय आनन्द का... आनन्द का... आनन्द का... वेदन हो, तब उसमें आत्मा की प्राप्ति हुई। समझ में आया? आहाहा! क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द सम्पन्न है, तो पर्याय में उसकी दृष्टि करने से पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आता है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

ऐसा होने पर भी... सुबह में कहा था कि वेदन में पर्याय है। वह पर्याय वेदन में (आया), वह मैं आत्मा हूँ। आहाहा! चन्दुभाई! आया था न? हमें तो, आत्मा ध्रुव है, ऐसा अनुभव हुआ, परन्तु अनुभव में वेदन आया जो आनन्द का, यह आत्मा। हमें तो आनन्द का वेदन (आया), वह आत्मा। ध्रुव है, वह आत्मा का स्पर्श नहीं करता। आनन्द का वेदन ध्रुव का स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसी बातें समाज में रखनी। रतनलालजी! आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है। अनादि-अनन्त तीर्थंकरों का पुकार है। त्रिकाल में त्रिकाल जाननेवाले का विरह कभी होता नहीं। त्रिकाली जो चीज़ ज्ञेय है, उसको त्रिकाली को जाननेवाले का त्रिकाल में विरह होता नहीं। अनादि से केवलज्ञानी है, अनन्त काल रहेंगे, अभी हैं। आहाहा! वह त्रिकाल में त्रिकाली ज्ञेय को जाननेवाला का लोक में कभी विरह होता नहीं। उन सर्वज्ञ परमात्मा की यह ध्वनि है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारनय हो, हस्तावलम्ब है। देखो! हस्तावलम्ब। जैसे सीढ़ी पर चढ़ते हैं... मेडी को क्या कहते हैं? सीढ़ी के ऊपर चढ़ते हैं। लकड़ी होती है न? ऐसे हाथ देकर, परन्तु चलते हैं तो अपने पैर से। वह लकड़ी पर हाथ दिया तो चलते हैं ऐसा नहीं। ऐसे हस्तावलम्ब व्यवहार आया... वह लकड़ी को हाथ दिया, परन्तु चलते हैं तो अपने पैर से। इसी तरह व्यवहार आया... वह लकड़ी को हाथ दिया, परन्तु चलते हैं तो अपने पैर से। ऐसे व्यवहार आया, तो उसे हस्तावलम्ब निमित्तरूप से कहा, परन्तु अन्तर में आनन्द का वेदन अन्तर के स्वभाव के आश्रय से होता है, तब उसको निश्चय सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ। आहाहा! ऐसा मार्ग! यहाँ तो कपड़े बदले, जरा प्रतिमा दो-चार से आठ या दस। ग्यारह ले। उसमें क्या है? हम तो प्रतिमाधारी श्रावक हैं। अरे! प्रभु! वह मार्ग अलग है।

यह यहाँ कहते हैं, **तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित...** ऐसे पर से रहित... अरे! पर्याय से रहित... पर्याय है, व्यवहारनय का विषय है, असिद्धपना चौदहवें तक है। वह ज्ञान जानता है, फिर भी **चैतन्यचमत्कारमात्र पर से रहित ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं...** आहाहा! अन्दर की दशा अर्थात् लोचन... अन्तर की दशारूपी लोचन से अन्तर को देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? अन्तर का सम्यग्ज्ञानरूपी लोचन, वह आँख त्रिकाली को देखती है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है। अनुभव जहाँ द्रव्य का हुआ तो व्यवहार अन्दर में बिल्कुल आया नहीं, व्यवहार दूर रह गया। आहाहा! सुबह में तो बहुत सूक्ष्म था। लालचन्दभाई! एक पंक्ति एक घण्टे (चली)। रामजीभाई ने कहा, पौना घण्टा हुआ तो (एक) घण्टा पूरा करो। आहाहा!

मुमुक्षु : पराकाष्ठा थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पराकाष्ठा थी। भगवान में ऐसी बात है। भेदज्ञान की पराकाष्ठा है। आहाहा!

अरे रे! दूसरा सब करे परन्तु यह न करे। अन्दर चैतन्यचमत्कारमात्र भगवान

पूर्णानन्द... भाषा क्या ली है! चैतन्यचमत्कार... आहाहा! अपने क्षेत्र में शरीरप्रमाण से रहने पर भी लोकालोक को जानने की शक्ति रखनेवाला चैतन्यचमत्कार आत्मा है और वह भी लोकालोक को छुए बिना और लोकालोक है तो लोकालोक जानना हुआ, वह भी नहीं। अपनी पर्याय में ताकत इतनी है। शक्ति में लोकालोक जानने की ताकत—सर्वज्ञपना है, वह जानकर अनुभव करने से पर्याय में भी सर्वज्ञ की प्रतीति हुई, सर्वज्ञ की श्रद्धा हुई कि मैं तो सर्वज्ञ हूँ। आहाहा! समझ में आया? सम्यक् धर्म की पहली सीढ़ी—धर्म का पहला सोपान। ऐसा कहते हैं, मैं तो त्रिकाली ज्ञायकशुद्ध चैतन्य भगवान हूँ, ऐसा पर्याय का विषय है। पर्याय ऐसा कहती है मैं तो त्रिकाली निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य... निज परमात्मद्रव्य सत्ता हूँ। पर्याय कहती है कि यह मैं हूँ। समझ में आया? क्योंकि कार्य-काम और अनुभव तो सब पर्याय में होता है न? पर्याय में अनुभव होता है न? यह द्रव्य सारा पूर्ण है, उसका अनुभव और प्रतीति तो पर्याय में आती है न? या द्रव्य-गुण में आती है? द्रव्य-गुण तो ध्रुव त्रिकाली है। आहाहा! यह सब समझना पड़ेगा ऋषभकुमारजी! वहाँ धूल में कुछ है नहीं। आपके घर से—बहिन को प्रेम है तो आये हो। पैसा बहुत। कपास पके। धूल के कृषिपण्डित हैं। सरकार की ओर से बड़ा... यह समझे बिना कहीं सुख नहीं मिलेगा। भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है, भगवान! यह तो घर पर बहिन है, उसको प्रेम बहुत है। उसके घर पर उतरे थे न तब? ... गये थे न... महोत्सव थान कुछ मानस्तम्भ का? हाँ, मानस्तम्भ प्रतिष्ठा थी। वहाँ बैठे थे। साब में हम जाते थे। साथ में जाते थे खुल्ली मोटर में। आहाहा!

अरे! प्रभु! तुझे अवसर आया है न सब। मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमल ने कहा, सब अवसर आ गया है नाथ! यह मिलना मुश्किल है, प्रभु! अब तेरी दृष्टि में द्रव्य ले ले। ले उतार ले। आहाहा! दृष्टि में तेरा द्रव्य ले ले। दृष्टि में पर्याय ली है अनादि से और पर्याय में खेल किया है अनादि से। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया। परन्तु पर्याय में

खेल किया प्रभु! तूने। परन्तु उस पर्याय में द्रव्य को ले ले अब। ले लेना तो पर्याय में है। समझ में आया? जहाँ पर्याय में अनुभव करने से व्यवहार कुछ नहीं। उसके अन्तर में आता नहीं। है? आहाहा!

और (इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)— अब पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं।

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ
संसृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्वविचारे
शुद्धतत्वरसिकाः प्रवदन्ति॥७३॥

आहाहा! **श्लोकार्थ—शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहाहा! सिद्ध भी पर्याय है और संसार भी पर्याय है। आहाहा! **शुद्धनिश्चयनय से...** त्रिकाली ज्ञायकभाव एकरूप शुद्धनिश्चयनय से **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** मुक्ति हो तो भी पर्याय है और संसार है तो भी पर्याय है। अन्तर नहीं का अर्थ यह। है तो मुक्ति पूर्ण आनन्द की पर्याय, परन्तु वह पर्याय है न? वह द्रव्य नहीं। आहाहा! कहाँ मुक्ति की पर्याय और कहाँ संसार की पर्याय! कहते हैं कि दो में अन्तर नहीं। दोनों पर्याय हैं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! आहाहा!

मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;... आहाहा! कौन-सी अपेक्षा से? त्रिकाली द्रव्य की जहाँ दृष्टि हुई तो पर्याय दो हैं, वह तो व्यवहारनय का विषय हुआ। आत्मा संसार पर्यायवाला है और मुक्ति की पर्यायवाला है, वह तो व्यवहारनय का विषय हुआ। पर्याय है न? आहाहा! त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से दोनों पर्याय में कुछ अन्तर नहीं, ऐसा कहते हैं। वह भी पर्याय है और यह भी पर्याय है। इतना हों! आहाहा! अनन्त आनन्द आता है और संसार में अनन्त दुःख है, उस अपेक्षा से (अन्तर है। परन्तु) पर्याय है, तो यह भी पर्याय है और यह भी पर्याय है। बहिनों और बेटियों को यह सब कुछ समझना पड़ेगा। आहाहा! यह बहिन-बेटियाँ कहाँ हैं? यह तो आत्मा भगवान है न?

आहाहा! भगवान विराजते हैं अन्दर में प्रभु! तूने भेंट की नहीं कभी। भिखारी! पर्याय में राग का भेंटा करके मर गया। आत्मा को मार डाला। कलशटीका में ऐसा है। आत्मा को मरणतुल्य कर दिया है। कलश में। आहाहा!

महाप्रभु अनन्त गुण का पिण्ड का अनादर करके एक समय की पर्याय का आदर तुझे है, तो वह चीज़ है ही नहीं तेरी दृष्टि में, तो उसका मरण तूने कर दिया। वह कलश टीका में है। तीर्थंकर तीन लोक के नाथ की वाणी से भ्रान्ति मिटेगी। ऐसा लिखा है उसमें। तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा। आहाहा! उनकी वाणी में जो आया, उसे सुनकर यह भ्रान्ति मिटेगी। उसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता है नहीं। आहाहा!

ऐसा ही वास्तव में तत्त्व विचारने पर... देखो! **ऐसा ही वास्तव में तत्त्व विचारने पर...** वास्तविक द्रव्य-तत्त्व को विचारने पर... विचार पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! यह मार्ग दूसरी तरह का है। जेठालालभाई! आहाहा! यह सब नैरोबी ले जाने को आये हैं। आहाहा! शरीर की स्थिति तो, बापू! यह ९० साल हुए। क्या होता है? आहाहा!

भगवान में कोई अवधि है ही नहीं। यह तो अवधि बिना का अनादि-अनन्त है। शरीर की उम्र में कहने में आता है कि यह ९० हुए, ८५ हुए, ८० हुए, ९६ हुए। यह तो देह की—जड़ की स्थिति की पर्याय स्थिति। वह पर्याय तो उसमें है नहीं, परन्तु अपनी पर्याय जो एक अंश है, यह तत्त्व का विचार करने पर मुक्ति की पर्याय और संसार की पर्याय—दोनों में अन्तर है नहीं। क्योंकि दोनों का आश्रय करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! मुक्ति की पर्याय है नहीं। मोक्षमार्ग की है और उसका कार्य मोक्ष है, तो भी मोक्षमार्ग की पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह तो आ गया न अपने सुबह में ३२० गाथा में कि आत्मा जो है... अभी बाकी है थोड़ा। आत्मा है, वह बन्ध और मोक्ष के कारण को तो करता नहीं, परन्तु बन्ध और मोक्ष का परिणाम है, उसको करता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी पर को करूँ, ऐसा बनाऊँ, ऐसा बनाऊँ... आहाहा! कहो, चिमनभाई! यह लोहे के कारखाना सब एक ओर पड़ा रहा। कारखाना है लोहे का। एक बार ले गये थे। यह लोटा लो। क्या कहते

हैं ? स्टील... स्टील... हमने कहा, यह लोटे का क्या करे ? स्टील... स्टील का कारखाना है। आहाहा! यह चैतन्य का कारखाना है, चैतन्यचमत्कार का कारखाना है। आहाहा! जिसमें आनन्द पकता है। आहाहा! १४८ प्रकृति है, वह विष के वृक्ष हैं। १४८ प्रकृति में तो तीर्थंकर प्रकृति भी आ गयी।

मुमुक्षु : उसका भी नाश करना पड़ेगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकरप्रकृति बँधी है, वह तो विषवृक्ष है। उसका फल तो तीर्थंकरपना जिस भाव से बँधा, उस भाव का नाश करके जब केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, तब यह प्रकृति का उदय आता है। तो उस प्रकृति ने क्या किया ? और जिस शुभभाव से प्रकृति बँधी, उस शुभभाव ने आत्मा में क्या किया ? क्या कहा, समझ में आया ? तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधा वह भाव तो छूट गया, प्रकृति रह गयी। तो प्रकृति को भी भगवान विष का वृक्ष कहते हैं। क्यों ? कि शुभभाव गया तो शुभभाव ने आत्मा को क्या किया ? शुभभाव से तो प्रकृति बँधी। तो उसने आत्मा को क्या किया ? जो अभी बँधी, वह उदय में तो आयी नहीं। तो जिस भाव से बँधा वह भाव का नाश करके वीतरागभाव जब होता है और केवलज्ञान जब होता है, तब जो प्रकृति बँधी थी तीर्थंकर की, उसका केवलज्ञान में उदय आता है। आहाहा! तब समवसरण और इन्द्र, ठाठमाठ... आहाहा! उसके शरीर में कान्ति, करोड़ों सूर्य की कान्ति जैसा तो भगवान का शरीर है। वह सब प्रकृति का उदय तेरहवें में आया है। वीतरागता और केवलज्ञान हुआ बाद में प्रकृति का फल आया। उसमें उसने क्या किया ? आहाहा!

मुमुक्षु : ज्यादा.... तीर्थंकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, बिल्कुल काम नहीं। बाँधते हैं समय-समय में। अन्तर का स्वभाव का आश्रय करके अनुभव करते हैं, इतने का लाभ है। आहाहा! ज्ञानचन्दजी! वर्तमान के पण्डितों को कितनों को कठिन लगे। क्योंकि व्यवहार से करो, यह करो, यह करो... समझ में आया ? बस, ऐसा मानस्तम्भ बनाया, उसकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की, परन्तु उसमें तुझे क्या हुआ ? उसमें २५ हजार दिया। तुझे क्या लाभ हुआ उसमें ? पाप हुआ।

मुमुक्षु : धर्म माना तो पाप....

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं यह करता हूँ, यह कर सकता हूँ, पैसा दे सकता हूँ—यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! और पैसे दिये तो मुझे शुभभाव हुआ, वह भी झूठ है और शुभभाव हुआ तो पैसा जाता है, वह भी झूठ है। अरेरे! जड़तत्त्व और पुण्यतत्त्व चीज़ ही भिन्न है। आहाहा! पुण्यतत्त्व से जड़तत्त्व बँधता है, ऐसा भी नहीं और जड़तत्त्व से आतमा को फल आया केवली को, वह तो समवसरण और वाणी यह आया, उसमें आत्मा को क्या हुआ? वह गाथा है प्रवचनसार में। पुण्यफल अर्हंता। तो पण्डित लोग ऐसा कहे, देखो! उसमें लिखा है कि पुण्यफला अर्हंता। क्या कहते हो प्रभु? पुण्य के फल अरिहंत है अर्थात्? यह वाणी, शरीर, वह पुण्य का फल है। अरिहंतपना पुण्य का फल नहीं। पाठ में ऐसा है। प्रवचनसार है? ४५ न? कौन-सी गाथा? ४५। देखो!

'**अथैवं सति तीर्थंकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर**' ऊपर तो ऐसा कहा, तीर्थंकर को, अरिहन्त को '**पुण्यविपाको..**' पुण्य का विपाक अकिंचित्कर है। आहाहा! पुण्यविपाक कुछ करता नहीं। आत्मा में क्या है? यह तो कहते हैं, पुण्यफला अर्हंता। पुण्य से अरिहन्त पद मिलता है। ऐसे अर्थ निकालते हैं। गाथा ऐसी है न?

पुण्यफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा॥४५॥

वह उदयक्रिया को पुण्य का फल कहते हैं। हिलना, लना, बोलना जो उदय कहा है न? उसको यहाँ पुण्यफल कहते हैं। अन्तर प्रगट हुआ केवलज्ञान वीतराग, वह तो अपने द्रव्य के अवलम्बन से हुआ है। और निश्चय से कहो तो केवलज्ञान जो हुआ मोक्षपर्याय। केवलज्ञान वह भावमोक्ष है, वह पूर्व में मोक्षमार्ग था तो मोक्षपर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षपर्याय उत्पन्न होती है, वह मोक्षमार्ग से नहीं। मोक्षमार्ग का तो व्यय होता है। तो भाव उत्पन्न हुआ किससे? व्यय के आश्रय से हुआ है? अभाव के आश्रय से भाव हुआ है? भाववान परमात्मा त्रिलोकनाथ पूर्णानन्द से भरा है, उसका आश्रय और अवलम्बन से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। समझ में आया? वह भी व्यवहार से कहने में

आता है। निश्चय से तो केवलज्ञान की पर्याय षट्कारक से परिणमती प्रगट होती है। केवलज्ञान की पर्याय अपने से कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण—छह कारक से परिणमती उत्पन्न होती है। आहाहा! पुण्यफला अर्हंता की ऐसी व्याख्या चली है इसमें। पुण्य के फल में अरिहन्त पद मिलता है और सोनगढ़वाले निषेध करते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा तो मुनि भी उपदेश देते हैं महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देते हैं। ऐसा करो.. ऐसा करो... व्रत करो, अपवास करो, मन्दिर बनावो, गजरथ निकालो, पाँच-दस लाख खर्चो, तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि धूल में तूने पर का किया नहीं। तेरे में कदाचित् शुभभाव आया हो तो वह बंध का कारण विष है। शुभभाव वह विषकुम्भ है। मोक्ष अधिकार में है न? शुभभाव विषकुम्भ है। प्रभु अमृत का सागर है। आहाहा! शुभभाव वह अमृत के सागर से विरुद्ध है। ... अमृततुल्य है, तो शुभभाव विष है। आहाहा! अरर! यहाँ शुभभाव करते-करते कल्याण होगा... भाई! (ऐसा) मार्ग नहीं, बापू! ऐसा अवसर मिला मनुष्यपना... आहाहा!

छहढाला में तो ऐसा कहा। अरेरे! निगोद के जीव अनन्त पड़े हैं। एक शरीर के अनन्तवें भाग में बाहर आये हैं। ऐसे असंख्य निगोद शरीर(रूपी) जेल में पड़ा रहेगा, त्रस नहीं होगा। आहाहा! प्रभु! तुझे मनुष्यपना मिला। मनुष्यगति हों! मनुष्यपना अर्थात् शरीर नहीं। उदयभाव जो मनुष्यगति, वह गति मिली, छहढाला में तो कहते हैं कि निगोद में से त्रस हो। ईयल ईयल क्या कहते हैं? लट... लट हो तो चिन्तामणि जैसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : दुर्लभ लही ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रस तणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यों पर्याय... अनन्त अनन्त काल (गया) प्रभु! तूने विचार नहीं किया। अनन्त अनन्त काल जहाँ निगोद में रहा, अभी अनन्त काल वहाँ ही रहेगा। कोई जीव तो भविष्य में अनन्त काल तक त्रस भी नहीं होगा। अरर! उसमें से तुझे मनुष्यपना मिला तो तुझे उसमें यह करना है। मनुष्य अर्थात् ज्ञायकति इति मनुष्यः। अपना ज्ञायकभाव को जानना और अनुभवना, वह मनुष्य है। आहाहा! बाकी तो पशु है। आहाहा! चौदह बोल में आता है न? समयसार में पीछे। अनेकान्त... अनेकान्त के चौदह बोल में। सब

में पशु... चौदह बोल में सबको पशु लिया। पशु का अर्थ एकान्तवादी, ऐसा लिखा है। राग से धर्म माननेवाला, पुण्य की क्रिया से धर्म (माननेवाला) एकान्त मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? जिसका फल निगोद है। आहाहा! भले एकाद भव बीच में व्यन्तर आदि का हो, आखिर में तो निगोद में जायेगा आराम से।

यहाँ कहते हैं कि चैतन्यचमत्कारमात्र प्रभु... आहाहा! है? अन्तरंग में देखते हैं। आहाहा! पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु अपनी पर्याय में तत्त्वविचारकाल में देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? ... व्यवहारनय कुछ नहीं। अपने तो यह लिया है। **शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है...** आहाहा! **ऐसा ही वास्तव में तत्त्व विचारने पर...** तत्त्व-वास्तविक वस्तु जो त्रिकाली चैतन्य प्रभु, उसको विचारने पर **(-परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा कथन करने पर)...** कथन तो ठीक है। **शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** त्रिकाली वस्तु का विचार करने पर वह चीज़ है, (जिसमें) बन्ध और मोक्ष, संसार और मोक्ष पर्याय दोनों नहीं। ऐसे तत्त्व के अनुभवी कहते हैं। तत्त्व के रसिक जीवों ऐसे कहते हैं। ऐसे अनुभवते हैं और ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन लगे। ... अभी अभ्यास भी न हो, कुछ फुरसत भी न मिले। आहाहा! उसमें इस मार्ग को पहुँचना।

(वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण विचार करने पर), शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं। वह ४९ हुई। अब ५०।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च हवे अप्पा॥५०॥

टीका—यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है। हेय अर्थात् छोड़नेयोग्य, उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य। अथवा पर का त्याग और स्व का ग्रहण, ऐसा स्वरूप का कथन है। आहाहा! **जो कोई विभाव गुणपर्यायें हैं...** ४९ गाथा में आ गया। विभावगुण पर्याय, चार पर्याय—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। आहाहा! **विभाव गुणपर्यायें हैं, वे पहले व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गई थी...** उपादेय कहा। उसका अर्थ बाद में पण्डितजी ने कहा कि उपादेय, वह जाननेयोग्य है, इसलिए उपादेय कहा। वस्तु ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहार का विषय, अनित्य और नित्य—दोनों ही चीज़ है। वस्तु नित्य है तो अनित्य, त्रिकाल पर्याय अनित्य है। समझ में आया? वह चौदह बोल में आता है। चौदह बोल में नित्य-अनित्य... चौदह बोल है न अन्त में? पशु... पशु... पशु अर्थात् एकान्तवादी अर्थात् पशु नाम पश्यति बध्यति इति पशु। जो मिथ्यात्व से बन्धन करता है, वह पशु। चाहे तो मनुष्य हो, परन्तु जो राग से अपना लाभ मानता है, निमित्त से अपने में लाभ मानता है, पर्याय के आश्रय से अपना लाभ मानता है, उसको पशु कहने में आता है। 'मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरन्ति।' यह पहले संसार में... मनुष्य के स्वरूप में मृग है। हिरण... हिरण... है। आहाहा! लक्ष्मीचन्दभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! 'मनुष्या स्वरूपेण मृगा चरन्ति।' मृग है, हिरन है।

मुमुक्षु : ....पशु को भी बोलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पशु की परिभाषा दूसरी। एकेन्द्रिय को भी पशु कहते हैं। वह मिथ्यात्व करते हैं तो एकेन्द्रिय में, निगोद में जायेगा तो वह पशु है। पशु, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक का पशु है। चन्दुभाई! आहाहा! तो एकान्तवादी को यहाँ निगोद में जानेवाला पशु कहा है। एकेन्द्रिय में जायेगा यह। आहाहा! चौदह बोल हैं समयसार में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि विभावगुणपर्यायें हैं। है सही। एक तरफ त्रिकाली भगवान है, एकतरफ विभावपर्यायें हैं। चाहे तो क्षायिकभाव हो तो भी विभावपर्याय है। विशेष है न विशेष? सामान्य में वह विशेष है नहीं। आहाहा! जो कोई विभावगुणपर्याय है... है ऐसा कहा। पर्यायनय का विषय अनित्य विभावपर्याय, क्षायिकपर्याय, यह सब विषय हैं। आहाहा!

जो (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गई... आया न? उसमें कहा था न? निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन है। उसकी टीका की पहली पंक्ति। ४९ की टीका की पहली पंक्ति। **निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन (-कथन) है।** लो व्यवहारनय के उपादेय का कथन है। वह ज्ञान करने के लिये। ज्ञान में जाननेयोग्य है इसलिए कहा, ग्रहण करनेयोग्य है।

जाननेयोग्य इसलिए ग्रहण करनेयोग्य है। आदरनेयोग्य है इसलिए नहीं। आहाहा! अरेरे!

श्मशान में... हम बालक थे न छोटी उम्र में। तो शरीर बहुत सुन्दर था। आज तो ९० साल हुए। तब १० साल की उम्र में बहुत सुन्दर था। हमारे सगे-सम्बन्धी हमको पुई कहते थे। पुई... वह पुई होती है न? रुई की पुनी। हमारे मित्र शाला में पढ़ते थे वे हमको मैडम कहते थे। गोरे की मैडम होती है न? गोरा शरीर था तो मैडम, मित्र मैडम कहे। और माल लेने को हम बालक जाये। ... गोली आती है न शक्कर की गोली नहीं? तो वह भी ऐसा कहते हैं कि पुई आया, पुई आया। बहुत कोमल शरीर था न! यह तो ९० हो गये। बहुत कोमल शरीर। जड़।

मुमुक्षु : अभी भी ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी ऐसा नहीं। अभी तो ९० हुए।

तो कहते हैं कि यह सब तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! यह कोई आत्मा है नहीं। हमारे तो दूसरा कहना था। छोटी उम्र में दरवाजे के बाहर निकले तो गढ़ है उमराला में। और श्मशान थोड़ा दूर है। बाहर निकले थे तो श्मशान में चमकता था। हड्डी होती हे न? हड्डी की फोसफोरस। चमकता है। मैं बालक था तो मैंने कहा, यह क्या है? ओहोहो! साथ में दूसरा आदमी था, उसने कहा, वहाँ भूत है... भूत है। बाद में दूसरे को पूछा कि यह भूत कहते हैं? भूत है यह? यह तो फोसफोरस है, हड्डी की फोसफरस है। उसकी चमक हैं। वैसे यह शरीर, वाणी, पैसा, मकान, इज्जत वह हड्डी की चमक है। यह सब पैसेवाले बहुत दस लाख रुपये... बहुत दस लाख, ऐसे। केवल दस, बीस ऐसे नहीं। परन्तु वह कोई पैसेवाला आत्मा है? यह अभी कहते हैं। खबर है न। आहाहा!

यह प्रभु, कहते हैं कि विभावनय से... आहाहा! हेय-उपादेय... विभाव गुणपर्याय को व्यवहारनय से उपादेय कहा गया था। **किन्तु शुद्धनिश्चय के बल से...** शुद्धनिश्चय यथार्थ दृष्टि के बल में वह हेय है। चारों भाव हेय हैं। राग दया, दान, तो उदय है, हिंसा, झूठ, चोरी वह उदय है और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वह निर्मल पर्याय है। परन्तु उसको विभावपर्याय कहकर हेय कहा। कुन्दकुन्दाचार्य का पाठ है। '**पव्वत्तसयलभावा**'

पूर्व में जो सकलभाव कहे, चार भाव बताये। उपशम के दो भेद, क्षायिक के नौ भेद, क्षयोपशम के अठारह भेद, उदय के इक्कीस बोल। यह सब भाव... पहले आ गया न? आहाहा!

पूर्व में जो ४९ गाथा में कहा, वह **उपादेयरूप से कही गई थी, किन्तु शुद्धनिश्चयनय से हेय हैं... वे हेय हैं।** आहाहा! क्षायिक समकित पर्याय भी हेय है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सम्यग्दृष्टि तब होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय क्षायिक है, वह भी हेय है, त्रिकाली आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? किसी के पत्र में सुबह में आया था। बहिन का लो। अभी यह चलता है। बहिन का वचनामृत भी लेंगे आखिर में। किसी का पत्र आया था। ऐसे नियमसार छोड़कर वचनामृत लो। आखिर में एक दिन लेंगे। कदाचित् पूनम... अभी तीन दिन तो यह चलेगा। रवि, सोम और मंगल। कितना चले, पता नहीं। बाद की गाथा भी अच्छी है परन्तु अब थोड़ा लेते हैं। बहिन के वचनामृत हैं न, उसकी माँग की है। वचनामृत भाई ने डाला है न? जीतुभाई ने। गुजराती आत्मधर्म। आत्मधर्म गुजराती आया है न? उसमें बहिन के वचनामृत बहुत लिये हैं। उनके व्याख्यान भी डाले हैं। जीतू भाई (ने)

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुजराती में है। मैंने तो देखा है। हिन्दी में है? खबर नहीं। मैंने तो गुजराती आज देखा है। मासिक पढ़ा था वहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक। आहाहा!

यहाँ कहते हैं। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि '**पुव्वुत्तसयलभावा**' उदय के २१ बोल, क्षयोपशम के १८ बोल, क्षायिक के ९ बोल—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त दान, लाभ आदि प्राप्त हुआ। यह पर्याय क्षायिकभाव की है। तो वह क्षायिकभाव की पर्याय... समकित क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक पर्याय, चारित्र की उपशम,

क्षयोपशम और क्षायिक की पर्याय और राग की पर्याय—वह सब भाव, आहाहा! **शुद्धनयनिश्चयनय के बल से हेय हैं।** वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। जाननेयोग्य है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! क्षायिकसमकित आश्रय करनेयोग्य नहीं और छठवें गुणस्थान में चारित्र, सातवें निर्विकल्प चारित्र... अभी तो यहाँ तो कितने यह कहते हैं कि समकित निश्चय तो सातवें होता है। अरेरे! खबर कुछ नहीं। जय नारायण।

मुमुक्षु : खबर नहीं है, इसलिए ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं। अरे! भगवान! यहाँ तो क्षायिक समकित चौथे (गुणस्थान में) होता है और वह समकित सिद्ध समान है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। ऐसा सिद्ध का समकित है ऐसा तिर्यंच का समकित है। समकित में कुछ अन्तर नहीं। एक हजार योजन का मच्छ है, ऐसे तो बहुत है स्वयंभूरमणसमुद्र में। बाघ और सिंह हैं। हजारों बाघ और सिंह जंगल में... असंख्य तो श्रावक हैं पंचम गुणस्थानवाले। आहाहा! धन्य अवतार। शेर और बाघ, सर्प और नाग, नाग बड़े और मच्छ हजार योजन का मच्छ। चार हजार कोस का लम्बा। ऐसा असंख्य सिंह, असंख्य तिर्यंच, समकिती और पंचम गुणस्थानवाले हैं ढाई द्वीप बाहर। आहाहा!

वहाँ से देह छोड़कर स्वर्ग में जायेंगे और पीछे मनुष्य होकर कोई तो मोक्ष जायेगा। आहाहा! सिंह मरकर स्वर्ग में जायेगा। समकिती है। और स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य होकर केवल(ज्ञान) पाकर मोक्ष जायेगा। और यह सब पैसेवाले, धूलवाले कषायभाव में मरकर पशु में जायेंगे। माँस-शराब नहीं है तो नरक में नहीं जायेंगे। और धर्म तो नहीं, परन्तु सच्चा—सत् समागम एक दिन में चार-चार घण्टे करना, वांचन करना सत्शास्त्र तो पुण्य भी हो, तो स्वर्ग और मनुष्य भी मिले। साधारण मनुष्य मिले अथवा भोगभूमि का जुगलिया मनुष्य हो। आहाहा! पुण्य से। इतने पुण्य चार-चार घण्टे सुने तो। यह तो एक घण्टा सुने और साधारण मैं कुछ धर्म किया, तो ऐरण की चोरी और सुई का दान है। ऐरण समझते हो? सोनी की। उसकी चोरी और सुई का दान दिया। अरे रे! प्रभु! कठिन बात, बापू! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **(शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। किस कारण से?** सब कहा

न चार भाव ? २१, १८, ९ और २। चार भाव... पाठ में पहले सबको परद्रव्य कहा है। परन्तु टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया कि क्योंकि परस्वभाव है, ऐसा कहा। समझ में आया ? परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। कुन्दकुन्दाचार्य का पद्य है न ? पद्य है। पद्य में तो जैसे शब्द बैठे ऐसा ले लिया। परन्तु उनका कहने का आशय टीकाकार ने बोल दिया। आहाहा!

कहते हैं कि चार भाव की पर्याय जो है, आहाहा! वह पर किस कारण से हेय है ? **वे परस्वभाव हैं...** साथ में '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' ऐसा कहा। पाठ में ऐसा कहा कि चार भाव परद्रव्य हैं, उस कारण से परस्वभाव हैं, उस कारण से हेय हैं। टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया। परस्वभाव हेय है। परद्रव्य पहले नहीं, परस्वभाव है। तो स्वद्रव्य नहीं, वह परस्वभाव है तो वह परद्रव्य है। समझ में आया ? आहाहा! वह परस्वभाव क्यों हेय है ? चार भाव परद्रव्य क्यों हेय है ? आहाहा! समझ में आया ? कि वे परस्वभाव है। अपना स्वभाव नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय अपना स्वभाव नहीं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक - ०५-०८-१९७९
गाथा - ५०, प्रवचन-१६

जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं... चार भाव हैं... बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! ओहोहो! चार भाव जो आत्मा में हैं, रागादि का उदयभाव, धर्मादि का उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिक—वह चार पर्याय हैं। आहाहा! वह चार पर्याय विभावगुणपर्याय हैं। **(४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन शुद्ध द्वारा उपादेयरूप से कही गई थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** आहाहा! पर्यायनय से चार भाव हैं, तो उसको व्यवहारनय से उपादेय कहने में आया। उसका अर्थ—ग्रहण करने का अर्थ या ज्ञानरूप से ग्रहण करना, वह उपादेय कहने का आशय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म!

(शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं। आहाहा! क्षायिकसमकितभाव... आहाहा! नीचे के (गुणस्थान की) बात है न? पूर्ण क्षायिक किया तो... निश्चय क्षायिक समकित हो, क्षयोपशम समकित हो, उपशम समकित हो, क्षयोपशम चारित्र हो—वह सब पर्याय विभावपर्याय हैं, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा... यहाँ जरा सूक्ष्म बात है थोड़ी।

हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं,... पर्याय परस्वभाव है। आहाहा! वह त्रिकाली गुणस्वभाव नहीं है। आहाहा! त्रिकाली गुणस्वभाव नहीं, उस कारण से पर्याय परस्वभाव (कहा) है। मूल पाठ में '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' कहा। टीकाकार ने पद की रचना की। कहने का आशय जो आगे पाठ था, वह टीका में खोल दिया कि यह परस्वभाव है, इसलिए परद्रव्य है। आहाहा! यह परद्रव्य कौन? शरीर, कर्म (आदि) परद्रव्य की यहाँ बात नहीं है। उसकी पर्याय जो जीव के अस्तित्व में है, जो व्यवहारनय का विषय है... कितने व्यवहारनय उदयभाव हैं और कितने असद्भूतव्यवहारनय है अर्थात् कितने उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सद्भूतव्यवहार है। कहते हैं कि प्रभु! ओहोहो! प्रभु! देखो तो सही। जिसकी पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कह दिया। आहाहा! भाई! मार्ग ऐसा है।

शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव

हैं, और इसलिए परद्रव्य हैं। आहाहा! पर्याय, क्षायिकभाव की पर्याय त्रिकाली गुणस्वभाव नहीं, पर्यायस्वभाव है तो परस्वभाव है। और परस्वभाव है तो परद्रव्य है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! पानी के एक-एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं, वह बेचारे कब मनुष्य होंगे? आहाहा! ऐसी बात कब सुने? अरे रे! जिसे मनुष्यपने का योग मिला, उसको सुनने की योग्यता न मिले और सुनने का योग न मिले। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! जो अन्दर में... शरीर, वाणी, मन, कर्म की बात यहाँ है नहीं। कर्म का उदयभाव है, वह तो परद्रव्य, स्थूल परद्रव्य है यह तो। परन्तु अपनी पर्याय में जो क्षायिकभाव सम्यग्दर्शन, क्षयोपशमभाव सम्यग्दर्शन, उपशमभाव सम्यग्दर्शन, क्षयोपशमभाव चारित्रभाव, उपशमभाव चारित्रभाव, निर्मल वीतरागी पर्याय है, यह पर्याय है, वह परस्वभाव है, गुणस्वभाव नहीं। द्रव्य का गुणस्वभाव नहीं, हमेशा रहनेवाला गुणस्वभाव नहीं। उस कारण से एक समय की पर की पर्याय है चार भाव। तो उसे परभाव, परस्वभाव कहकर... आहाहा! इसलिए परद्रव्य हैं। गजब बात है! अभी तो शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार या (उनका) आत्मा, जड़ परद्रव्य है, वह बात बैठती नहीं है। मेरे पैसे, मेरी स्त्री, मेरे पुत्र। अरर्र! प्रभु! तुम कहाँ जाते हो भाई! तेरी क्या गति होगी उसमें?

यहाँ तो परमात्मा का अन्तिम पुकार है कि पर्याय पर से दृष्टि उठानी है, इसलिए पर्याय को परस्वभाव गिनकर परद्रव्य कहने में आया है। आहाहा! जरा शान्ति से... **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित...** सर्व विभावगुण चार प्रकार की पर्याय, उस विभावगुणपर्यायों से रहित **शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप...** आहाहा! तो अन्तःतत्त्व भावस्वरूप ध्रुव त्रिकाली भावस्वरूप... अन्तःतत्त्व कहा है न? वह भावस्वरूप। आहाहा! पर्याय को जब परद्रव्य कहा, तो अन्तःतत्त्व स्वभावभावरूप वह हमेशा रहनेवाला अनन्त गुण का भावस्वभावरूप... आहाहा!

शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप... पर्याय बाह्यतत्त्व हो गया। और अन्तर में अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण, वह अन्तःतत्त्वस्वरूप है। वह अन्तःतत्त्वस्वरूप... आहाहा! स्वद्रव्य... उसको स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तो अन्तःतत्त्व भाव जो

त्रिकाल रहनेवाला स्वभावभाव है, उसको स्वद्रव्य कहा। समझ में आया? जब एक समय की क्षायिकपर्याय को भी परद्रव्य कहा तो स्वद्रव्य क्या? अभी तो एक बात कि स्वद्रव्य जो त्रिकाली स्वभावभाव गुण है... आहाहा! अन्तःतत्त्व, शुद्ध-अन्तःतत्त्व, शुद्ध अन्तःभावस्वभाव, ध्रुव अन्तःस्वभावभावस्वरूप। आहाहा! शुद्ध-अन्तःतत्त्व अर्थात् शुद्ध-अन्तःस्वभावस्वरूप स्वद्रव्य, उसको स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तब अन्तःतत्त्वभाव... भाव हों! वह त्रिकालीभाव को स्वद्रव्य कहा। ओहोहो!

यह बात, नियमसार में जैसी बात हे, ऐसी बात दूसरे दिगम्बर के शास्त्र में नहीं है। तो दूसरे (मत में) तो कहाँ होगी? आहाहा! समझे, भाई! शान्ति से। जब पर्याय चार भाव परस्वभाव है, द्रव्यस्वभाव नहीं अर्थात् गुणस्वभाव नहीं अर्थात् ध्रुवस्वभाव नहीं। आहाहा! इस कारण से उस पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। तब स्वद्रव्य क्या? स्वद्रव्य, अन्तःतत्त्व स्वभावभाव हमेशा रहनेवाला गुणस्वभाववाला, उसको स्वद्रव्य कहा। ऐई! चन्दुभाई! अलग बात है, बापू! आगे स्वद्रव्य का आधार लेंगे। आहाहा!

पर्याय, जब क्षायिक केवलज्ञान की पर्याय को परभाव, परस्वभावभाव कहकर यह परद्रव्य है, (ऐसा कहा)। एक समय की पर्याय तब हो... परन्तु एक समय की पर्याय है। तब त्रिकाली जो गुण है अन्तःतत्त्व, अन्तःस्वभावभाव... द्रव्य नहीं अभी तो। आहाहा! अन्तःतत्त्व जो त्रिकाली अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, शान्ति, स्वच्छता उसका जो स्वभावभाव अन्तःस्वभावभाव। आहाहा! जब पर्याय को बहिर्तत्त्व कहा... पहले आ गया है ३८वीं गाथा में। संवर-निर्जरा और मोक्ष भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! क्योंकि प्रगटरूप एक समय की अवस्था है। आहाहा! तब अन्तःतत्त्व क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन आदि अनन्त गुण का पिण्ड, अनन्त गुण (रूप) अन्तःतत्त्व, वह स्वद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया? अभी स्वद्रव्य का आधार कहेंगे। आहाहा!

अरे! तीन लोक के नाथ का पुकार सुनकर सन्त आये और सन्तों ने प्रसिद्ध कर दिया। आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं, प्रभु! एक समय की अवस्था वह हमेशा रहनेवाली नहीं। इस अपेक्षा से उसको परस्वभाव, हमेशा रहनेवाले स्वभाव की अपेक्षा से उसको परस्वभाव कहा और हमेशा रहनेवाले स्वभाव को जब द्रव्य कहा, तो वह परस्वभाव

को परद्रव्य कहा। आहाहा! वह स्व... **विभावगुणपर्यायों से रहित...** एक समय की क्षायिक आदि पर्याय है, उससे रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्व जो हमेशा रहनेवाला स्वभाव है... स्वभाव हों! द्रव्य अभी नहीं, वह गुण। वह गुण को स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा। आहाहा! एक समय की अवधि की दशावाले को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो शाश्वत् स्वभाव अनन्त गुणस्वभाव अन्तःतत्त्वभाव, आहाहा! अन्तःतत्त्वस्वरूप को यहाँ स्वद्रव्य कहा। अन्तःस्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। समझ में आया? है?

मुमुक्षु : अनन्त गुण को स्वद्रव्य कहा, तो द्रव्य की बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में आधार उसका दूसरा लेंगे। वह स्वद्रव्य का आधार पारिणामिकभाव। आहाहा! देखो, यह शैली तो देखो! आहाहा!

परद्रव्य की तो यहाँ बात ही नहीं, परन्तु एक समय की अवधिवाली दशा, चाहे तो केवलज्ञान हो तो भी एक समय ही रहता है। दूसरे समय दूसरा पर ऐसा। ऐसा परन्तु दूसरा। दूसरे समय में वह नहीं। ऐसा सही, परन्तु दूसरा। आहाहा! समझ में आया? यह गाथा अलौकिक है, बापू! और कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिए बनाया है। भाई! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! जिनका नम्बर, मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो, तीसरे नम्बर पर आता है। आहाहा! पहले नम्बर पर भगवान, दूसरे नम्बर पर गणधर, आहाहा! तीसरे नम्बर पर भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। चौथे नम्बर पर जैन धर्मोस्तु मंगलं। वह तो धर्म। आहाहा!

यहाँ यह कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास... लिखा है आगे कहेंगे। अन्तिम की गाथा में है कि मैंने भगवान के पास ऐसा सुना है, ऐसी चीज़ मैं तुमको कहता हूँ। मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। समझ में आया? आहाहा! अरे! क्या है यह? त्रिकाली गुण जो स्वभाव है... त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली आनन्द (आदि) त्रिकाली गुण, ऐसा जो अन्तःस्वभावभाव, अन्तरस्वभाव गुण, हों! वह पर्याय को जब परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। त्रिकाली स्वभाव को

स्वद्रव्य कहा। समझ में आया? आहाहा! वह उपादेय है। त्रिकाली स्वभावभाव, वह उपादेय है। आहाहा! जब पर्याय स्वभावभाव परद्रव्यरूप से उसको हेय कहा, तब त्रिकालीभावस्वभाव स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। आहाहा! कपूरचन्दजी! कभी सुना नहीं ऐसा जिन्दगी में। कहीं है नहीं, प्रभु! क्या करे? यह कुन्दकुन्दाचार्य की शैली! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की दृष्टि छुड़ाने के लिये त्रिकालीस्वभाव को स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तो ध्रुवस्वभाव गुण... गुण को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरे गुण को स्वद्रव्य कहा, तो उसके गुण के धरनेवाले की बात कहाँ? आहाहा!

वास्तव में सहजज्ञान... जिसमें अन्तःतत्त्वस्वरूप कहा था, वह सहजज्ञान... आहाहा! **सहजदर्शन-सहजचारित्र...** त्रिकालीदर्शन-त्रिकालीचारित्र... वर्तमान पर्याय की बात नहीं। वर्तमान चारित्रपर्याय को तो परस्वभाव कहकर परद्रव्य में डाल दिया। क्या कहते हैं? वर्तमान में जो चारित्र प्रगट होता है निर्मल वीतरागी आनन्द के साथ, वह चारित्र पर्याय जो है वर्तमान प्रगट वेदन में, उसको तो परभाव-परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहकर हेय कह दिया। आहाहा!

परन्तु यहाँ तो भगवान आत्मा... भाव जो है... भाव जो है, त्रिकाली रहनेवाला भाव है, उसको ही स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली रहनेवाले स्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! वह स्पष्टीकरण करते हैं **वास्तव में सहजज्ञान...** जो त्रिकाली स्वतत्त्व कहा, स्वद्रव्य कहा वह सहजदर्शन-स्वाभाविकदर्शन त्रिकाल, स्वाभाविकचारित्र त्रिकाल, सहज परमवीतराग-सुखात्मक... परम वीतराग सुखस्वरूप त्रिकाल... आहाहा!

सहज परमवीतराग सुखात्मक... पर्याय में भी जो चारित्र की... आनन्द, चारित्र आदि की पर्याय होती है, उसको जब परभाव कहकर—परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली चारित्र स्वभाव जो अन्तर है... आहाहा! सहजज्ञान स्वाभाविक ध्रुव,

सहजदर्शन स्वाभाविक त्रिकाल, सहजचारित्र वीतरागस्वरूप त्रिकाली। सहज परमवीतराग-सुखात्मक... यहाँ सिद्ध करना है परमवीतरागसुख, वीतरागी सुख... आहाहा! इन्द्रिय सुख की जो कल्पना है, वह तो उदयभाव है, उसको परभाव कहकर, परद्रव्य कहकर हेय कहा। जब निर्मल पर्याय को जब परद्रव्य कहकर हेय कहा, तो फिर रागादि का व्यवहाररत्नत्रय है, वह तो उदयभावरूपी मलिनभाव है, उसको भी परभाव कहकर हेय कर दिया। स्वद्रव्य जो सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, स्वाभाविक परमवीतराग आनन्दस्वरूप, वीतराग आनन्दस्वरूप, शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप—उन सबको शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप कहा। जो ऊपर कहा था न? विभावगुणपर्यायों से रहित शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप, यह बात यहाँ ली।

शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का... आहाहा! त्रिकाली गुण का स्वरूप उसको स्वद्रव्य कहा। तो स्वद्रव्य का आधार क्या? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात तो अलौकिक है, बापू! आहाहा! **शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय...** कहा था वहाँ। वह **स्वद्रव्य का आधार...** आहाहा! जीव में जो द्रव्यत्वगुण है, प्रमेयत्वगुण है, ज्ञानगुण है, आनन्दगुण, शान्ति, स्वच्छत्व, अकषायस्वभाव गुण है, वह सब गुण को यहाँ स्वद्रव्य कहा। क्योंकि जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकालीगुण को स्वद्रव्य कहा। अरेरे! ऐसी शैली!

अब उस स्वद्रव्य का आधार... वह त्रिकाली गुण हैं, उसे स्व-स्वभाव होने से स्वद्रव्य कहा, पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! प्रभु! तेरी बलिहारी है, नाथ! आहाहा! गजब बात है। आहाहा! एक पंक्ति में कितना समा दिया! आहाहा! और वह निकाला कहाँ से? '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' तो यहाँ परस्वभाव पहले कहकर परद्रव्य हेय। '**सगदव्वमुवादेयं**' कौन? अन्तरतत्त्व, यह है आत्मा। अब उस अन्तःतत्त्व का आधार आत्मा है। क्योंकि जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली गुण को स्वद्रव्य कहा। अरेरे! ऐसी शैली! अब उस स्वद्रव्य का आधार... वह गुण जो है त्रिकाली स्व-स्वभाव होने से स्वद्रव्य कहा। पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! प्रभु! तेरी बलिहारी है, नाथ! आहाहा! गजब बात है। आहाहा! एक पंक्ति में कितना समा दिया!

वह निकाला कहाँ से? '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' तो यहाँ परस्वभाव पहले कहकर परद्रव्य हेय। '**सगदव्वमुवादेयं**' कौन? अन्त:तत्त्व। अब '**अप्पा**' अब उस अन्त:तत्त्व का आधार आत्मा है। अरेरे! यहाँ कहते हैं कि तेरी पर्याय में भी... एक समय की अवधिवाली क्षायिक आदि पर्याय उत्पन्न होती है, उसको जब परभाव कहकर परद्रव्य कहा। आहाहा! तो अन्तर त्रिकाली गुण का पिण्ड जो गुण है, द्रव्य नहीं, उस गुण को स्वद्रव्य कहा। अन्त:तत्त्व का... अन्त:तत्त्व का अन्तर का भाव। तत्त्वार्थश्रद्धान है न शब्द? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। तो अर्थ तो द्रव्य-गुण-पर्याय है। तत्त्व अर्थात् उसका भाव। आहाहा!

क्या कहा? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। वह उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र का शब्द है। तो अर्थ तो द्रव्य-गुण-पर्याय है और तत्त्व उसका भाव। आहाहा! वह भाव की श्रद्धा यथार्थ की, आहाहा! उसको अर्थ की श्रद्धा हुई। भाव की यथार्थ श्रद्धा वह अर्थ की यथार्थ श्रद्धा, द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा है। वह आता है न ४१५ अन्तिम। ४१५ गाथा। समयसार अन्तिम। यह सुनकर अर्थ, तत्त्व सुनकर अर्थ में स्थिर होना। ४१५ है। है न? आहाहा! भगवान

जब प्रभु अनन्त गुणसम्पन्न है, अनन्त-अनन्त गुण की अस्तित्व-सत्ता है, वह ध्रुवस्वभावभाव है। भाववान यह तो परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! तत्त्व स्वभावभाव जो है त्रिकाली, उसका आधार... है? स्वद्रव्य का आधार? वह स्वद्रव्य तो गुणों को स्वद्रव्य कहा है। समझ में आया? जब पर्याय को परद्रव्य कहा तो त्रिकाली रहनेवाले गुण को ही स्वद्रव्य कहा। आहाहा! कहाँ गये भरत चक्रवर्ती? ऐसी बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : भरत चक्रवर्ती....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मवाले हैं न! मार्ग ऐसा है। दिगम्बर सन्त यह कहते हैं। ऐसी चीज़ कहीं है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐई! जेठालालभाई! तुम आये और यह बात आयी। भाग्यशाली हो। बात सच्ची है। लक्ष्मीचन्दभाई! आहाहा!

क्या प्रभु की शैली! प्रभु! एक समय की अवधिवाली चीज़ को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा और हेय कहा, तो त्रिकाली गुणस्वभाव को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा।

गुणस्वभाव को, हों! चन्दुभाई! है या नहीं? प्रभु! आहाहा! ऐसा जो स्वगुण त्रिकाली है, उसको जब स्वद्रव्य कहा, तो स्वद्रव्य का आधार कौन् आहाहा! द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों लिये। आया न? आहाहा! पर्याय को जब परभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली रहनेवाला गुणस्वभाव, उसको स्व-स्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। उसको (-पर्याय को) परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली गुणस्वभाव को स्वस्वभाव जानकर स्वद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया? है न? सामने पुस्तक है या नहीं भाई?

मुमुक्षु : कुछ नया निकाला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात अन्दर है ही। यहाँ अन्दर है, वह यहाँ अन्दर है। आहाहा! शैली तो देखो! प्रभु की। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिया बनाया है। तो उसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय की दृष्टि छोड़कर वह परद्रव्य और परभाव (हुआ)। गुण के ऊपर दृष्टि आयी तो उस गुण को स्वद्रव्य कहा। परन्तु अभी गुण का—स्वद्रव्य का आधार कौन है? आहाहा! ऋषभभाई! यह अलौकिक बात है यहाँ। आपके पैसे की बात यहाँ नहीं धूल की। कितने एकड़ तो जमीन है धूल की। धूल न? जमीन तो धूल है न? नहीं? पैसा भी धूल है। यह तो चैतन्य भगवान... बापू! भाई! आहाहा!

एक समय की क्षायिक पर्याय को परस्वभाव (कहा)। त्रिकाल स्वभाव नहीं, इसलिए क्षणिक स्वभाव को परस्वभाव कहकर... आहाहा! त्रिकाल स्वभाव नहीं इसलिए एक समय की पर्याय को, चाहे तो क्षायिक समकित हो, केवलज्ञान हो, आहाहा! ऐसी पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा और हेय कहा। तब त्रिकाली गुण जो ध्रुव है, उसको स्वस्वभाव, स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या शैली! सहज आया है, यह सब। शिक्षण शिविर में यह गाथा लेने का भाव हुआ थोड़ा। आहाहा!

मुमुक्षु : अद्‌भुत स्पष्टीकरण हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसी बात है, बापू! क्या हो? यह स्वद्रव्य का आधार... अभी तो स्वद्रव्य का आधार... परन्तु वह स्वद्रव्य कहा किसको? जो त्रिकाली

गुणस्वभावभाव ध्रुव उसको स्व-स्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। आहाहा! अरेरे! यह चीज़ करना... यह पानी में वनस्पति... आज याद आया वनस्पति का। आहाहा! कहा, इस एक-एक टुकड़े में असंख्य जीव, वह बेचारे... अभी तो वनस्पति बहुत हुई है न? बारिश बहुत होई। १७... हो गयी है। यहाँ २० चाहिए, उसमें १८ यह आया है। कपास, क्या कहते हैं? मूँगफली। ऐसा पाक हरा... हरा... पूरा पर्वत। और एक-एक टुकड़ा पत्ते का लो एक टुकड़ा, उसमें असंख्य तो शरीर हैं और एक-एक शरीर में एक जीव। प्रत्येक की बात है न? आहाहा! अरेरे! उस पानी में से, उस वनस्पति में से कब निकले? (कब हो) त्रस और कब मनुष्य हो और कब भगवान की वाणी सुनने का योग मिले? आहाहा! और वह योग आया फिर कब अन्तर दृष्टि जाये? यह तो दुर्लभ में दुर्लभ चीज़ है, प्रभु! आहाहा! बोधिदुर्लभभावना कही है न? आहाहा! स्वद्रव्य का आधार... अभी स्वद्रव्य का आधार! द्रव्य का भी आधार?

मुमुक्षु : एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य का आधार लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह गुण का त्रिकाली रहनेका स्वभावभाव को... जब क्षणिकभाव को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो कायम रहनेवाले स्वभाव को स्व-स्वभाव जानकर स्वद्रव्य कहा। उसका आधार... आहाहा! वह तो शुरुआत करने से पहले भगवान को याद किये थे। प्रभु! तुझे जो कहना है, वह बात इसमें कहना। क्या कहा? कहने से पहले, प्रभु! तुझे जो कहना है, वह अभी कहना। हम तो साक्षी हैं अन्दर। मुझे उसमें दूसरी चीज़ याद न आये तो प्रभु! तुझे जो कहना हो, वह अन्दर से आना चाहिए। ऐई! चन्दुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : सब कह दिया प्रभु ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उसके अर्थ में परिवर्तन न आये, प्रभु! ऐसा करना। लालचन्दभाई! ऐसा कहा था। यह तो अटपटी बात है, उसमें परिवर्तन न हो, प्रभु! तुझे यहाँ आकर कहना पड़ेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु ने प्रार्थना सुनी आपकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे अर्थ अन्दर से भगवान निकाले।

मुमुक्षु : अपूर्व वचन।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपूर्व वचन बापू! आहाहा! थोड़ा भी, परन्तु परम सत्य अमृत के सागर उतरते हैं, बापू!

कहते हैं कि अन्तर का अमृत का सागर स्वभाव जो अनन्त गुण और जो एक आनन्द गुण है, वह आनन्द का रूप अनन्त गुण में है। ऐसा जो द्रव्य, जो स्वभाव त्रिकाली, उस त्रिकाली स्वभाव को हम स्वद्रव्य कहते हैं। पर्याय को—क्षणिक रहनेवाले को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहकर हेय कहा। तो त्रिकाली स्वभाव को अपना स्वभाव कहकर उसको स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। पण्डितजी! ज्ञानचन्दजी! यह हमारे बहुत बड़े हैं न हिन्दुस्तान में? यह हमारे गुजरात में बाबूभाई। ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! प्रभु! तुझे जो कहना है, वह अर्थ निकलना हों, उसमें से। आहाहा!

वह स्वद्रव्य का आधार... परन्तु द्रव्य का आधार? वह तो कहा न प्रभु! कि गुण जो त्रिकाली गुण को जब स्वद्रव्य कहा... क्योंकि पर एक समय की पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा, तो त्रिकाली स्वभाव को तो स्वद्रव्य कहा। आहाहा! बाबूभाई! ऐसी बातें हैं, बापू! ऐसा मार्ग! आहाहा! वह स्वद्रव्य का आधार **(सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण है...** देखो! अब। पहले पर्याय कहा, पश्चात् त्रिकाली गुणस्वभाव कहा, अब गुणस्वभाव का आधार कौन? कि परमपारिणामिकभाव त्रिकाल द्रव्य। उसको स्वद्रव्य कहा और उस स्वद्रव्य का आधार त्रिकाली वस्तु। आहाहा! समझ में आया? अरे! बापू! ऐसी बातें कहाँ हैं? भाई! दिगम्बरदर्शन, वह जैनदर्शन, वह वस्तु का दर्शन है। आहाहा! जिस चीज़ का कलेजे पर घाव लगे अन्दर से और हकार हो जाये अन्दर आनन्द का। आहाहा! ऐसी चीज़ यह प्रभु! आहाहा!

स्वद्रव्य का आधार... रात्रि को पूछना प्रभु! कुछ न समझा हो तो असंकोच रखकर पूछना, संकोच न रखना। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! ऐसी बातें हैं। वह स्वद्रव्य का आधार अर्थात् स्वस्वभाव जो है, उसको स्वद्रव्य कहा तो वह स्वद्रव्य का आधार... आहाहा! **सहज परमपारिणामिक...** लक्षण कोई गुण सहजलक्षण स्वभाव का। परन्तु उस द्रव्य का आधार... आहाहा! वह स्व-स्वभाव जो त्रिकाली स्वद्रव्य उसका आधार... आहाहा!

सहज परमपारिणामिकभाव लक्षण... स्वाभाविक परमपारिणामिकभाव लक्षण त्रिकाल। आहाहा! जब स्वभाव को स्वद्रव्य कहा तो यह स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिक को कहा। गजब बात है, बापू! इतने थोड़े शब्दों में इतना भर दिया है। थोड़े शब्द में गहन बात प्रभु ने भरी। आहाहा! यथार्थ है, हों! पर्याय को परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा; इसलिए कोई कहे कि अयथार्थ है, ऐसा है नहीं। त्रिकाली स्वभाव जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... तत्त्व जो भाव है, वह त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा। तो अब स्वद्रव्य का भी आधार कौन? आहाहा! क्या शैली! गजब शैली! आहाहा! फिर भी निश्चय की बात में व्यवहार होता है, उसको जानना चाहिए। वह पर्याय व्यवहार से है, ऐसा जानना चाहिए। यह तो जानना चाहिए, परन्तु अन्दर राग का भाव आये...

सुबह में कहा था न? कि भाई! यह शास्त्र है, उसको हवा खाना, वह महामिथ्यात्व है। पाप, बड़ा पाप है। उसको हवा, गर्मी लगे तो हवा खाये। अरे! उसका तो नहीं, परन्तु सुनने बैठे तो कपड़े से हवा खाये तो बड़ी विपरीत दृष्टि है। तत्त्वदृष्टि का अनादर करता है। ऐई! जेठालालभाई! आहाहा! जिसकी बात सुनने इन्द्र पिल्ले के जैसे... गलुडिया को क्या कहते हैं? पिल्ला—कुत्ती का बच्चा।

मुमुक्षु : पिल्ला....

पूज्य गुरुदेवश्री : पिल्ला। आहाहा! जागती ज्योति करके नजर करनी चाहिए। आता है न ८वीं गाथा में? टग-टग देखते हैं। टकटकी लगाकर... आता है? ८वीं गाथा। आचार्यों ने कहा, आहाहा! आत्मा। तो आत्मा क्या है। वह समझ में नहीं आया उसको। मेढ़े की तरह... आहाहा!

ब्राह्मण आया गली में, स्वस्ति कहा। यह दृष्टान्त है। स्वस्ति कहा तो सुननेवाला (समझा नहीं कि) स्वस्ति क्या है? परन्तु उसको अनादर नहीं, तथा शंका नहीं। परन्तु आशंका से, यह क्या कहते हैं? मैं समझता नहीं। वह स्वस्ति का अर्थ समझने को टग-टग लगाकर मेंढ़े की तरह... मेंढ़े का स्वभाव जो है मेंढा-घेटा... एक समय भी नीचे न देखे। एक खड्डे में पड़े तो वह भी खड्डे में जाये। घेटा-भेड़। हमारी भाषा तो यह है। हिन्दी तो अच्छी आती नहीं। वह मेंढा जैसे टग-टग... एक चला जाता है, उसके पैर के

पीछे सब चलते हैं। ऐसे स्वस्ति शब्द कहा तो सुननेवाला तो टग-टग... क्या कहते हो तुम? हम तो समझते नहीं। टकटकी लगाकर... आहाहा!

तो कहा, स्वस्ति का अर्थ, प्रभु! स्व-अस्ति—तेरा कल्याण हो। ऐसा अर्थ है। स्व का कल्याण अस्ति। अस्ति अर्थात् कल्याण हो।

मुमुक्षु : तेरा अविनाशी कल्याण हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्व-अस्ति में यह आया। स्व अर्थात् अस्ति है, उस अस्ति में कल्याण अस्ति—हो। आहाहा! वह दृष्टान्त कहा। बाद में आचार्य कहते हैं कि आत्मा। तो टग-टग लगाकर... क्या कहते हैं, यह? यह आत्मा क्या कहते हैं? टग-टग लगाकर... पाठ है। संस्कृत टीका है ८वीं गाथा। यशपालजी! है न? ८वीं गाथा में है। टकटकी... वहाँ सोते नहीं आँख... आहाहा! टग-टग लगाकर... नींद न आयी हो रात्रि को तो भी सुनने के समय तो टग-टग लगाकर... आहाहा! प्रभु! क्या कहते हो तुम आत्मा? तो कहा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो, यह आत्मा। वह व्यवहार कहा। व्यवहार कहा वह निश्चय समझाने को। व्यवहार कहा, वह व्यवहार में रहने को नहीं। आहाहा!

तेरा आत्मा, उसको कहिये प्रभु! कि स्वाभाविक ज्ञान, समकित... ज्ञान और समकित और चारित्र। आनन्द की रमणता। वह अतति गच्छति... आत्मा इसको प्राप्त करे, वह आत्मा। यह भी व्यवहार कहा। तीन भेद को प्राप्त करे, ऐसा कहा न? आहाहा! परन्तु कहा भेद करके... उसमें है 'साधिक'। कितनी भी अधिक बुद्धिवाला हो... ऐसा शब्द है, साधिक। व्यवहारनय का जो श्लोक है न, उसमें लिखा है। कितना भी बुद्धिवाला हो फिर भी यह भेद किये बिना (उसको) समझा सके नहीं। साधिक बुद्धि अन्दर है, कलश में है। कलशटीका में। आहाहा! कितनी भी बुद्धिवाला हो, फिर भी इतना तो भेद किये बिना समझा सके, ऐसी किसी की ताकत नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! है, उसमें अन्दर। सबका आधार कहाँ पढ़ने जायें? श्लोक है, पाँचवाँ श्लोक है। आहाहा!

तो यहाँ कहा कि व्यवहारनय का विषय जो पर्याय है। है, अस्ति है। पर्याय और

द्रव्य—दोनों चीज़ हैं। केवल पर्याय है और द्रव्य नहीं, (केवल) द्रव्य है और पर्याय नहीं—ऐसा नहीं। तो उस पर्याय को जब अनेक... एक समय की अवधिवाली पर्याय, चाहे तो केवलज्ञान भी रहे तो एक समय रहता है। समझ में आया? आहाहा! मथुरा में गये थे न मथुरा? तो पण्डित लोग बहुत बैठे थे। यह जैसे कहा कि केवलज्ञान एक समय की स्थिति में रहता है। यह क्या कहते हो? पण्डित लोग (कहने लगे)। अरे! केवलज्ञान एक पर्याय है, गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली है, वह गुण है। उत्पन्न होना, वह पर्याय है। उत्पन्न होता है, वह गुण उत्पन्न होता है? उत्पन्न होकर व्यय होता है। जिस समय उत्पन्न होता है तो वह उत्पन्न होता है। कायमी त्रिकाली गुणस्वभाव जो यहाँ स्वभाव स्वद्रव्य कहा, वह चीज़ नहीं। आहाहा! गुण है, वह उत्पन्न होता है? और गुण है, वह व्यय होता है? आहाहा!

एक समय की पर्याय उत्पन्न होती है। जो उत्पन्न होता है, वह गुण नहीं। और उत्पन्न होती है, उसकी अवधि एक समय की है। पर्याय की अवधि एक समय की है। समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान की अवधि एक समय की? पंचास्तिकाय में तो वहाँ तक कहा है कि केवलज्ञान तो ऐसा का ऐसा है, इसलिए कूटस्थ कहते हैं। पंचास्तिकाय में है। केवलज्ञान को कूटस्थ कहा है। जैसे शिखर ऐसा का ऐसा रहता है, ऐसे वह तो शाश्वत् रहनेवाला है, उस अपेक्षा से (कूटस्थ) कहा। आहाहा! केवलज्ञान को कूटस्थ कहा। जैसे शिखर पर्वत पर है, ऐसा का ऐसा (और) ध्वजा हिलती है, ऐसे शिखर हिलता नहीं। वैसे केवलज्ञान एक समय का है, परन्तु शाश्वत् रहनेवाली चीज़ है। वही नहीं, परन्तु ऐसी की ऐसी हमेशा रहनेवाली है तो उसको कूटस्थ कहा।

मुमुक्षु : इसी के आधार से गुण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! फिर भी केवलज्ञान की पर्याय को भी यहाँ तो परस्वभाव कहकर परद्रव्य कहा। यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय पीछे अन्दर जो ज्ञानस्वभाव त्रिकाली अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञानस्वभाव है, ऐसा अनन्त श्रद्धा स्वभाव, अनन्त आनन्द स्वभाव, अनन्त शुद्धस्वभाव। ऐसा अनन्त-अनन्त स्वभाव कायम रहनेवाला है, वह अनन्त स्वभाव को यहाँ स्व-स्वभाव कहकर स्वद्रव्य कहा। अब स्वद्रव्य का आधार कौन? आहाहा! अरेरे! कहाँ दृष्टि रखनी है? ऐसा कहते हैं।

ऐसा स्व-स्वभाव उपादेय कहा, (परन्तु) उसकी दृष्टि करना है द्रव्य के ऊपर। गुणभेद पर भी नहीं। आधार है। आहाहा! सूक्ष्म विषय आया है, भगवान! शिक्षण शिविर में लेने का भाव था, परन्तु आ गया अन्दर से। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे भाग्य से आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग्य से आया। बात तो ऐसी है। भवि भागन जोगे... वाणी तो उसके कारण से आती है। आहाहा!

वह स्वद्रव्य कहा न? स्वद्रव्य कहा था। द्रव्य का आधार? परन्तु द्रव्य कहा किसको? त्रिकाली कायम रहनेवाले स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। उसका आधार जो परमपारिणामिक त्रिकाली भाव... आहाहा! एकरूप भाव। यह तो अनन्त गुण के स्वभावभाव को स्वद्रव्य कहा। अनन्त गुण के स्वभाव को स्वद्रव्य कहा, तो अनन्त गुण (रूप) स्वभाव का आधार कौन? भगवान! ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! **स्वद्रव्य का आधार...** स्वद्रव्य का आधार? आकाश को आधार कोई नहीं। व्यवहार से, दूसरे पाँच द्रव्यों को आकाश का आधार कहने में आता है, व्यवहार से। निश्चय से तो किसी के आधार से कोई है नहीं। आहाहा!

वास्तव में तो एक समय की पर्याय है, उसका आधार गुण है और पर्याय आधेय, वह भी परमार्थ से नहीं। वह आधार और आधेय—सब पर्याय में अपने से है। वह पर्याय कारण और पर्याय कार्य। पर्याय आधार और पर्याय आधेय। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ के कथन वह तो थोड़ी भाषा में समझ में आ जाये... आहाहा! वह **स्वद्रव्य का आधार सहज परम पारिणामिकभाव...** केवल पारिणामिकभाव नहीं। क्योंकि चार भाव की पर्याय को पारिणामिक कहा है, जयधवल में। दया, दान, दान, राग को पारिणामिक पर्याय कहा है। क्योंकि त्रिकाली द्रव्य की—पारिणामिक की पर्याय को पारिणामिक कहा और वस्तु त्रिकाल को परमपारिणामिक कहा। दूसरी भाषा से शुद्ध पारिणामिक कहो। आहाहा! है?

सहज परमपारिणामिकभाव लक्षण... किसी जगह पर शुद्ध परमपारिणामिकभाव लक्षण (कहा है)। आहाहा! **(सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण है ऐसा)**

कारणसमयसार... वह स्वद्रव्य का आधार है। आहाहा! कारणसमयसार, कारणपरमात्मा वस्तु, वह स्वद्रव्य का आधार है। दूसरी जगह तो आधार-आधेय भी व्यवहार है। उसमें आता है। आगे श्लोक में आता है न? आधार-आधेये। ना कहते हैं। आधार-आधेय नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहा, जिसका स्वभाव सहज परमपारिणामिकभाव। लो, वह भी भाव तो है। त्रिकाली परमस्वभावभाव, वह गुण जो स्वद्रव्य है, त्रिकाली स्वभाव स्वद्रव्य है... जब पर्याय परभाव और परद्रव्य है, तो त्रिकाली स्वभाव स्वद्रव्य है, तो वह स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात यह तो वीतराग की। जैन की ऐसी बातें होंगी? अरे! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है।

मुमुक्षु : और कहीं नहीं है ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पता है न, बापू! यह तो समय के मारे लगता है न? एक बाई को पूछा। यहाँ काम करती थी। ...चलता था मण्डप में। एक बहिन थी। मैंने कहा, बहिन! आपका दिखाव तो ऐसा लगता है कि मजदूर जैसा नहीं लगता। मैंने कहा, बच्चे के पानी के लिये यहाँ रुके है। वह स्त्री ऐसा बोली... मैं अन्दर जा रहा था। आपका दिखाव तो ऐसा नहीं। महाराज! समय के मारे यहाँ आ गये हैं। .... पति अकेले क्या करे? समय के मारे यहाँ नौकरी करनी पड़ती है। बच्चे को पानी के लिये। क्लास चलते थे न? वहाँ बच्चे को पानी के लिये बाई रखी थी। भावनगर की थी कोई भावनगर की। उसको मैंने ऐसा पूछा तो उस बहिन ने जवाब दिया, महाराज! समय के मारे... समय ऐसा है अभी तो कि समय के मारे ऐसी नौकरी करनी पड़ती है। ऐई! आहाहा! ऐसा यहाँ समझ लेना। आहाहा!

सहज परमपारिणामिकभाव जिसका लक्षण ऐसा... स्वद्रव्य का आधार कारणसमयसार है। आहाहा! स्वद्रव्य अर्थात् त्रिकाली स्वभाव जब स्वद्रव्य है... क्योंकि पर्याय को जब परद्रव्य कहा तो त्रिकाली गुण को स्वद्रव्य कहा। हमेशा रहनेवाली चीज़ को स्वद्रव्य कहा, क्षणिक पर्याय को परद्रव्य कहा। तो हमेशा रहने का स्वभावभाव जो गुण है, उसका आधार कौन? कि सहज परमपारिणामिक एकरूप भाव उसका आधार है। आहाहा! विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक - ०६-०८-१९७९
गाथा - ५१ से ५५, श्लोक-७४, प्रवचन-१७

५०वीं गाथा की टीका पूरी हो गयी। मूल पाठ में ऐसा है। मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य की भावना में ऐसा है कि '**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' यह तो गाथा का अर्थ है। उसमें से टीका निकाली है। क्या कहा? कि पूर्व में जो चार भाव कहे थे, वह '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' '**सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च**' ऐसे लेना। '**सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्च**' त्रिकाली ज्ञायकस्वभावभाव स्वभावभाव ध्रुव। अब, '**अप्पा**' वह आत्मा...रखा। परमपारिणामिकभाव का आधार... आहाहा! गजब श्लोक है। यह तो अपना पूरा हो गया। अमृतचन्द्राचार्य का कलश।

श्लोकार्थ—जिनके चित्त का चरित्र उदात्त है... आहाहा! जिसके अभिप्राय में उदारता है, उच्च है, उज्वल है, **ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि—मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदैव हूँ।** आहाहा! मैं आत्मा सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति सदैव हूँ। आहाहा! ऐसे सिद्धान्त का स्वभाव का सेवन करो। आहाहा! **और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं...** पर्यायादि—अनेक प्रकार के रागादि या क्षायिकभावादि, वह भी मैं नहीं। आहाहा! अस्ति-नास्ति बहुत संक्षिप्त में किया। मैं तो शुद्ध चैतन्यमय ज्योति अनादि-अनन्त, वह मैं हूँ। अन्य भाव वह मेरे नहीं। **क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** देखो! अमृतचन्द्राचार्य में यह आया। चार भाव आदि सब परद्रव्य हैं। आहाहा! यह थोड़ा लेकर पाँच गाथा लेते हैं। बाद में कल से, बहिन के वचनामृत कल से लेना है। मंगल, बुध, गुरु तीन दिन।

दूसरा श्लोक। **शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव वे...** आहाहा! शुद्ध जीव-अस्ति-काय लिया है। यहाँ तो असंख्य प्रदेशी लेना है न? सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यमत में वह बात है नहीं। उसके लिये अस्तिकाय असंख्य प्रदेशी शुद्ध चैतन्यघन, उससे अन्य **सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं।** आहाहा! स्त्री, पुत्र हमारे नहीं ऐसा कहते हैं। लक्ष्मीचन्दभाई! वस्तु आत्मा ने त्यागी हैं। आत्मा राग और परभाव का त्यागी है। आहाहा!

यहाँ तो जरा पाँच गाथा थोड़ी लेते हैं। उसमें एक बोल है विरोध का, इसलिए थोड़ा लेते हैं। आहाहा! **ऐसा जो तत्त्ववेदी...** लालचन्दभाई ने एक बार कहा था यह। लालचन्दभाई! खबर है? ऐसे तत्त्ववेदी **स्पष्टरूप से कहते हैं...**

मुमुक्षु : राजकोट में कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न। ख्याल तो है न।

ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं... उसका अर्थ? ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से जानते हैं। समझ में आया? कहते हैं तो वचन-वाणी है, उसमें क्या है? आहाहा! जो शुद्धजीवास्तिकाय, वह तत्त्ववेदी-तत्त्व का अनुभवी। सम्यग्दृष्टि। आहाहा! स्पष्टरूप से कहते हैं। प्रगट अनुभव हुआ है, ऐसा जानते हैं। मैं... **अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।** और वे... यह प्राणी अति अपूर्व मुक्ति को प्राप्त होता है। मुक्ति का यह मार्ग है, दूसरा नहीं।

अब जरा पाँच गाथा ले लें। पाँच गाथा का अर्थ नहीं लेते। सीधी टीका लेते हैं। सीधी टीका लेते हैं। पाँचों की टीका। यह टीका है। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** व्यवहाररत्नत्रय और निश्चयरत्नत्रय—दोनों का स्वरूप है। आहाहा! तो **प्रथम भेदोपचार...** व्यवहार की बात करते हैं। परन्तु निश्चय हो, उसको व्यवहार होता है, हों! आहाहा! जिसको आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द अनुभव में आया हो, उसको ऐसा व्यवहार होता है, वह व्यवहार समकित कहने में आता है। कहेंगे।

भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है... व्यवहार। **विपरीत अभिनिवेश रहित...** आहाहा! वीतराग के कहे मार्ग से विपरीत ऐसा अभिनिवेश-अभिप्राय रहित। पाँच गाथा की टीका। कहा न पहले से। गाथा छोड़ दी है। टीका। **विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धानरूप ऐसा जो सिद्धि के परम्परा हेतुभूत...** व्यवहार समकित सिद्धि की परम्परा हेतु... आहाहा! **भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति...** क्या कहा? यह निश्चय है, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है और व्यवहार... निश्चयवाले को हो व्यवहार, मात्र व्यवहार की बात यहाँ है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भगवान! तेरा स्वरूप... बहिन में आयेगा, अब वचनामृत में।

तेरा स्वरूप तो आनन्दकन्द प्रभु है न। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द का

जिसको स्वाद आया, अपना निजघर जिसने खोल दिया... राग की एकता में जो निजघर को ताला लगाया था, अपनी राग की एकता तोड़कर अपने स्वभाव की निर्मल पर्याय द्वारा अंतर में झुकने से ताला खुल गया। अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की वेदनदशा हो गयी। आहाहा! उस दशावन्त को जो व्यवहार समकित पंच परमेष्ठी की भक्ति, वह परम्परा... है ? हेतु निमित्त। क्योंकि वह व्यवहार छोड़कर परमार्थ पूर्ण प्राप्त करेगा, उस कारण से परम्परा हेतु कहा है। है तो राग, है तो विकल्प। परन्तु निर्विकल्प दृष्टि और निर्विकल्प अनुभव आत्मा का है। शुद्धपरिणति की भूमिका में जब शुद्ध उपयोग की जमवट अन्दर न हो, तब व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है। जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

भगवान अन्तर आनन्द का नाथ का वेदन हुआ और उपयोग—शुद्ध उपयोग में ही दृष्टि का वेदन आया। वह शुद्ध उपयोग में जब रहा नहीं, तब शुद्ध परिणति तो रही। साथ में वह भेदोपचार व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प आता है। समझ में आया ? शुद्ध आनन्द की दशा तो कायम है। आहाहा! उस दशा के साथ में अपूर्ण वीतरागीदशा है तो साथ में व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प-राग आता है। तो वह राग परम्परा हेतु अर्थात् प्रथम तो कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूटी और अस्थिरता अशुभ की छूटी और शुभ आया। अशुभ छूटकर शुभ आया, वह शुभ को छोड़कर शुद्ध में जायेगा। उस अपेक्षा से निमित्त को परम्परा हेतु कहने में आया है। परन्तु वह सम्यग्दृष्टि को है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

जिसको अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है... आहाहा! परमात्मा अन्दर अनन्त आनन्द का पर्वत है, अतीन्द्रिय आनन्द का महापर्वत है। आहाहा! उसमें से सम्यग्दर्शन के काल में एकाग्र होने से अतीन्द्रिय आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द का पहाड़ / पर्वत प्रभु है। आहाहा! उसका स्वीकार और एकाग्र होने से पर्याय में, जैसे पहाड़ में से पानी झरता है परन्तु वह पानी और पहाड़ दोनों भिन्न हैं। यह तो पहाड़ का पानी जो अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु है... दृष्टान्त तो क्या करे ? पानी झरता है तो पानी और पहाड़ तो भिन्न है।

यहाँ तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ सम्यग्दर्शन में, उस भूमिका में अतीन्द्रिय

आनन्द झरता है, अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट परिणमन होता है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! उसको **पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़ता रहित...** वह जरा दोष है तीन प्रकार का। **निश्चल भक्तियुक्तपना वही सम्यक्त्व—व्यवहार समकित है।** वह व्यवहारसमकित है, शुभराग। आहाहा! परन्तु वह निश्चयस्वभाव का अनुभव है, उसको व्यवहारभक्ति का राग होता है। समझ में आया? आहाहा! जिसको निश्चयसम्यग्दर्शन है, उसको व्यवहार जिनप्रतिमा का पूजन, जिनप्रतिमा का वन्दन, साक्षात् जिन भगवान का वन्दन और पूजा—वह सब शुभभाव (होता) है। वह शुभभाव निश्चयवन्त को परम्परा हेतु कहकर व्यवहारसमकित कहने में आया है।

विष्णु ब्रह्मादि कथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही... उसका अर्थ यह कि भगवान पंच परमेष्ठी ने जो तत्त्व कहा, उसकी श्रद्धा-व्यवहार विकल्प है, तो ब्रह्मा-विष्णु आदि ने कहा, उसकी श्रद्धा नहीं। समझ में आया? **विष्णु ब्रह्मादि कथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही...** उसका नाम व्यवहार समकित कहने में आता है। आहाहा! परन्तु निश्चय हो, उसको, हों! केवल व्यवहार समकित होता नहीं। वह तो व्यवहाराभास है। **ऐसा अर्थ है।**

संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! वह भी व्यवहार है। **संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है। वहाँ जिनदेव होंगे या शिव देव होंगे (-ऐसा शंकारूपभाव) वह संशय है...** वह संशय की व्याख्या। वह संशय... सम्यग्दृष्टि व्यवहार में भी संशयरहित होता है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने जो देखा हुआ तत्त्व है, ऐसा सम्यक् अनुभव हुआ है, उसको ही तत्त्व की श्रद्धा का व्यवहार विकल्प होता है। उस विकल्प में कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूट जाती है?

वह संशय है; शाक्यादि... बौद्ध.. बौद्ध... बौद्धादि **कथित वस्तु में निश्चय (अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय) वह विमोह है...** वह छूट जाता है। व्यवहार में, हों! **अज्ञानपना (अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अज्ञानपना) विभ्रम है।** वह छूट जाता है। व्यवहार समकित... निश्चय समकिती को व्यवहार समकित में यह (कहे

हुए) अज्ञानी की श्रद्धा छूट जाती है। समझ में आया? **पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम...** वह व्यवहार चारित्र है। परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शन है, निश्चय चारित्र है, वहाँ ऐसे व्यवहार चारित्र के परिणाम हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : बार-बार निश्चय... निश्चय...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय बिना व्यवहार होता ही नहीं। एक के बिना के शून्य को दस कहने में आता ही नहीं। केवल शून्य... लाख, करोड़ शून्य है, उसको एक कहते हैं? लाख, करोड़ शून्य, उसको एक कहते हैं। एक आया बाद में शून्य हो तो दस होता है। ऐसे सम्यग्दर्शन (सहित) निश्चय अनुभव वेदन हो, तब व्यवहार समकितरूप शून्य आता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : उसका व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है। अन्तर में... पहले व्यवहार कहेंगे। किसको? जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन है, निश्चय ज्ञान है, स्वरूप की ज्ञानता... भी थोड़ी है, उसको पहले पाप की प्रवृत्ति से निवृत्तिरूप व्यवहारचारित्र होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह गाथा में मूल एक बात दूसरी लेनी है। अभी बड़ा भ्रम है।

पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम वह चारित्र है। व्यवहारचारित्र, हों! परन्तु जिसको अपने स्वरूप का निश्चय चारित्र है, उसको परम्परा हेतु व्यवहार चारित्र-क्रिया में राग है, वह (चारित्र) कहने में आता है। **ऐसे भेदोपचार...** देखो! **ऐसे भेदोपचार-रत्नत्रय परिणति है।** व्यवहार। आहाहा! भेदोपचार... वह उपचार है। आहाहा! **उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।** वह भी व्यवहार है। क्यों व्यवहार है? कि हेय-उपादेय दोनों आये। यह हेय है और यह उपादेय है—ऐसा ज्ञान वह व्यवहारज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार ज्ञान का विकल्प है। सूक्ष्म है, भाई!

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। तो भावना क्या? अन्दर स्वरूप की रमणता तो है, परन्तु विशेष अन्दर में जाने को मैंने बनाया। यह बनाने का विकल्प तो राग है। समझ में आया? राग से मैं अन्तर में जाऊँगा, ऐसा

नहीं। परन्तु मुझे अन्दर कमजोरी है, राग है, परन्तु मुझे आनन्द का अनुभव है। भले मैं शुभराग में आऊँ, परन्तु मेरी अन्तरदशा तो आनन्द और स्वरूप की रमणता की दशा तो है ही। इसके साथ में मुझे व्यवहार आता है। अरेरे! समझ में आया?

जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। वह व्यवहार समकित। अब यहाँ आया। यहाँ जरा विरोध है। इसलिए थोड़ा लेना था। वरना आज बहिन का वचनामृत लेते। परन्तु आज जरा यह लेकर कल से लेंगे। वचनामृत जिसके पास हो, वह कल लेकर आना दोपहर को। बाकी यहाँ होंगे तो देंगे। यहाँ होंगे न। दोपहर को ३ से ४।

इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण... आहाहा! यह निश्चय समकित लेना हों, व्यवहार नहीं। आहाहा! **इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी...** यहाँ निश्चय समकित लेना। वरना वह भेदोपचार कहते हैं इसका... **बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही (निमित्त) है।** आहाहा! भगवान ने कहे नौ तत्त्व जैसे हैं, ऐसे तत्त्व की श्रद्धा... समझ में आया? वह द्रव्यश्रुत... उसके तत्त्वश्रद्धान सम्यग्दर्शन में वह ज्ञान-शास्त्र का ज्ञान (जो) सर्वज्ञ ने कहा वह, वह व्यवहार है। क्या कहा?

कि जिसको अन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, निश्चय आत्मा का वेदन, आनन्द का वेदन हुआ है। उसका—यह समकित का बाह्य सहकारी कारण किसको कहने में आता है? कि **बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** आहाहा! वरना तो मुखकमल से निकलती नहीं वाणी। वाणी तो, पूरे शरीर में से ॐ ध्वनि निकलती है। परन्तु लोग ऐसा देखते हैं कि यह निकलती है, वह मुख से निकलती है, ऐसी अपेक्षा ली है। आहाहा! भगवान को मुख में से वाणी नहीं निकलती। होठ बन्द हैं, कण्ठ में कम्पन नहीं और वाणी ॐ ध्वनि निकलती है। परन्तु लोगों की दृष्टि से, जैसे भाषा बोलते हैं तो (मुख से) बोलते हैं, उस अपेक्षा से भाषा ली है। पंचास्तिकाय में लिया है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? **सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतराग सर्वज्ञ के**

मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ... देखो! यहाँ तो कहा कि समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ... आहाहा! पण्डितजी! ऐसा आता है कि वीतराग की वाणी में पूर्ण आता नहीं। जो सर्वज्ञ... समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान में.... आनन्द में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहा कि सब... भगवान ने तो सारा पूरा कहा। है?

मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप... वाणी... वह तत्त्वज्ञान... द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान, वह सम्यग्दृष्टि को बाह्य निमित्त सहकारी (कारण है)। वीतराग का कहा द्रव्यश्रुत, वह निमित्त बाह्य सहकारी होता है। आहाहा! समझ में आया? और **जो मुमुक्षु हैं...** अब यहाँ विवाद है। **जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** आहाहा! जो समकिती है, उसको भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... उसमें बाह्य सहकारी कारण कहा था। है तो यह भी बाह्य सहकारी कारण, परन्तु उसका—ज्ञानी का अभिप्राय जो है, वह उपचार से अन्तरंग निमित्त कहने में आता है। क्या कहा?

वह बहुत समझने की चीज़ थी, इसलिए आज लिया। यहाँ ऐसा कहते हैं कि मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से... यहाँ क्या कहते हैं? कि समकिती है, जो मुमुक्षु है, उसको निमित्त क्या है? वह कहते हैं। परन्तु यहाँ तो मुमुक्षु है सामने जीव। यह तत्त्वज्ञानी को बाह्य सहकारी कारण द्रव्यश्रुत है और जो कहनेवाला समकिती है, वह भी है तो बाह्यकारण, परन्तु उसका अभिप्राय समझना है, उस कारण से उसको उपचार से अन्तरंग कारण कहा है। समझ में आया? सेठ! ठीक कहते हैं।

जो अन्तर सम्यग्दर्शन होता है, वह तो अपने आत्मा के आश्रय से होता है। उसमें तो कोई निमित्त कारण है नहीं। आहाहा! परन्तु वह सम्यग्दर्शन में बाह्य सहकारी कारण के दो भेद हैं। एक द्रव्यश्रुत तत्त्वज्ञान, वीतराग का द्रव्यश्रुत वह बाह्य सहकारी कारण और एक... आहाहा! मुमुक्षु जो समकिती—ज्ञानी हैं, वह समकिती बाह्य सहकारी होने पर भी, उपचार से उसको अन्तरंग कारण कहने में आया है। शब्द, शब्द में अन्तर है। फिर से। हमारे ज्ञानचन्दजी कहते हैं फिर से। आहाहा!

भगवान आत्मा अखण्डानन्द नाथ प्रभु के अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। परन्तु उसमें निमित्तपना कौन है बाह्य में ? तो बाह्य में निमित्तपने के दो प्रकार हैं। एक द्रव्यश्रुत तत्त्वज्ञान निमित्तपने है, सर्वज्ञ की वाणी। और एक मुमुक्षु समकिती ज्ञानी जीव है। है ? यह मुमुक्षु अर्थात् समकित पानेवाले की बात नहीं। समकित पाया (हुआ) है, उसकी बात है।

जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण... निश्चय सम्यग्दृष्टि—निश्चय सम्यग्दर्शन जिसको हुआ है—वह पर है। परन्तु उसका अभिप्राय यहाँ निमित्त कहने में आया है, इसलिए उपचार से अन्तरंग (कारण कहा)। है तो बाह्य, परन्तु अन्तरंग हेतु कहा है। है तो बाह्य। आहाहा! परन्तु उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! है तो बाह्य दोनों। भगवान की वाणी और भगवान अथवा समकिती—दोनों हैं तो बाह्यकारण। परन्तु द्रव्यश्रुत है, वह तो साक्षात् बाह्य सहकारी कहा। परन्तु द्रव्यश्रुत कहनेवाले जो समकिती हैं, उसका अभिप्राय यहाँ समझना है, तो वह बाह्य समकिती का अभिप्राय अन्तरंग निमित्त कहने में आया है। परन्तु उपचार से अन्तरंग निमित्त कहने में आया है। अरेरे! समझ में आया ?

यहाँ लोग मुमुक्षु कहते हैं समकित पानेवाले को। ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया ? मुमुक्षु है जो सम्यग्दृष्टि जीव... समकिती जो मुमुक्षु है, उसका अभिप्राय... वाणी तो बाह्यकारण कहा, परन्तु उसका अभिप्राय—उसका भाव अपने में उपचार से अन्तरंग हेतु कहने में आया है। आहाहा! है या नहीं अन्दर पाठ ? **क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीयकर्म के क्षयादिक हैं।** यहाँ क्या अर्थ करते हैं, वह ? कि मुमुक्षु जो समकित दृष्टि-समकित पाते हैं, उनको दर्शनमोहनीय क्षयादि होता है। ऐसा यहाँ नहीं है। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि जो पाया है, वह तो अपने आश्रय से पाया है। परन्तु बाह्य सहकारी कारण में भगवान की वाणी जो तत्त्वज्ञान है, वह निमित्त बाह्य सहकारी कारण है। दूसरा आत्मा भगवान या समकिती भी है तो बाह्य कारण, परन्तु उसका अभिप्राय यहाँ समझना है, तो उसको उपचार से अन्तरंग कारण कहा। वरना कारण तो बाह्य कारण है। परन्तु उपचार से अन्तरंग कारण रहा। वाणी को अपेक्षा (भी) उसका अभिप्राय समझना है,

उस कारण से उपचार से अन्तरंग हेतु कहा। अन्तरंग हेतु कहा, है तो बाह्य। परन्तु वह उपचार से अन्तरंग कहा। भाषा देखो! है?

मुमुक्षु हैं उन्हें भी... उन्हें भी अर्थात्? सम्यग्दृष्टि है, अनुभव तो हुआ है। उसको बाह्य कारण वीतराग की वाणी तत्त्वज्ञान है। वह बाह्य कारण। अब मुमुक्षु दूसरा प्राणी समकिती है, वह भी बाह्य कारण है। परन्तु उसका अभिप्राय—वह क्या कहते हैं, ऐसा भाव समझना है, उस कारण से उसका अभिप्राय समझनेवाले को वह अभिप्राय अन्तरंग हेतु कहने में आया है। सामने ज्ञानी का सम्यग्दर्शन यहाँ अन्तरंग में हेतु कहने में आया है। समझ में आया? ज्ञानी का। ज्ञानी को नहीं, ज्ञानी का।

मुमुक्षु : अन्य ज्ञानी का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्य ज्ञानी का। अन्य ज्ञानी का।

मुमुक्षु : अभिप्राय....

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो यह अभिप्राय बाह्य कारण। परद्रव्य है। आहाहा! यह गाथा आयी। वरना आज बहिन का लेना था। परन्तु यह जरा थोड़ा....

मुमुक्षु : ....बाह्य कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य कहा, यह है तो बाह्य, परन्तु उसका अभिप्राय समझना है, उस कारण से उपचार से अन्तरंग कारण कहा। वह तो वही का वही हुआ। उपचार से अन्तरंग... समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया कुछ? भगवान!

मुमुक्षु : इतनी बार समझाने के बाद समझ में आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अरे! भगवान! तीन लोक के नाथ तू परमात्मापना लेकर पड़ा है न नाथ! ऐसी बात समझ में न आये, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो यह लेना है। शीतलप्रसाद ने वह बाह्य का अर्थ किया था न, भाई! दोनों बाह्य हैं। परन्तु अन्तरंग हेतु... क्षायिकसमकित आदि हो, वह उसको अन्तरंग हेतु है, समकित पानेवाले को। वह उसने लिखा है शीतलप्रसाद है। पाया है, उसको निमित्त जो है समकिती—ज्ञानी, उस ज्ञानी को बाह्य कारण तो वाणी (और ज्ञानी)—वह दोनों बाह्य

सहकारी कारण हैं, परन्तु उसका अभिप्राय समझना है अथवा क्या भाव कहते हैं, ऐसे समझना है, उस कारण से बाह्य सहकारी होने पर भी, उसको अन्तरंग कारण कहने में आया है। लालचन्दभाई! यह बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : अभिप्राय ख्याल में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो बाह्य कारण, परन्तु वह वाणी की अपेक्षा उसका अभिप्राय ख्याल में लेना है कि उसका भाव क्या कहते हैं? उस कारण से... है तो बाह्य, व्यवहार। परन्तु उपचार से अन्तरंग यह व्यवहार हो गया। आहाहा! उपचार से अन्तरंग हेतु कहने में आया है। आहाहा! समझ में न आये तो रात्रि को पूछना, प्रभु! यहाँ तो छूट है। सब भगवान विराजते हैं यहाँ तो। ऐई! वच्छराजजी! आहाहा! तीन लोक का नाथ आनन्द का सागर, पर्वत विराजता है अन्दर। आहाहा! जिसमें पर्याय का भी अभाव है, आहाहा! ऐसे तीन लोक का नाथ भगवानस्वरूप आत्मा। ऐसा भान सम्यग्दर्शन में हुआ। सम्यक् अर्थात् सत्य। जैसा परिपूर्ण है, ऐसी सत्य सम्यक् पर्याय में, ज्ञान की पर्याय में उसको ज्ञेय बनाकर प्रतीत हुई है। क्या कहा?

कि जो सम्यक् पर्याय ज्ञान की है, वह पर्याय में पूरे द्रव्य को ज्ञेय बनाकर—ज्ञान करके प्रतीति हुई है। जानपना करके प्रतीति हुई है। केवल प्रतीति हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आता है? अरे! ऐसी बात है, प्रभु! क्या करे? मुमुक्षु हैं... वह लोग ऐसा कहते हैं कि मुमुक्षु अर्थात् समकित पानेवाले को यह दर्शनमोह आदि का क्षय अन्तरंग हेतु है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा समझ में आया? दर्शनमोह आदि का क्षय अन्तरंग हेतु कहते हैं, उसको (-पानेवाले को)। ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञानी का अभिप्राय अन्तरंग हेतु...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरंग हेतु, बस। समझ में आया? हमारे पण्डितजी ने अर्थ किया है। समझ में आया? आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा... जो करना है, वह तो किया सम्यग्दर्शन। वही कर्तव्य प्रथम में प्रथम है। उसमें तो कोई बाह्य सहकारी कारण है नहीं। परन्तु वह (सम्यग्दर्शन) है तो अब बाह्य सहकारी कोई चीज़ है या नहीं? आहाहा! स्वभाव सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ

के मुखकमल से समस्त पदार्थ की परिभाषा वाणी में आयी। वह समस्त पदार्थ को कहनेवाले सर्वज्ञ परमात्मा, उनकी वाणी तत्त्वज्ञान बाह्य सहकारी कहने में आता है। अब बाह्य सहकारणी तो वाणी हुई। तो दूसरा आत्मा है, कहनेवाला, उस आत्मा को यहाँ बाह्यकारण में कैसे ले ? है तो बाह्य ? परन्तु उसको यहाँ बाह्य कारण में कैसे लेना ? कि जो बाह्य कारण वाणी है, उससे महत्वपूर्ण उसका भाव समझना है, उस अपेक्षा से उसको अन्तरंग... है नहीं अन्तरंग, है तो बाह्य। परन्तु उसका भाव समझना है तो उस कारण से अन्तरंग हेतु कहने में आया है। बाबूभाई! ऐसा है प्रभु! क्या करे ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़ना चाहिए। बस। वाणी से (महत्वपूर्ण) भाव क्या है, क्या कहते हैं ? किस अपेक्षा से कहते हैं ? समझ में आया ? रतनलालजी! देखो! ऐसी बात है। आहाहा! बाह्य सहकारी को अन्तरंग कारण कहा। यह उनको नहीं बैठा, इसलिए समकित पानेवाले को अन्तरंग कारण दर्शनमोह का क्षय आदि (कहा)। समझ में आया ? आहाहा! यह जरा लेना था, इस कारण से। वरना आज बहिन के वचनामृत लेना था। परन्तु यह जरा अन्तर है न। आहाहा! कल दोपहर से वचनामृत लेने का है। जिसके पास हो, वह लेकर आना। नहीं है तो यहाँ से मिलेगा। पढ़ने को, हों! फिर घर ले जाना, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने को दे तो घर पर ले जाये। बाह्य तत्त्व तो जहाँ है, वहीं है। परन्तु उसको निमित्त क्यों कहना है ? कि ज्ञान में अपने स्वरूप में वह निमित्त हुआ है और उसके स्वरूप कहनेवाले का अभिप्राय अन्तरंग निमित्त कहने में आया है। है तो बाह्य, परन्तु उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण... आहाहा!

(सम्यक्त्वपरिणाम के) अन्तरंग हेतु कहे हैं... सम्यक्त्वपरिणाम के अर्थात अपने सम्यक् परिणाम में, सामने सम्यक् परिणामवाले जीव को अन्तरंग निमित्त कहने में आता है। आहाहा! **क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीयकर्म के क्षयादिक हैं।** किसको ? जिसके पास सुनते हैं, उस जीव को दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम अथवा उपशम होता है,

उसका परिणाम—उसका भाव जीव को उपचार से अन्तरंग हेतु कहने में आया है।

मुमुक्षु : भेदज्ञानी की....

पूज्य गुरुदेवश्री : भेदज्ञानी जीव को भेदज्ञानी जीव निमित्त में होता है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी निमित्त नहीं, ऐसा बताना है।

मुमुक्षु : .... वाणी भगवान की...

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! परन्तु जिसको वाणी का अभिप्राय अन्तर में बैठा है। अन्तर सन्मुख दृष्टि में बात बैठी है। सम्यग्दर्शन है, जिसको दर्शनमोह का क्षय... है? क्षयादिक। क्षय, क्षयोपशम और उपशम हुआ है, वह आत्मा समकित पानेवाले जीव को अन्तरंग उपचार हेतु कहने में आया है।

मुमुक्षु : इसलिए तो सब लोग यहाँ आते हैं, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। हमारे ज्ञानचन्दजी ने कहा, फिर से लो। बात सत्य है। बात ही ऐसी है। आहाहा! समझ में आया? वीतराग के अतिरिक्त की वाणी भी निमित्त नहीं और वीतरागी समकिती के अतिरिक्त उसको निमित्त भी नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! इसमें आपके हीरे-बीरे में कुछ नहीं है। ऐई! पंकज! यह हीरा भगवान अन्दर है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ, पूर्णानन्द का प्रभु पूर्णानन्द से भरा अतीन्द्रिय आनन्द का गंज है—पर्वत है—डुंगर है, सागर है। आहाहा! ऐसा अन्तर में स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है... यहाँ तो व्यवहारचारित्र भी साथ में लिया है। आगे निश्चयचारित्र हुआ है अन्दर, उसको व्यवहारचारित्र, पाप से निवृत्ति हुई, ऐसा व्यवहारचारित्र होता है। और निश्चयचारित्र तो पुण्य-पाप की निवृत्तिरूप स्वरूप की रमणतारूप चारित्र है। समझ में आया?

समझ में आये इतना समझो, बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है। अरे! वीतराग के विरह पड़े हैं। भगवान वहाँ महाविदेह में रह गये। आहाहा! यह भाव यहाँ रह गया। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि उन्हें... उन्हें किसको? जो निमित्त है, उनको। उपदेश करनेवाला ऐसा भाव उन्हें **दर्शनमोहनीयकर्म के क्षयादिक हैं।** क्षायिक समकित हो, उपशम हो या

क्षयोपशम उसको। वह समकित पानेवाले को अन्तरंग कारण तो आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? दूसरी तरह से कहे तो उसके भी दर्शनमोह का क्षयादि अन्तरंग कारण निमित्त है। क्या कहा? नियमसार में आता है।

मुमुक्षु : अन्तरंग निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वहाँ अन्तरंग निमित्त तो कर्म का क्षयोपशम अन्तरंग निमित्त है। कर्म का क्षायिकपना, क्षयोपशमपना, वह अन्तरंग निमित्त है। यहाँ वह बात नहीं लेनी है। आहाहा! यहाँ तो कहनेवाले का धर्मी का अभिप्राय है जो उसका... आहाहा! अरेरे! क्या करे? ऐसा मार्ग है। आहाहा!

निश्चय से तो अपने आत्मा के अवलम्बन से होता है, परन्तु वहाँ व्यवहार है या नहीं निमित्त? बाह्य निमित्त है, सर्वत्र त्रिलोकनाथ की वाणी का यथार्थपने का ज्ञान, वह बाह्य निमित्त है। बाह्य निमित्त... कहा? व्यवहार कहा न? बाह्य सहकारी कारण कहा, द्रव्यश्रुत। और मुमुक्षु जो है समझानेवाला... समकित पाया है, पाना है, उसको समझनेवाला जो है, वह अन्तरंग हेतु (कहा) उपचार से पदार्थ निर्णय के हेतुपने के कारण... आहाहा! अपने अनुभव के निर्णय में हेतुपने के कारण अन्तरंग हेतु, बाह्य पदार्थ सर्वज्ञ भगवान हैं या समकिती है। उनको उपचार से अन्तरंग हेतु कहा है। क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं। आहाहा! समझ में आया? चन्दुभाई! ऐसी बात है, भाई! हिम्मतभाई ने तो ऐसा अर्थ किया है। शीतलप्रसाद ने दूसरा अर्थ किया है। दूसरे लोग दूसरा अर्थ करते हैं। समझ में आया? अब वह भेद जो कहा, भेदरूप समकित व्यवहार, उसमें अभेदपना अन्दर निश्चय है, वह क्या? कथन पहले व्यवहार का आया, परन्तु उसको निश्चय है।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,... आहाहा! जिसको भगवान पूर्णानन्द का नाथ... अभेद, गुण-गुणी का भेद भी नहीं। जो कहा वह अन्तर स्वभाव का आधार परमात्मा '**अप्पा**' आहाहा! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ पूर्णस्वरूप, उसकी श्रद्धा सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान, उसका चारित्र अभेद अनुपचार... देखो! उसमें भेदोपचार था व्यवहार में। यह निश्चय में अभेद अनुपचार। वास्तविक अभेद है। आहाहा! अरेरे!

मनुष्यपना मिला, उसमें यह बात उसको समझ में न आये। आहाहा! फिर से वही के वही चौरासी के अवतार में भटककर मर जायेगा। वहाँ किसी की सिफारिश काम नहीं आयेगी। किसी की सिफारिश... सिफारिश क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : सिफारिश।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! मैंने तो कहा था न। मनसुख आया था न। उसके पिताजी भागीदार थे न हमारे बड़े भाई के। उसका बड़ा भाई—इसके पिता मेरे भागीदार थे। मैंने तो कहा कुँवरजीभाई को। मनसुख को पता है। कहा था कि भाई! तुम सारे दिन इतनी ममता करते हो, भाई! तुम्हारी ममता देखकर... उस समय इतनी उपज नहीं थी, तब तो थोड़ी थी। बाद में, गुजर गये तब दो लाख की उपज थी। अभी तो ज्यादा है तीन लड़कों की। परन्तु वह ठीक... वह सब तो धूल की बातें हैं। परन्तु यहाँ उसको ममता इतनी थी दुकान के धन्धे की। मैं करता हूँ... मैं करता हूँ... व्यवस्था करता हूँ... यह करता हूँ। भाई! हम बनिये हैं। बनिये हैं तो माँस और अण्डे का खुराक नहीं है। सुने... सुने, मेरे सामने बोले नहीं। यह तो उसके जन्म पहले की बात है। मेरी दीक्षा के बाद जन्मा है। ७० में दीक्षा, ७४ में उसका जन्मा है। यह तो ६६ की बात है। दुकान की गद्दी थी न! वह चुनीलाल मोतीलाल उसकी दुकान। वहाँ थे न? आधे भाग में। आधे भाग में गांडाभाई थे। फावाभाई। ... आधे भाग में। आधे में यह है। ६६ की बात है।

तो कहा था भाई! कि आपको क्या यह है? सारा दिन, आहाहा! यह कमाया, यह दुकान ली, यह माल लेकर आया, यह किया, वह किया। क्या है? आत्मा का कुछ अवकाश? यहाँ से मरने के बाद सुगति होती है... मोक्ष तो, धर्म तो पीछे। परन्तु यहाँ से मरकर मनुष्यपना और स्वर्ग मिले, ऐसी क्रिया दिखती नहीं आपके पास? मनसुख! तूने तो कई बार सुना है। उसके पिता को कहा। हमारे बड़े भाई के भागीदार थे, दोनों भागीदार थे। भाई! यह क्या है? सारा दिन... गाँव में साधु आये तो दो घण्टे जाना... साधु आये तो सारा दिन न जाये। रात को आठ बजे नामा लिखकर दुकान बन्ध करके जाये एक घण्टे सुनने। परन्तु उसमें साधु के पास भी तत्त्व की बात कहाँ थी। वह भी दो-चार घण्टे कोई समागम सत् का करना या वांचन करना, ऐसा पुण्य भी नहीं।

आहाहा! भाई! यह तो तिर्यंच होने का लक्षण है। ऐई! मनसुख! सुने हों। बोले नहीं।

भाई भी बैठे थे, खुशालभाई बड़े भाई। सुने, बोले नहीं। भगत है, कुछ कहते हैं। हमें किसी का पक्ष नहीं है। हमारे भागीदार और भाई... वैसे हमारे बुआ के बेटे होते हैं? फुई समझते हो? फूफा का बेटा होता है। ऐसे भाई हैं और भागीदार थे। बापू! उसके मरने के समय सन्निपात हुआ। मनुसख सब थे। सन्निपात हुआ। लवालव... लवा... लवा... हो गया। मरकर... आहाहा! चिमनभाई! यह तो हमारे घर का दृष्टान्त दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : अपेक्षा समझना।

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे आप सबको समझना, ऐसा कहते हैं। हमने तो सब किया है न? आहाहा! आखिर का कहा न? ६८ के वर्ष।

मुमुक्षु : ....व्यापार करते नहीं, नौकरी करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौकरी करता है तो भी राग, पाप है। पैसे लेने को वहाँ नौकरी करते हैं। ठीक कहा भाई ने। यह छापनेवाले भी पैसे लेने को छापते हैं। तो उसका भाव कहाँ शुभ है? पुस्तक छापनेवाले हैं, उसको पैसे लेना है, उसके लिये छापते हैं, वह तो पापभाव है। आहाहा! भले सिद्धान्त शास्त्र छापते हो। आहाहा! ऐसा कहे कि दूसरे तो सब सारा दिन पाप करते हैं, परन्तु यह लोग तो कहाँ पाप करते हैं? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उसको व्यापार नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यापार नहीं, परन्तु यह पाप है या नहीं? पैसे लेने के लिये वह तो धन्धा करते हैं और नौकरी करते हैं तो वह पाप है। ऐसी बात है, भाई! यहाँ किसी का पक्ष नहीं।

मुमुक्षु : आप किसी को निमित्त बोल दें महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यहाँ क्या कहते हैं?

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को... अन्तर में भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। आहाहा! उसके उपरान्त

स्वरूप में रमणता आनन्द में जम गयी, ऐसे निश्चय... अभेद अर्थात् निश्चय, अनुपचार अर्थात् व्यवहार नहीं। रत्नत्रयपरिणति अर्थात् निश्चयरत्नत्रयदशा। निश्चयरत्नत्रय परिणति अर्थात् दशा। उस जीव को **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है, ऐसे निज परम तत्त्व को श्रद्धा द्वारा...** इसको अन्तर भगवान पूर्णानन्द है, उसकी श्रद्धा है, वह निश्चय है। आहाहा! समझ में आया?

और परम ज्ञानमात्र भगवान पूर्णानन्द का नाथ का ज्ञान। शास्त्रज्ञान नहीं। आहाहा! तद् है न? तद् अर्थात् ज्ञानमात्र। **(निज परम तत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** अन्तर्मुख सम्यक् चैतन्य के सन्मुख होकर जो ज्ञान हुआ, वह **अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से (अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से) अविचलरूप से स्थिर होनेरूप...** आहाहा! चारित्र किसको कहना है, वह कहते हैं। वह आनन्दस्वरूप में— निज स्वरूप में रमता है, वह चारित्र है। कोई महाव्रत का परिणाम, कपड़ा छोड़ दिया, वह चारित्र, ऐसा चारित्र है नहीं। आहाहा! है? आहाहा!

अविचलरूप से स्थिर होनेरूप... अन्दर भगवान आनन्द में स्थित होनेरूप... अतीन्द्रिय आनन्द में जम गया है अन्दर में। आहाहा! **अविचलरूप से स्थिर होनेरूप सहज चारित्र द्वारा...** ऐसे सम्यक् ज्ञान और चारित्र द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** व्यवहार कहा उससे फल नहीं कहा, समझाया। परन्तु मुक्ति होती है निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से। समझ में आया? आहाहा! वह सिद्धपर्याय कैसी है? अभूत—भूतकाल में किसी समय पाया नहीं। आहाहा! अभूत। है? आहाहा! अभूतपूर्व नीचे है। **पहले कभी न हुआ हो ऐसा अपूर्व। सिद्धपर्याय होती है।** वह मुक्ति की दशा अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प आनन्द की दशा, वह प्रतीति निर्विकल्प आनन्द में रमता है, इससे मुक्ति होती है। व्यवहार बीच में आता है, वह उसको बन्ध का कारण है। आहाहा! मुक्ति तो इस कारण से होती है। समझ में आया?

जो परम जिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,... मात्र व्यवहार की बात नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, परन्तु अभी स्वरूप की पूर्ण रमणता शुद्धोपयोग की नहीं। तो उसको पहले पाप की निवृत्तिरूप

परिणाम शुभभाव होता है। है ? **परम योगीश्वर पहले पाप क्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** शुभभाव होता है।

मुमुक्षु : व्यवहार आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, व्यवहार है सही, परन्तु वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : पहले लेना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले नहीं। पहले का अर्थ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में पूर्ण स्थिरता नहीं, उस दशा में पहले पाप से निवृत्ति होती है। अटपटी। समझ में आया ? पहले एकदम निश्चयचारित्र होता है, ऐसा नहीं ऐसा कहते हैं। निश्चय अर्थात् स्वरूप की रमणता पूर्ण। पूर्ण रमणता। निश्चय अर्थात् पूर्ण रमणता पहले नहीं होती। पहले अल्प रमणता के काल में व्यवहारचारित्र का शुभपरिणाम आता है। वह पहला। नीचे की दशा में पहले आता है, ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! है ?

पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनय गोचर तपश्चरण होता है। व्यवहार साधुपना कहने में आता है। वास्तविक नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! **उन्हें वास्तव में व्यवहारनय गोचर तपश्चरण होता है।** और निश्चय ? **सहज निश्चयनयात्मक परमस्वभावभावरूप परमात्मा में प्रतपन...** परमात्मा में प्रतपन—विशेष से लीनता... लीनता... लीनता... प्रतपन इति तपः सुवर्ण में जैसे गेरु लगान से सोना चमकता है, वैसे भगवान में चारित्र सहित है, उसकी उग्र लीनता से वह शोभता है, उसको यहाँ तप कहते हैं। यह अनशन, ऊनोदरी, अपवास वह तो बाह्य लंघन है। आहाहा! है ? आहाहा!

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है। यह चारित्र अन्दर में पूर्णानन्द के नाथ में रमणता करने से होता है। कोई व्यवहार क्रिया करने से होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! तब उसकी मुक्ति अर्थात् सिद्धि होती है। लो विशेष पूर्ण हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

www.vitragvani.com